पिथौरागढ़ जनपद की भोटिया जनजाति : सांस्कृतिक भूगोल में एक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी में

पी-एच0डी0 उपाधि हेतु भूगोल विषय

में प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

वर्ष-2006

शोध निर्देशक
डॉ0 आर0के0 शुक्ल
रीडर-भूगोल विभाग
अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा (बाँदा)

शोधार्थी
भानु प्रताप सिंह
प्रवक्ता-भूगोल
रा0इ0कालेज, पीपलकोट
पिथौरागढ़ (उत्तरांचल)

शोध केन्द्र

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री भानुप्रताप सिंह, प्रवक्ता भूगोल, राजकीय इण्टर कालेज, पीपलकोट (पिथौरागढ़) उत्तरांचल ने भूगोल विषय में पी-एच०डी० उपाधि हेतु शोध अध्यादेश की धारा 9(i) व 11(ii) ब में उल्लिखित समयावधि के अन्तर्गत 'पिथौरागढ़ जनपद की भोटिया जनजाति : सांस्कृतिक भूगोल में एक अध्ययन' नामक शीर्षक में शोध कार्य पूर्ण किया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध शोधार्थी द्वारा स्वयं लिखा गया है तथा यह इनकी मौलिक कृति है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

दिनांक : 20.03.2006

डॉ० (रामकिशोर शुक्ल)
शोध पर्यवेक्षक
रीडर, भूगोल विभाग
अतर्रा महाविद्यालय
अतर्रा (बाँदा) उत्तर प्रदेश

आमुख
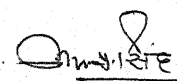
सांस्कृतिक भूगोल, भूगोल की एक नूतन शाखा है। पर्यावरण एवं मानव के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन मानव भूगोल के अन्तर्गत किया जाता है किन्तु यह पूर्णतः स्पष्ट हो चुका है कि समान प्राकृतिक पर्यावरण में रहने वाले मानव समुदायों में भी अनेक मूलभूत सांस्कृतिक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। ये सांस्कृतिक विभिन्नताएँ प्राकृतिक पर्यावरण, मानव समुदाय, मानवीय प्रविधि एवं सामाजिक सांस्कृतिक संगठन आदि चार प्रमुख तत्वों के अन्तर्सम्बन्धों का प्रतिफल होती है। इन्हीं तत्वों के अन्तर्सम्बन्धों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक तत्वों का विकास होता है और इन्हीं सांस्कृतिक तत्वों के वितरण से उद्भूत क्षेत्रीय विभिन्नताओं या भू-वैन्यासिक संगठन का अध्ययन सांस्कृतिक भूगोल में किया जाता है।

उत्तरांचल के उत्तरी सीमान्त जनपदों पिथौरागढ़, चमोली एवं उत्तरकाशी के उत्तरी हिमानी सीमान्त भागों में भोटिया जनजाति के लोग निवास करते हैं। पिथौरागढ़ जनपद का भोटिया जनजाति क्षेत्र मुनस्यारी (जोहार परगना) एवं धारचूला (दारमा परगना) तहसीलों में स्थित है। यहाँ के विशिष्ट भौगोलिक पर्यावरण के फलस्वरूप, इस क्षेत्र में एक विशिष्ट भोटिया संस्कृति का सृजन हुआ है। भोटिया, एक व्यापारिक एवं पशुपालक प्रजाति है जिनका 1962 से पूर्व तिब्बत व्यापार में लगभग एकाधिकार था। 1962 में चीन द्वारा भारत पर अप्रत्याशित आक्रमण एवं तिब्बत के पूर्णतः अधिगृहण के फलस्वरूप इनके प्रमुख आधारभूत व्यवसाय तिब्बत व्यापार को अपूर्णनीय छति पहुंची है जिससे इनका सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन छिन्न-भिन्न हो गया हैं अतः इसे पुनजीर्वित करने की नितान्त आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से प्रस्तुत शोध विषय का चयन किया गया है।

मेरे शोध पर्यवेक्षक आदरणीय डॉ० आर०के० शुक्ल, रीडर भूगोल विभाग, अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा (बाँदा) ने अपना अमूल्य मार्गदर्शन एवं सुझाव देकर मुझे विशेष रूप से उपकृत किया है, जिनकी प्रशंसा वर्णनातीत हैं इसके अतिरिक्त डॉ० आर०एस० त्रिपाठी, रीडर, भूगोल विभाग, अतर्रा महाविद्यालय

अतर्रा, डॉ० जे०सी० गड़कोटी, भूगोल विभागाध्यक्ष, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पिथौरागढ़ के अमूल्य सुझाव भी अविस्मरणीय हैं। प्रस्तुत शोध कार्य के सम्पादन में जिन महत्वपूर्ण ग्रंथों एवं पत्र-पत्रिकाओं के गवेषणापूर्ण लेखों से सहायता मिली है, उनके लेखकों का मैं हार्दिक रूप से आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त उन सभी व्यक्तियों जिन्होंने इस कार्य हेतु मुझे किसी भी प्रकार का सहयोग प्रदान किया है उन्हें भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रातःस्मरणीय पिता स्व० श्री रामअवतार सिंह जी की सद्प्रेरणा एवं आशीर्वाद तथा पूज्यनीया माता जी राजकुमारी देवी के आशीर्वाद एवं स्नेह के फलस्वरूप ही मैं इस दुष्कर कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हो सका हूँ। मेरी धर्मपत्नी सावित्री सिंह (एम०ए०-हिन्दी) ने अपना अमूल्य समय एवं सहयोग देकर इस कार्य हेतु मेरा निरन्तर मनोबल बढ़ाया है, जिसके लिए वे विशेष रूप से बधाई की पात्र हैं। मेरे प्रिय पुत्र सौरभ सिंह एवं गौरव सिंह तथा प्रिय पुत्रियाँ कु० कविता सिंह एवं कु० गरिमा सिंह ने इस कार्य हेतु जो अपना सहयोग दिया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों का भी इस कार्य में सहयोग हेतु अत्यन्त आभारी हूँ। श्री संजय पाठक कार्टोग्राफर, हिमालयन प्रिन्टर्स, पिथौरागढ़ ने मानचित्र निर्माण कर एवं श्री श्रीकान्त शुक्ल, श्री प्रिन्टर्स, बाँदा ने इसको अल्प समय में टंकित कर जो अपना अमूल्य सहयोग दिया है वह श्लाघनीय है।

भानु सिंह

दिनांक : 20.03.2006 **(भानुप्रताप सिंह)**

अनुक्रमणिका

तालिका सूची

MAP INDEX

छायाचित्र सूची

परिचय

परिचय

(अ) सांस्कृतिक भूगोल के अध्ययन का महत्व

सांस्कृतिक भूगोल, भूगोल की एक नवीनतम शाखा है। पर्यावरण एवं मानव के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन मानव भूगोल के अन्तर्गत होता है, किन्तु यह पूर्णतः स्पष्ट हो चुका है कि समान प्राकृतिक परिस्थितियों और पर्यावरण में रहने वाले मानव समुदायों में भी अनेक मूलभूत सांस्कृतिक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। भौगोलिक दृष्टि से सहारा के तौरेग और मूर समाजों का पर्यावरण एक समान है किन्तु इनकी संस्कृतियों में असाधारण विभिन्नताएँ हैं। कहीं-कहीं पर कुछ विशिष्ट प्राकृतिक परिस्थितियाँ भी वहां के मानव समुदायों को एक विशिष्ट ढंग का जीवन यापन करने के लिए बाध्य कर देती हैं। यहाँ इनकी जीवन पद्धति और संस्कृति का निर्माण मुख्य रूप से प्रकृति ही करती है किन्तु आधुनिक सभ्यता के उपकरणों से सुसज्जित, विकसित मानव समाज प्रकृति पर अनेक रूप से नियन्त्रण करता जा रहा है। अतः किसी विशेष संस्कृति के ऊपर पर्यावरण के प्रभावों का निरीक्षण और उनके सांस्कृतिक क्षेत्रों पर विभिन्न भू-दृश्यों की विभिन्नताओं के प्रभावों का पारस्परिक अध्ययन एवं मानव समुदायों का उन भू-दृश्यों के निर्माण में योगदान का समग्रतापूर्वक तुलनात्मक अध्ययन करने की दृष्टि से सांस्कृतिक भूगोल की स्थापना मानव भूगोल से पृथक् की गई है।

सांस्कृतिक भूगोल की अवधारणा भारतीय संदर्भ में एक नवीन किन्तु महत्वपूर्ण संकल्पना का स्वरूप लेती जा रही है यद्यपि सांस्कृतिक भूगोल के अध्ययन तत्वों का विवेचन भूगोल में विगत कई सदियों से होता आ रहा है किन्तु एक विषय के रूप में इसकी मान्यता तथा अध्ययन बीसवीं सदी की देन है। जर्मनी, फ्रांस, ब्रिट्रेन और संयुक्त राज्य अमेरिका में तो कई दशकों से लोग सांस्कृतिक भूगोल की अवधारणा से परिचित हैं किन्तु दुर्भाग्यवश भारत वर्ष में भूगोल की इस महत्वपूर्ण शाखा की ओर भूगोलवेत्ताओं का ध्यान कम आकर्षित हुआ है। भारत वर्ष, जिसकी समृद्धशाली सांस्कृतिक परम्परा रही है और जिसकी विश्व में एक विशिष्ट पहचान अपनी इस समृद्धशाली सांस्कृतिक धरोहर के रूप में रही है, वहाँ सांस्कृतिक भूगोल का अध्ययन और भी महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य हो जाता है।

सांस्कृतिक भूगोल का अर्थ एवं परिभाषा

सांस्कृतिक भूगोल को पारिभाषित करने से पूर्व संस्कृति शब्द का अर्थ जान लेना अत्यावश्यक है। सामान्यतया 'संस्कृति' शब्द के 300 से भी अधिक अर्थ है। संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कृत' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है परिष्कृत या परिमार्जित। अंग्रेजी भाषा में संस्कृति के लिए 'कल्चर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द लैटिन भाषा के 'कलचुरा' तथा कोलियर' से निकला है। इन दोनों शब्दों का अर्थ क्रमशः 'उत्पादन' तथा 'परिष्कार' है। उत्पादन तथा परिष्कार से जो अर्थ निकलता है उसके अनुसार संस्कृति को 'परिष्कृत मानसिक उत्पादन' माना जा सकता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव के आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक की वह संचित निधि है जो उत्पादन तथा परिष्कार द्वारा निरन्तर प्रगति करती हुई एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त होती चली आ रही है तथा भविष्य में भी उसकी यही गति रहेगी। डा० ईश्वरी प्रसाद (1980, 3) के अनुसार मानव की समस्त क्रियाओं, व्यवहारों, उत्पादन, परिष्कार एवं उन्नति का मिला जुला रूप ही संस्कृति है।

सांस्कृतिक भूगोल के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य की सम्पूर्ण जीवन पद्धति ही संस्कृति है। संस्कृति दो तत्वों की अन्तर्प्रक्रिया का प्रतिफल है, प्रथम मानव तथा उसके द्वारा विकसित प्रविधि तथा द्वितीय प्रत्यक्ष स्थित प्राकृतिक पर्यावरण। मानव के नैतिक मूल्य, आचार-विचार, रहन सहन, खान-पान, वेशभूषा और क्रियाकलाप को हम सम्मिलित रूप से जीवन पद्धति कह सकते हैं और इसी जीवन पद्धति का समानार्थी शब्द संस्कृति है। ग्रिफ्फिथ टेलर (1951, 13) ने मानव को एक सशक्त भौगोलिक कारक मानकर प्राकृतिक पर्यावरण के परिवर्तनशील अभिव्यक्तियों के मूल में मानव की क्रियाशीलता को ही उत्तरदायी माना है। इसी प्रकार फिलिप एल० वेगनर और एम०डब्लू० मिक्सेल (1962, 1) का कथन है कि भौगोलिक समस्याओं में सांस्कृतिक विचारों का प्रयोग ही सांस्कृतिक भूगोल है।

इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कार्ल ओ० सावर (1927, 154) ने पृथ्वीतल पर ब्याप्त सांस्कृतिक भू-दृश्यों के क्षेत्रीय भिन्नताओं के संदर्भ में निहित कारकों के अन्तर्सम्बन्धों तथा अन्तप्रक्रियाओं पर जोर देते हुए लिखा है कि सांस्कृतिक भूगोल एक ऐसा कार्यक्रम है जो भूगोल के सामान्य उद्देश्यों से सम्बद्ध है अर्थात् इसका उद्देश्य पृथ्वी तल की क्षेत्रीय भिन्नताओं को स्पष्ट करना है। टेरी जी० जार्डन तथा लेस्टर राउन्ट्री (1976, 5) ने सांस्कृतिक भूगोल की सीमा का विस्तार करते हुए इसके अन्तर्गत भौतिक पर्यावरण की तुलना में मानवीय संस्कृति, व्यक्ति की तुलना में मानव समूहों

तथा संस्कृति समूहों के क्षेत्रीय भिन्नताओं को समाहित किया है। इनके कथन का समर्थन करते हुए जे०के० जैन तथा बोहरा दनमाल (1983, 18) का मत है कि सांस्कृतिक भूगोल के अन्तर्गत मानव समूहों के मध्य व्याप्त समानताओं एवं असमानताओं को भलीभाँति समझने में सहायता मिलती है। जे०ई० स्पेन्सर एवं विलियम एल० थामस जूनियर (1969, 4) ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर अपना मत व्यक्त किया है कि सांस्कृतिक भूगोल का सम्बन्ध मानवीय प्राविधिक व्यवस्थाओं और सांस्कृतिक व्यवहारों से है जो आदिकाल से पृथ्वी के विशेष क्षेत्रों में मानव समूहों की संस्कृतियों में प्रचलित हैं।

वर्तमान समय में सांस्कृतिक भूगोल की व्याख्या पारिस्थितिकीय अध्ययन के संदर्भ में की जाने लगी है। पारिस्थितिक विज्ञान के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के प्राकृतिक पर्यावरण एवं जैव जगत के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इसी संकल्पना के आधार पर सांस्कृतिक भूगोलवेत्ता मानव समुदायों और पर्यावरण के मध्य स्थानिक-कालिक अन्तर्सम्बन्ध और उसके परिणामतः होने वाले विकास का अध्ययन, सांस्कृतिक भूगोल के अन्तर्गत समाविष्ट करते हैं। रामअवध (1980, 3) के अनुसार सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के अध्ययन से समायोजन एवं परिवर्तन की प्रक्रियाओं को समझने में सहायता मिलती है जिसके फलस्वरूप सामाजिक संस्थाओं, मानव व्यवहारों एवं पर्यावरण में परिवर्तन होते हैं। जे०एच० स्टीवर्ड (1955, 30-42) का मत है कि सांस्कृतिक पारिस्थितिकी उन प्रक्रियाओं का अध्ययन है जिसके अन्तर्गत मानव समुदाय अपने पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित करता है।

सांस्कृतिक भूगोल की उक्त परिभाषाओं के समन्वयन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक भूगोल में प्रमुख चार तत्वों एवं उनके परस्पर जटिल अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन समाविष्ट है। आर०सी० तिवारी व अन्य (1988, 10-11) के अनुसार ये चार तत्व प्राकृतिक पर्यावरण, मानव समुदाय, मानवीय प्रविधि एवं सामाजिक सांस्कृतिक संगठन हैं जिनके अन्तर्सम्बन्धों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक तत्वों का विकास होता है और इन्हीं सांस्कृतिक तत्वों के वितरण से उद्भूत क्षेत्रीय विभिन्नताओं या भू-वैन्यासिक संगठन का अध्ययन सांस्कृतिक भूगोल में किया जाता है।

सांस्कृतिक भूगोल की विषय वस्तु

सांस्कृतिक भूगोल की विषय वस्तु में निम्नलिखित तथ्यों को सम्मिलित किया जा सकता है।

1. प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण में अन्तर्सम्बन्ध।
2. मानवीय संस्कृति का क्रमिक इतिहास।
3. सांस्कृतिक तत्वों का अध्ययन।

4. विविध भौगोलिक क्षेत्रों की विशिष्ट संस्कृतियों का अध्ययन।

5. प्राकृतिक पर्यावरण के साथ मानव समूहों का अध्ययन।

6. मानव प्रजातियाँ, अर्थ व्यवस्था एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन का अध्ययन।

7. मानव संस्कृति के उत्थान हेतु संसाधन नियोजन।

8. प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरणों का मूल्यांकन एवं सन्तुलन।

9. पर्यावरण प्रदूषण का अध्ययन।

सांस्कृतिक भूगोल के अध्ययन का उद्देश्य

सांस्कृतिक भूगोल के अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं।

1. प्राकृतिक वातावरण एवं मानव संस्कृति के परिवर्तनों का विश्लेषण करना।

2. पृथ्वी तल पर विभिन्न क्षेत्रों के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक वातावरणों में व्याप्त विभिन्नताओं का अध्ययन करना।

3. प्रागैतिहासिक एवं आधुनिक मानव के क्रिया कलापों का अध्ययन करके मानव के सांस्कृतिक विकास का अनुमान लगाना।

4. प्राकृतिक वातावरण में निहित अधिकतम सम्भावनाओं का उपयोग करने हेतु मानव को जागरूक बनाना।

5. प्राकृतिक वातावरण में निहित सांस्कृतिक विकास की सीमाओं का पता लगाना।

6. मानवीय संस्कृति जन्य प्रादेशिक इकाइयों का सीमांकन करना।

7. प्राकृतिक वातावरण पर मानव के नियंत्रण के तरीकों का पता लगाना।

8. पृथ्वी तल पर प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के माध्यम से विकसित भू-दृश्यों को मानवीय कल्याण हेतु सुनियोजित एवं सुसंगठित बनाना।

9. सांस्कृतिक भूगोल क्षेत्रीय सम्बन्धों, स्वरूपों एवं सामंजस्यों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

सांस्कृतिक भूगोल के तत्व

सांस्कृतिक भूगोल में सांस्कृतिक तत्वों अथवा जीवन पद्धति के तत्वों का अध्ययन भौगोलिक दृष्टिकोण से किया जाता है। कैलाशपति, मिश्र (1982, 20-48) के अनुसार सांस्कृतिक भूगोल में निम्नांकित अध्ययन तत्वों की संकल्पना सन्निहित है।

1. सांस्कृतिक क्षेत्र की संकल्पना।

2. सांस्कृतिक प्रसार की संकल्पना।

3. सांस्कृतिक पारिस्थैतिक संकल्पना।

4. सांस्कृतिक अन्तर्सम्बन्ध की संकल्पना।

5. सांस्कृतिक भू-दृश्य की संकल्पना।

6. सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पद्धति की संकल्पना।

सांस्कृतिक भूगोल की दृष्टि से भोटिया जनजाति के अध्ययन के उद्देश्य

उत्तरांचल के उत्तरी सीमान्त जिलों पिथौरागढ़, चमोली तथा उत्तरकाशी के उत्तरी हिमानी सीमान्त भाग में भोटिया जनजाति के लोग निवास करते हैं। चमोली तथा उत्तरकाशी जिले गढ़वाल अंचल के अन्तर्गत स्थित हैं। यद्यपि गढ़वाल अंचल में भी भोटिया जनजाति के लोग रहते हैं किन्तु अधिकांश भोटिया लोग कुमाऊँ अंचल में ही रहते हैं। कुमाऊँ का भोटांचल पिथौरागढ़ जिले में स्थित है। यह क्षेत्र इस जनपद में स्थित हिमालय पर्वत श्रृंखला के उत्तर में तिब्बत की सीमा तक विस्तृत है। रमेशचन्द्र तिवारी (1977, 253-270) के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद के भोटांचल का पश्चिमी भाग जोहार तथा पूर्वी भाग दारमा, ब्यांस एवं चौदांस नामक भागों में विभक्त है।

इस अद्भुत हिमानी क्षेत्र के इन प्रकृति पुत्रों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को यहाँ के भौगोलिक पर्यावरण ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। इनकी कृषि, व्यवसाय, रहन सहन, खान-पान, वास्तुकला तथा वेशभूषा इत्यादि सभी विशिष्ट हैं। यहाँ के भौगोलिक पर्यावरण ने इस क्षेत्र में एक विशिष्ट भोटिया संस्कृति का सृजन किया है। यह सांस्कृतिक विरासत इतनी समृद्ध तथा परिपुष्ट है कि उत्तरांचल में ही नहीं अपितु भारत वर्ष में एक विशिष्ट सांस्कृतिक समूह के रूप में इसका वौशीष्ट्य सदैव बना रहेगा। भोटिया लोग उत्तरांचल के सबसे निपुण, परिश्रमी, ईमानदार तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी रहे हैं। इनके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का परिवेश भी असाधारण है। इनका व्यापार हिमालय के आर-पार चलता था और जिन परिस्थतियों में वे व्यापार करते थे, विश्व में उसका दूसरा उदाहरण ढूंढना अत्यन्त कठिन है। कई महीनों तक दुर्गम गिरिपथों तथा हिमपथों पर यात्रा करते हुए वे भारत से तिब्बत तथा तिब्बत से भारत की विभिन्न व्यापारिक मंडियों में पहुंचते थे। हिमालय के दुर्गम क्षेत्रों में की जाने वाली उनकी प्रत्येक यात्रा एक प्रकार की विजय यात्रा होती थी किन्तु 1962 के वाद चीन के विस्तारवाद एवं

तिब्बत के स्वतन्त्र अस्तित्व की समाप्ति ने भोटियों के सदियों पुराने व्यापार एवं आजीविका के प्रमुख आधार को नष्ट कर दिया। तीन दशक तक भारत-तिब्बत व्यापार 1992 के पश्चात् पुनः भारत-चीन व्यापार के रूप में आरम्भ होने से अब मात्र बीस प्रतिशत ही पुरानी पीढी के भोटिया व्यापारी अपने परम्परागत व्यापार से जुड़ पा रहे हैं क्योंकि तीस वर्षो के लम्बे अन्तराल के मध्य नई पीढ़ी के लोग पढ़ लिखकर राजकीय सेवाओं एवं आजीविका के अन्य साधनों की खोज हेतु भारत वर्ष के कोने कोने में बिखर चुके हैं।

के०सी०धीर (1992, 33-34) का कथन है कि बीसवीं सदी में निषिद्धियों एवं सामाजिक नियन्त्रण के अन्य तरीकों की शिथिलता के साथ कुमाऊँ का भोटिया समाज कुछ निश्चित विघटनकारी प्रभाव का अनुभव कर रहा है जिसके शीघ्र समाधान की आवश्यकता हैं। इस जनजाति की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर को बचाने हेतु प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय सरकारों को इनके मानसिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए तदनुसार योजनाओं का निर्माण करना पड़ेगा।

दारमा क्षेत्र के प्रसिद्ध भोटिया संस्कृति-विद् डूंगर सिंह ढकरियाल 'हिमरज' (2004, 95-96) ने भोटिया जनजाति की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर के विघटन पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा है कि सौका संस्कृति अब दम तोड़ने वाली है। प्राचीन शौका रीति-रिवाज, संस्कार, सामाजिक नियम, लोक विश्वास, खान-पान, परिधान इत्यादि परिस्थितियों के अनुसार शनैःशनैः बदलते जा रहे हैं जिसको हम चाहकर भी नही रोक पा रहे हैं। अब तो इस परिवर्तनशील युग में दिन प्रतिदिन सौका संस्कृति एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को बचा पाना असम्भव होता जा रहा है।

उपर्युक्त विवरण को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पिथौरागढ़ जनपद की इस कर्मठ, साहसी, पशुपालक एवं व्यापारिक जनजाति की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर का अध्ययन सांस्कृतिक भूगोल की दृष्टि से करने का सम्यक् प्रयास किया गया है। सांस्कृतिक भूगोल की दृष्टि से भोटिया जनजाति के अध्ययन के निम्नांकित उद्देश्य हैं।

1. सांस्कृतिक भूगोल की दृष्टि से भोटिया जनजाति के अध्ययन का महत्व।
2. भोटिया जनजाति की उत्पत्ति, उनके सांस्कृतिक क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण एवं भौगोलिक पर्यावरण का उनके जीवन पर प्रभाव का मूल्यांकन।
3. भोटिया जनजाति की जनांकिकी विशेषताओं की विवेचना करना।
4. भोटिया अधिवासों की स्थिति, वितरण, आकार एवं प्रकार, संरचना, आवासीय स्तर, आवासन

दशाओं एवं आवासन समस्याओं का अध्ययन करना।

5. भोटिया जनजाति के आर्थिक जीवन के विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन करना।

6. भोटिया जनजाति के सामाजिक जीवन एवं परम्परागत सामाजिक नियमों का विश्लेषण करना।

7. भोटिया जनजाति के संस्कारों, रीतिरिवाजों, आस्थाओं एवं लोक विश्वासों की विवेचना करना।

8. शासन द्वारा संचालित विभिन्न विकास कार्यक्रमों का भोटिया जनजाति के सामाजिक परिवर्तन एवं राजनैतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना।

विधितन्त्र

प्रस्तुत शोध कार्य प्राथमिक रूप से क्षेत्र सर्वेक्षण पर आधारित है। जनपद के उच्चावचीय स्वरूप, भौगर्भिक संरचना, जलप्रवाह, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मिट्टियाँ, खनिज पदार्थ, जनसंख्या, कृषि, व्यापार एवं उद्योग-धन्धों सम्बन्धी विवरणों को द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त किया गया है। जनपद के भोटिया जनजाति सांस्कृतिक क्षेत्रों को दो भागों- मुनस्यारी एवं धारचूला में विभाजित किया गया है। ये दोनों क्षेत्र एकल सामुदायिक विकास खण्ड एवं तहसीलें हैं। मुनस्यारी तहसील नौ न्याय पंचायत क्षेत्रों एवं धारचूला तहसील छैः न्याय पंचायत क्षेत्रों में विभाजित है। शोध कार्य को सुचारू रूप से सम्पादित करने हेतु न्याय पंचायत क्षेत्रों को ही अध्ययन की आधार इकाई माना गया है। उक्त दोनों भोटिया सांस्कृतिक क्षेत्र कुल 146 जनजाति ग्रामों एवं एक नगरीय क्षेत्र में विभक्त हैं। कुल जनजाति ग्रामों में से 10 प्रतिशत ग्रामों अर्थात प्रत्येक न्याय पंचायत में से एक ग्राम का यादृच्छिक प्रतिचयन करके उनकी सूचनाओं को प्रश्नावली एवं साक्षात्कार द्वारा संकलित कर विभिन्न सांख्यिकीय विधियों एवं मानचित्रों द्वारा विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोधकार्य में गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों उपागमों का प्रयोग किया गया है।

कार्य का संगठन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सुचारू रूप से सम्पादित करने हेतु आठ सुव्यवस्थित अध्यायों में विभक्त किया गया है। सर्वप्रथम परिचय को रखा गया है जो दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सांस्कृतिक भूगोल के अध्ययन का महत्व, सांस्कृतिक भूगोल की दृष्टि से भोटिया जनजाति के अध्ययन के उद्देश्य, विधि तन्त्र एवं कार्य का संगठन समाहित है, तथा द्वितीय भाग में भोटिया जनजाति ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

में, पिथौरागढ़ जनपद में भोटिया सांस्कृतिक क्षेत्र की स्थिति, सीमायें एवं भौगोलिक पर्यावरण का जनजीवन पर प्रभाव समाविष्ट है।

प्रथम अध्याय में पिथौरागढ़ जनपद की भौगोलिक पृष्ठभूमि को रखा गया है जिसमें जनपद की स्थिति एवं विस्तार, भौगर्भिक संरचना, उच्चावचीय स्वरूप, जल प्रवाह एवं हिमनद, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, जन्तु जगत, मिट्टियां एवं खनिज पदार्थो का विस्तृत वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में भोटिया जनजाति की जनांकिकी विशेषताओं को दर्शाया गया है जिसमें जनसंख्या के विभिन्न पक्षों का वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में भोटिया जनजाति के अधिवास एवं भवन प्रतिरूप का अध्ययन समाहित है। इसी के अन्तर्गत चयनित जनजाति ग्रामों के आवासीय स्तर, आवासन दशाओं एवं आवासन समस्याओं का उल्लेख किया गया है। चतुर्थ अध्याय में भोटिया जनजाति के आर्थिक जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन किया गया है। इसके अन्तर्गत कृषि, कृषि तकनीक, कृषि उपकरण, शस्य प्रतिरूप, शस्योत्पादन, कृषि में नव प्रवर्तन, पशुपालन, उद्योग धन्धे एवं व्यापार इत्यादि आर्थिक क्रियाकलापों का अध्ययन समाहित है।

पंचम् अध्याय में सामाजिक जीवन एवं परम्परागत सामाजिक नियमों का वर्णन किया गया है। षष्ठ अध्याय में संस्कार, रीतिरिवाज, आस्थाएं एवं लोक विश्वासों का अध्ययन समाहित है। सप्तम् अध्याय में विकास कार्यक्रम एवं सामाजिक परिवर्तन का विवरण सम्मिलित है जिसमें चीनी आक्रमण से उत्पन्न स्थिति के कारण भोटिया जनजाति के व्यापारिक क्रिया कलापों में ह्रास का अध्ययन एवं शासन द्वारा शिक्षा, समाज कल्याण, कृषि सुधार, कुटीर उद्योग से सम्बन्धित योजनाओं से सामाजिक परिवर्तन तथा भोटिया संस्कृति के भविष्य का अध्ययन किया गया है। अष्ठम् अध्याय में निष्कर्ष एवं उपसंहार को समाविष्ट किया गया है।

(ब) भोटिया जनजाति ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

जब हम किसी क्षेत्र अथवा मानव समुदाय के अतीत की गहराई में जाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम उस क्षेत्र और समुदाय से निकट सम्बन्ध स्थापित करके उसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन का गहन अध्ययन करते हैं। उनकी भाषा, वेश-भूषा, रहन-सहन, व्यवसाय, धार्मिक मान्यताओं, पूजा प्रतिष्ठानों एवं शारीरिक संरचना का अन्य समुदायों के साथ गहराई से तुलनात्मक अध्ययन करके अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वर्तमान स्थिति तक पहुचनें में वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों तथा समय-समय पर घटित राजनैतिक घटना चक्रों से उनका सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन किस प्रकार

प्रभावित रहा है। इसी के आधार पर ही उस समुदाय की ऐतिहासिक विवेचना तथा तिथिक्रम का भी निर्धारण किया जा सकता है।

महान हिमालय की उच्च घाटियों में भारत-तिब्वत सीमा पर अनादि काल से ही निवास करने वाली भोटिया जनजाति की ओर आज तक लोगों का ध्यान कम गया है। यही कारण है कि न तो उनका तिथिगत इतिहास मिलता है और न यह ज्ञात होता है कि वे कौन हैं तथा कब से इस पावन भूमि पर निवास करते आ रहे हैं। प्राचीन ग्रंथों, ऐतिहासिक प्रमाणों, पुरातात्विक साक्ष्यों, नृवंशीय खोजों, कुमाऊँ एवं गढ़वाल के शासकों के राजस्व अभिलेखों और बहियों तथा अनेक यूरोपीय एवं भारतीय लेखकों के खोजपूर्ण विवरणों से इस क्षेत्र और यहाँ निवास करने वाली इस जनजाति के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध होती है उससे इस दुर्गम अंचल के जनजीवन के विषय में काफी महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त होते हैं। भोटिया जनजाति के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए विभिन्न विद्वानों के निम्नलिखित गवेषणापूर्ण विचार प्रस्तुत हैं।

भोटिया (शौका) विद्वानों का मत

भोटिया जनजाति के इतिहास के सम्बन्ध में इस क्षेत्र के प्रमुख भोटिया (शौका) विद्वानों के शोधपूर्ण लेखों का उल्लेख करना अति आवश्यक है। इन विद्वानों का कथन है कि उत्तरांचल के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ के उत्तरी सीमान्त क्षेत्र में निवास करने वाली जनजाति, जिसे भोटिया, रं एवं शौका नाम से सम्बोधित किया जाता है वह वास्तव में भारत के मूल आदिवासी हैं। इस सम्बन्ध में भोटिया विद्वानों के विचार निम्नांकित हैं।

रतन सिंह रायपा (1974,16-44) का कथन है कि शौका भारत के मूल आदिवासी हैं। ईसा पूर्व से ही नहीं अपितु आर्यो के आगमन से पूर्व ही वे इस क्षेत्र पर निवास करते आ रहे हैं। इतना अवश्य है कि बाहर से आने वाली विभिन्न जातियों के साथ इनका सम्मिश्रण होता गया।

डा० शेर सिंह पांगती (1992, 10-18) ने महाभारत के आदि पर्व के आस्तीक सर्ग (1994, 114) में वर्णित हरिद्रक एवं पिङ्लक नामक कद्रू के पुत्रों से मुनस्यारी क्षेत्र के शौका लोगों का सम्बन्ध स्थापित किया है। उनका कथन है कि ये दोनों नाग भ्राता इस क्षेत्र में हल्दुआ और पिङ्लुवा के नाम से अपने परिवार के साथ निवास करते थे। इन दोनों भाइयों के वंश की रक्षा उनके शत्रु गरुड (चौगम्पा नामक विशाल पक्षी) से शकिया लामा नामक एक सन्त के शिष्य ने किया। अतः उसी समय से शकिया लामा के नाम से यहाँ के निवासी 'शौका' कहलाये।

राम सिंह पांगती (1980, 8-9) के अनुसार सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुमाऊँ के चन्द राजाओं द्वारा जो भूमि एवं राजस्व विषयक विवरण एवं बही खाते तैयार करवाये गये उनमें जोहार के निवासियों के लिए शौका या शउका और राज्य सम्मान प्राप्त व्यक्तियों के लिए बुड़ा (सरदार या सामन्त) शब्दों का प्रयोग किया जाता था। तिब्बत के भौगोलिक सर्वेक्षण के प्रथम सर्वेक्षक नैन सिंह रावत (1868,12) ने अपनी हस्तलिखित डायरी में जो वृत्तांत दिये हैं उनमें भोटिया शब्द तिब्बतियों के लिए प्रयुक्त होता था। तिब्बतियों द्वारा जोहार परगने को 'क्योनम' और जोहारियों को 'क्योनपा' कहा जाता था। सामूहिक रूप से इन भोटिया लोगों को तिब्बत के लोग 'मौन' या 'मौनपा' कहते थे। मौनपा का सम्बन्ध प्राचीन किरात जाति 'मौन ख्मैर' से है।

डूंगर सिंह ढकरियाल 'हिमरज' (2004, 56-58) का कथन है कि शौका संस्कृति वैदिक काल से पूर्व की आदिम जनजातीय संस्कृति है। यह कदापि झुठलाया नही जा सकता हैं कि हिमालय की इन बीहड़ खोह-कन्दराओं में समय-समय पर बाह्य जगत के विभिन्न जाति समुदाय व वर्ग के लोग दारमा क्षेत्र में आकर अवश्य बस गये थे। दारमा के शौका समुदाय के लोग दारमा राज्य के पोषक 'राजा च्यरका ह्या' के वंशज हैं।

अन्य भारतीय विद्वानों का मत

राम राहुल (1969, 24) के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में हिमालय क्षेत्र में कुलिंद, किरात, किन्नर, खस, दरद एवं अन्य जनजातियाँ निवास करती थीं। यहाँ समय-समय पर भारत एवं मध्य एशिया के विभिन्न भागों से स्थानान्तरण होते रहे। उत्तराखण्ड के उत्तरी क्षेत्र में भोटिया लोगों का स्थानान्तरण सम्भवतः सातवीं शताब्दी के पूर्व तिब्बत से हुआ। डा० शिव प्रसाद डबराल (1966, 21 57) ने इस जनजाति के लिए 'भोटान्तिक' शब्द प्रयुक्त किया है और इन्हे प्राचीन किरात जाति से सम्बन्धित माना है। उनका कथन है कि पुराणकालीन तंगणों, परतंगणों एवं ज्योहा आदि हिमालय की प्राचीन व्यापारिक जातियों से भी शौका जाति का विशेष सम्बन्ध है। पुराणों में उल्लिखित तंगण और परतंगण भाषायें प्राचीन किरात जाति की ही भाषायें हैं। इन्होने प्राचीन काल की पशुचारक भिल्ल-किरात जाति, जिसे 'मौन ख्मैर'के नाम से भी सम्बोधित किया जाता हैं, से भोटिन्तिकों का सम्बन्ध बताया है। दशवीं शताब्दी से इनके लिए भुट्टू, भोटा या भोटान्त नामों का प्रयोग आरम्भ हुआ।

राहुल सांकृत्यायन (1958,25-137) ने भोटिया जनजाति को प्राचीन किरात जाति से सम्बन्धित माना है। इन्होनें भोटान्तिक बोली की साम्यता किन्नर बोली से प्रदर्शित की है। इनका कथन है कि तिब्बत

के सीमावर्ती क्षेत्र के निवासी होने, दीर्घ काल तक तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रहने के कारण इनकी बोली में तिब्बती शब्दों का समावेश होना, इनकी वेशभूषा तथा खान पान में कुछ तिब्बती साम्य होना स्वाभाविक है किन्तु इन्हें तिब्बती मूल का मानता नितांत अनुचित है। पं0 बद्रीदत्त पाण्डेय (1937,517) का कथन है कि राजकिरात लोग शायद दारमा, ब्यांस एवं चौदांस के कुछ लोग हो सकते हैं। राजकिरात, किन्नर एवं भोटिया लोगों की बोली में शब्द साम्यता भी देखने को मिलती है।

डी0एन0 मजूमदार (1961, 63) का मत है कि भारत में आर्यों के आगमन एवं गंगा-सिन्धु के मैदानी भागों में उनके प्रसार के साथ-साथ मुण्डशवर एवं द्रविड़ जातियों के लोगों को उत्तर में स्थित निचली पहाडी घाटियों में शरण लेने को बाध्य होना पड़ा। कालान्तर में इन्होनें हिन्दू धर्म की सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार कर लिया। मजूमदार और पुसालकर (1952, 167) ने भी किरात जाति के उत्तर तथा उत्तर पूर्वी भारत में प्रसार की पुष्टि की है। पं0 लक्ष्मीदत्त जोशी (1962,26) ने इस क्षेत्र में खसों के आगमन की पुष्टि की है। उनका कथन है कि वैदिक आर्यो के आगमन के पूर्व ही मध्य एशिया से आये हुए खस जाति के लोग भारत के उत्तरी-पश्चिमी भू-भाग में फैल चुके थे। भोटिया लोग भी अपनी केवल दो जातियां बताते हैं- खस्या एवं डूम जो इनके खस जाति से सम्बन्धित होने की पुष्टि करता है। अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983,22-23) का कथन है कि मूल भिल्ल-किरात जाति कालान्तर में खस, शबर-मुन्ड, तिब्बती-चीनी एवं मंगोल जातियों के सम्पर्क में आकर तज्जनित रक्त सम्मिश्रण के कारण अपनी मुखाकृति, शारीरिक गठन, बोली-भाषा आदि में पर्याप्त परिवर्तन के दौर से गुजरने के उपरान्त वर्तमान भोटान्तिकों की पूर्वज रही।

पाश्चात्य विद्वानों का मत

ई0टी0अटकिन्सन (1981अ, 369) ने बोली-भाषा के आधार पर इन्हें तिब्बती मूल का माना है और मुखाकृति से मंगोलियन प्रजाति का बतलाया है। सी0ए0 शेरिंग (1906, 69-76) ने भी भोटियों को तिब्बती मूल का स्वीकार किया है। उनका कथन है कि तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक काल में 641 ईसवी पूर्व भोटिया लोग तिब्बत से स्थानान्तरित होकर इस क्षेत्र में आये।

जे0एच0 हट्टन (1961, 277) का मत है कि लघु हिमालय क्षेत्र में रहने वाली मंगोलियन प्रकार की प्रजाति का मूल स्थान नेपाल में भुटवाल है जो अब हिन्दू जाति में परिवर्तित हो गई है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट कि भोटिया जनजाति की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में भोटिया, भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। शोधार्थी का यह मानना है कि ये लोग भारत के ही मूल आदिवासी हैं। विश्व के विभिन्न देशों से जितनी भी जातियाँ हिमालय क्षेत्र में स्थानान्तरित होकर आई उनका प्रभाव इनके ऊपर निश्चित रूप से पड़ा होगा। तिब्बत एवं नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्र के निवासी होने, दीर्घकाल तक तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रहने के कारण इनकी बोली भाषा, खान-पान एवं वेश-भूषा में कुछ साम्यता होना स्वाभाविक है किन्तु इस आधार पर इन्हे तिब्बती एवं मंगोलियन मूल का मानना सर्वथा अनुचित है। इनकी भाषा में किरात, किन्नर, नाग, खस शब्दों का समावेश, खान-पान एवं रीतिरिवाजों में भारत के अन्य आदिवासियों एवं हिन्दू संस्कारों की प्रधानता से यह सिद्ध होता है के ये लोग भारत के ही मूल आदिवासी हैं।

पिथौरागढ़ में भोटिया सांस्कृतिक क्षेत्र की स्थिति एवं सीमाएँ

उत्तराखण्ड के उत्तरी भू भाग में हिमालय की दुर्गम पर्वत श्रेणियों, संकीर्ण नदी घाटियों एवं हिमाच्छादित श्रृंखलाओं के समीप 29° 49′ से 31° 27′ उत्तरी अक्षांश और 78° 38′ से 81° 3′ पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित लगभग 5000 वर्गमील का क्षेत्र भोटिया लोक संस्कृति की रंगस्थली है। इस भू-भाग में कुमाऊँ मण्डल के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ की मुनस्यारी एवं धारचूला तहसीलें, गढ़वाल मण्डल के सीमान्त जनपद चमोली की जोशीमठ तहसील एवं उत्तरकाशी जनपद की भटवाडी एवं डुण्डा तहसीलें सम्मिलित हैं। इस विशिष्ट सांस्कृतिक क्षेत्र को जार्ज विलियम ट्रेल (1828,1-5) ने भोट महाल्स, इ0टी0अटकिन्सन (1981ब, 83-151) ने 'भोटिया महाल्स', राहुल सांकृत्यायन (1958,25-138) ने 'भोटान्त प्रदेश', स्वामी प्रणवानन्द (1949,56) ने 'भोट प्रान्त' , डा0 शिवप्रसाद डबराल (1966,21) एवं अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983,3) ने 'भोटान्तिक प्रदेश' तथा रमेश चन्द्र तिवारी (1977, 253) ने 'भोटान्चल' नाम से चिन्हित किया है।

सी0ए0शेरिंग (1906,62-65) के अनुसार भोटिया लोग तिब्बत के समीप स्थित सभी गिरिद्वारों के पास पाये जाते हैं। उनमें माणा एवं नीती गिरिद्वार के पास रहने वाले भोटिया तोलछा एवं मारछा एवं जोहार में ऊंटाधुरा गिरिद्वार के समीप रहने वाले भोटिया, शौका या रावत कहलाते हैं। ये सभी पश्चिमी भोटिया माने जाते हैं और स्वयं को अन्य भोटियों से श्रेष्ठ मानते हैं। पूर्वी भोटिया दारमा परगना में रहते हैं जो तीन पट्टियों या उपविभागों में विभाजित हैं दारमा, ब्यांस एवं चौदाँस। दारमा पट्टी के

32° N
78° E
79°
80°
81°E
TRIBAL AREAS OF UTTARANCHAL
JAUNSARI- CHAKRATA
JAD- BHILANGANA
N
31° N
MARCHHA- TOLCHHA
JOSHIMATH
UTTARKASHI
BHOTIA
JOHARI- MUNSYARI
TEHRI
RUDRA
PRAYAG
DARMI- DHARCHULA
DEHRADUN
CHAMOLI
BYANSI-
CHAUDANSI
DHARCHULA
30°
BAGESHWAR
HARDWAR
PAURI
PITHORAGARH
RAJI
DHARCHULA-
KANALICHHINA
BOKSHA- DUGADDA
ALMORA
UDHAM SINGH NAGAR
BOKSHA
RAMNAGAR- BAJPUR
THARU
KHATIMA- SITARGANG
29°
INDEX
10 0 10 20 30 40 50 60 70 80
KM
KM
INTERNATIONAL BOUNDARY
STATE BOUNDARY
DISTRICT BOUNDARY
BLOCK BOUNDARY
28°

Fig. -1

निवासी न्यू एवं दारमा गिरिद्वार तथा चौदाँसे एवं ब्यांस पट्टियों के निवासी लम्पया लेख, मंगशान एवं लीपूलेख गिरिद्वार एवं नेपाल के तिंकर गिरिद्वार का उपयोग करते है। ये अन्य भोटियों से अधिक पिछड़े हैं।

अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983, 6-7) के अनुसार भोटिया नाम से सम्बोधित की जाने वाली जनजाति उत्तरांचल की छैः प्रमुख नदी घाटियों में फैली हुई है। ये छैः समूह शौका, जौहारी, दारमी, तोलछा मारछा एवं जाड़ कहलाते हैं। इनका विवरण निम्नलिखित है।

1. धौली नदी के पूर्ववर्ती भाग एवं कुटीयाँगती नदी की घाटी में स्थित दारमा परगना की तीन पट्टियों-दारमा, ब्याँस एवं चौदाँस के निवासी सामान्य रूप से शौका कहलाते हैं एवं अपनी पट्टियों के नाम पर दारमी, ब्याँसी तथा चौदाँसी कहलाते हैं।
2. जोहार परगना की गोरी घाटी के निवासी जौहारी कहलाते हैं। इनके दो प्रमुख वर्ग जेठौरा और रावत हैं ।
3. चमोली जनपद में विष्णुगंगा एवं धौली घाटी के भोटिया क्रमशः मारछा एवं तोलछा कहलाते हैं।
4. उत्तरकाशी में भागीरथी घाटी के पश्चिमी भाग में जाड गंगा के जादुङ और निलङ और बागोरी ग्रामों के निवासी जाड़ भोटिया कहलाते हैं (चित्र-1)।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में केवल पिथौरागढ़ जनपद में निवास करने वाली भोटिया जनजाति का अध्ययन सम्मिलित किया गया है। जिसका विवरण निम्नवत् है।

एस0सी0जोशी इत्यादि (1983, 195-196) का मत है कि कुमाऊँ के उत्तरी सीमान्त क्षेत्र में स्थित हिमालय पर्वतीय क्षेत्र के सहारे ट्रांस हिमालय की गोरी, धौली, कुटीयाँगती एवं उनकी सहायक नदियों की घाटियों में रहने वाले लोगों को भोटिया नाम से जाना जाता है एवं इन्हीं नदी घाटियों के नाम के आधार पर उन्हें विभिन्न उप नामों से सम्बोधित किया जाता है। पिथौरागढ़ जनपद की गोरी उपत्यका के निवासी जोहारी तथा धौली, काली एवं कुटीयाँगती नदी घाटियों के निवासी दारमी, चौदाँसी एवं ब्याँसी नाम से जाने जाते हैं (चित्र-2)।

किरन त्रिपाठी (1997, 5-12) के अनुसार चन्द एवं गोरखा शासनकाल में सम्पूर्ण गढवाल और कुमाऊँ को परगनों एवं पट्टियों में विभाजित किया गया था। ब्रिट्रिश युग में ट्रेल के बन्दोबस्तों द्वारा प्रशासनिक इकाइयों का सृजन हुआ। 1821 में ट्रेल ने अनेक संशोधन करते हुए छोटे परगनों को उन बड़े परगनों की पट्टियों के रूप में परिवर्तित कर दिया जिनसे वे पहले सम्बन्धित थे। बैकेट, जे0ओ0बी0

BHOTIA CULTURAL AREA
IN PITHORAGARH
LOCATION IN UTTARANCHAL
80° E
15'
30'
45'
81°E
31°
45'
30'
15'
30°
29°45' N
N
KM
0 50
Balcha Dhura
Lapthal
Keogad Pass
Kungri Bingri
Bamlas
Lampiya Dhura
Darma Pass
Mangsya Dhura
Milam
Martoli
Ralam
Sipu
Darma Ganga River
Lissar River
Kutiyangti River
Kuti
Lipulekh Pass
Gori River
Kalapani
Gunji
Bugdyar
Nagling
Garbyang
Kultham
Dhauli River
Sobla
Malpa
Kali River
Munsyari
Tejam
Nachni
Thal
Ramganga (E) River
Dharchula
Didihat
Jauljibi
KM
5 0 5 10 15 20
CHAMOLI
BAGESHWAR
TIBET
NEPAL
INDEX
International Boundary
District Boundary
Roads / Tracks
Mountain Pass
Permanent Snow Covered Area
Rivers
Main Places
I JOHAR
II DARMA
III BYANS-CHAUDANS

Fig -2

(1874, 17डी-19डी) ने इन परगनों में स्थित पट्टियों और इनके ग्रामों की सीमाओं का पुनर्निधारण किया। बैकेट ने भोटिया क्षेत्र को दारमा एवं जोहार दो परगनों में विभाजित किया। परगना दारमा में ब्यांस, चौदांस, दारमा मल्ला एवं दारमा तल्ला, चार पट्टियाँ एवं जोहार परगना में जोहार मल्ला, गोरीफाट एवं तल्ला देश, तीन पट्टियाँ सम्मिलित की गई।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि पिथौरागढ़ जनपद में भोटिया जनजाति सांस्कृतिक क्षेत्र को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम- मुनस्यारी तहसील (परगना जोहार) एवं द्वितीय-धारचूला तहसील (परगना दारमा)। इन दोनों भोटिया सांस्कृतिक क्षेत्र की स्थिति एवं सीमायें निम्नांकित हैं।

1. धारचूला तहसील (परगना-दारमा)

धारचूला तहसील जनपद पिथौरागढ़ की उत्तरी पूर्वी सीमान्त तहसील है। ब्रिट्रिश शासन काल में यह परगना दारमा कहलाती थी। इ0टी0 अटकिन्सन (1981ब, 98-100) के अनुसार परगना दारमा तीन पट्टियों-दारमा, ब्याँस और चौदाँस में विभाजित थी।1872 के बन्दोबस्त के बाद दारमा पट्टी पुनः मल्ला (ऊपरी) एवं तल्ला (निचली) पट्टियों में उपविभाजित की गई। दारमा पट्टी उत्तर में हुणदेश (तिब्बत), पश्चिम में पंचाचूली समूह एवं छिपला पर्वत चोटी की सम्मिलित श्रृंखला, दक्षिण में छिपला चोटी श्रृंखला से लेकर पूर्व में काली नदी एवं उक्त सम्मिलित श्रृंखला के अन्तिम भाग वीरग्नाजुंग द्वारा आच्छादित है। वीरग्नाजुंग पर्वत श्रेणी दारमा को ब्याँस घाटी एवं पट्टी चौदांस से पृथक् करती है। मल्ला एवं तल्ला दारमा पट्टियों के बीच की सीमा धौली नदी के दाहिने किनारे पर उत्तर-पूर्व में फैली हुई छिपला चोटी से तेजम तक विस्तृत पर्वत श्रृंखलाओं द्वारा निर्धारित होती है। दारमा पट्टी पूर्वी धौली के दोनों किनारों से लेकर वीरग्नाजुंग के पश्चिमी कगार तक फैली है। यहाँ से यह धौली नदी के दक्षिणी किनारे से काली नदी के संगम तक विस्तृत है। खेला नदी तल्ला दारमा एवं अस्कोट की सीमा बनाती है। इस प्रकार मल्ला दारमा पट्टी लिसर नदी की घाटी एवं धौली नदियों के ऊपरी भाग में एवं तल्ला दारमा पट्टी काली एवं धौली के संगम स्थल तक फैली है।

पट्टी ब्याँस उत्तर में हुणदेश (तिब्बत) एवं भोट क्षेत्र को पृथक् करने वाली पर्वत श्रेणियों, पूर्व में यहाँ से अकस्मात दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ने वाली इन्ही पर्वत श्रेणियों एवं काली नदी द्वारा आच्छादित है जो इसे नेपाल से पृथक करती है। यह पश्चिम में वीरग्नाजुंग एवं पट्टी चौदाँस और दक्षिण में काली नदी द्वारा घिरी है। यह भोट क्षेत्र का प्रमुख पूर्वी उपविभाग है। इसके अन्तर्गत कुटीयाँगती एवं काली

नदी की घाटियाँ सम्मिलित है। इस क्षेत्र में तिब्बत जाने के लिए तीन गिरिद्वार स्थित है जिसमें पश्चिम में लम्पिया लेख एवं मंगशान लेख तथा पूर्व में लीपू लेख प्रमुख हैं।

चौदाँस पट्टी उत्तर एवं पश्चिम में दारमा, उत्तर-पूर्व में ब्यॉस एवं दक्षिण-पूर्व एवं दक्षिण में काली नदी द्वारा आच्छादित है। यह धौली नदी के बायें किनारे से काली नदी के संगम तक एवं दक्षिण पूर्व की ओर विस्तृत पर्वत श्रृंखलाओं के सहारे काली नदी के किनारे स्थित वीरग्नाजुंग की चोटी तक फैली है। यह पट्टी उत्तर से दक्षिण लगभग 20 कि0मी0 लम्बाई एवं पूर्व से पश्चिम लगभग 13 कि0मी0 चौड़ाई में स्थित है।

2. मुनस्यारी तहसील (परगना-जोहार)

जनपद पिथौरागढ़ का दूसरा भोटिया सांस्कृतिक क्षेत्र मुनस्यारी तहसील है। ब्रिट्रिश शासन काल में यह परगना जोहार के नाम से जानी जाती थी। इ0टी0 अटकिन्सन (1981ब, 95 98) के अनुसार भोट क्षेत्र के परगना जुहार को 1872 के बन्दोबस्त में मल्ला एवं तल्ला पट्टी अर्थात् ऊपरी एवं निचला जुहार में विभक्त किया गया। इसके पश्चात् तल्ला पट्टी को पुनः गोरीफाट एवं तल्लादेश दो उपपट्टियों में विभाजित किया गया। मल्ला पट्टी पश्चिम में गढवाल के पैनखण्डा तल्ला, उत्तर में गढवाल के पैनखण्डा मल्ला, पूर्व में हुणदेश (तिब्बत) एवं पंचाचूली समूह की पार्श्ववर्ती सर्वोच्च श्रृंखला द्वारा दारमा से पृथक् होती है। यह दक्षिण में गोरीफाट पट्टी से घिरी है। जहाँ यह गोरी नदी के बायें किनारे पर स्थित ढँसी से पालों तक पंचाचूली समूह के पश्चिमी ढालों पर अव्यवस्थित श्रृंखला का निर्माण करती हुई उत्तर-पश्चिम में बग्ड़वार जल स्रोत द्वारा पृथक् होती है।

गोरीफाट उत्तर में उक्त पर्वत श्रृंखला एवं दक्षिण में छिपला चोटी के पश्चिमी ढाल से निर्मित श्रृंखला द्वारा आच्छादित है। पश्चिम में यह पर्वत श्रृंखला इसको अस्कोट परगना की अस्कोट मल्ला एवं सीरा परगना की डीडीहाट पट्टी से पृथक् करती है। यह पूर्व में दारमा मल्ला एवं तल्ला तथा पश्चिम में तल्लादेश द्वारा घिरी है। तल्लादेश पट्टी उत्तर में नन्दाकोट चोटी के दक्षिणी ढालों, पश्चिम में मल्ला दानपुर, पूर्व में गोरीफाट एवं दक्षिण में परगना सीरा की पट्टी से घिरी है। मल्ला जुहार पट्टी के उत्तरी हिमाच्छादित चोटियों वाले दस हजार फीट से अधिक ऊँचें भागों में भोटियों के चौदह मूल गाँव स्थित हैं। इन चौदह गाँवों एवं इनके बीच स्थित जल विभाजक रेखा तिब्बत की सीमा का निर्धारण करती है। भोटियों के शीतकालीन अधिवास मुख्यतः गोरीफाट में ही अवस्थित हैं जहाँ कालामुनी पर्वत श्रेणी के सुन्दर ढालों में गोरी नदी के किनारे सुरिंग, घोरपाटा, दरांती एवं दरकोट ग्राम स्थित हैं जो एक साथ मिलकर मुनस्यारी क्षेत्र का निर्माण करते है।

भौगोलिक पर्यावरण का जनजीवन पर प्रभाव

भौगोलिक पर्यावरण न केवल मानव जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्रियाकलापों को ही प्रभावित करता है वरन् उसके सांस्कृतिक निर्माण, आचरण के प्रतिमानों एवं अभिवृत्तियों को भी प्रभावशाली रूप से निर्धारित करता है। भोटान्तिक प्रदेश के कठोर प्राकृतिक पर्यावरण ने यहाँ के निवासियों के प्रत्येक पक्षों को प्रत्यक्षः प्रभावित किया है। कृषि योग्य भूमि का अभाव एवं शीताधिक्य के कारण कृषि भोटिया लोगों के आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार नहीं बन सकी। जलवायु की विशिष्टता ने इनके जीवन में ग्रीष्म एवं शीतकालीन निष्क्रमण के परम्परा की अनिवार्यता बनाये रखी । ऊँचाई पर स्थित समृद्ध चारागाह (बुग्याल) इनके पशुपालन में सहायक सिद्ध हुए। तिब्बत सीमान्त क्षेत्र में स्थित अनेक गिरिद्वारों ने इनको व्यापार के लिए सहायता प्रदान की। जलवायु की प्रचण्डता ने इनकी वेश-भूषा का निर्धारण किया। प्रकृति के नीरव एवं विस्तीर्ण स्वरूप ने इनके अन्दर आस्था एवं लोक विश्वास की भावना उत्पन्न की। इस प्रकार यहाँ के भौगोलिक पर्यावरण ने भोटिया लोगों के प्रत्येक पक्षों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला है।

रमेश चन्द्र तिवारी (1977, 266) के अनुसार इन क्षेत्रों में मानव अधिवासों का वितरण प्राकृतिक पर्यावरण एवं आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप दृष्टिगत होता है। भोटिया लोग सदैव दो प्रकार के स्थाई आवास बनाते रहें हैं, प्रथम ऊँचें भागों में एवं द्वितीय निचली गर्म घाटियों में। ग्रीष्मकाल में ये लोग ऊँचें भागों में प्रवास करते हैं और शीतकाल में निचली गर्म घाटियों में लौट आते हैं। उच्चस्थलीय आवासों में रहने का इनका प्रयोजन सीमित कृषि करना, बुग्याल चारागाहों में पशुचारण करना एवं तिब्बत के साथ व्यापार करना जबकि निचली गर्म घाटियों में रहने का प्रयोजन प्रचण्ड शीत से रक्षा एवं तिब्बत से क्रय की गई सामग्री को कुमाऊँ एवं तराई के विभिन्न क्षेत्रों में विक्रय करना है।

भोटिया लोग मुख्यतः माँसाहारी होते हैं। इसका प्रमुख कारण शीताधिक्य, भेड एवं बकरियों की अधिकता एवं खाद्यान्नों की कमी रही है। इनके भोजन में जौ से निर्मित सत्तू एवं चावल से बनी शराब का विशेष महत्व है। इनका मानना है कि ठण्डे क्षेत्रों में माँस एवं शराब का प्रयोग अधिक लाभप्रद है। इनके प्रत्येक क्रिया क्रिलापों एवं संस्कारों में इन दोनों वस्तुओं का प्रयोग अनिवार्यतः किया जाता है। इ0टी0 अटकिन्सन (1981ब, 111) का मानना है कि जोहार के भोटिया प्रत्येक प्रकार के पशुओं का माँस खाते हैं जबकि दारमा एवं ब्याँस के भोटिया याक का माँस खाते हैं किन्तु आजकल इन्होनें याक का माँस खाना छोड़ दिया है।

भोटिया समाज की परम्परागत वेश भूषा उपादेयता के अनुसार जलवायु-जनित आवश्यकताओं के अनुरूप है। इनके परिधानों में स्वनिर्मित ऊनी वस्त्रों का प्रयोग विशेषकर किया जाता है। इनकी वेश भूषा में उत्तरांचल एवं तिब्बत दोनों क्षेत्रों का सम्मिश्रण मिलता है। इनका परम्परागत व्यवसाय व्यापार एवं पशुपालन था किन्तु तिब्बत व्यापार की समाप्ति के पश्चात आजकल इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि एवं बागवानी होता जा रहा है। के०सी० धीर (1992,19-20) का कथन है कि भोटिया लोग कृषि पर बहुत कम निर्भर रहते हैं तथा इसको वे वैकल्पिक व्यवसाय के रूप में केवल मई से मध्य अक्टूबर तक के पाँच महीनों तक ही करते हैं। राम राहुल (1970,37) के अनुसार भोटिया लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि के अतिरिक्त भेड़पालन एवं व्यापार है।

प्राकृतिक पर्यावरण ने भोटिया लोगों के विभिन्न क्रियाकलापों के साथ ही उनकी भावनाओं, वैचारिक शक्ति एवं आस्थाओं पर भी सम्यक् प्रभाव डाला है। इस क्षेत्र में प्रकृति अपने विविध रूपों में परिलक्षित होती है। इन्ही भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही यहाँ के मावन जीवन में प्रकृति पूजा, देव पूजा, पूर्वजों की आत्माओं का पूजन, अन्य आस्थाओं एवं लोक विश्वासों का प्रचलन है। अमीर हसन (1971,56) का मानना है कि हिन्दू धर्म की प्रधानता के बावजूद भोटियों ने अपनी जनजातीय मान्यताओं एवं परम्पराओं को नही छोड़ा है। तिब्बत से परम्परागत व्यापारिक सम्पर्क के कारण भोटियों का बौद्ध धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है तथापि हिन्दू धर्म से वे हमेशा प्रभावित रहें हैं। हरिजन एवं समाज कल्याण विभाग उ०प्र०, की वार्षिक स्मारिका (1973, 50) के विवरण के अनुसार तराई की जनजातियों की तरह भोटियों में भी अपने पारम्परिक देवी-देवताओं तथा प्रेतात्माओं की शक्ति पर असीम आस्था है और वे आज भी अपने आदिम व्यवहारों का किसी न किसी रूप में अनुसरण करते हैं।

उपरोक्त विवेचना से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ के विशिष्ट भौगोलिक पर्यावरण ने भोटिया जन जीवन को समग्र रूप से प्रभावित किया है।

संदर्भ

अटकिन्सन, इ0टी0 (1981अ)	:	द हिमालयन गजेटियर, खण्ड दो, भाग एक, पृष्ठ 369
अटकिन्सन, इ0टी0 (1981ब)	:	द हिमालयन गजेटियर, खण्ड तीन, भाग-एक, पृष्ठ 83-151
जार्डन, टेरी जी0 एवं लेस्टर,	:	द ह्यूमन मोसाइकः ए थिमेटिक इन्ट्रोडक्सन टु कल्चरल ज्योग्राफी,
राउन्ट्री (1976)	:	पृष्ठ 5
जैन, जे0के0 एवं बोहरा दनमाल (1983)	:	विश्व का सांस्कृतिक भूगोल, पृष्ठ 18
जोशी, लक्ष्मीदत्त (1962)	:	खस फेमिली ला, पृष्ठ-26
जोशी, अवनीन्द्र कुमार (1983)	:	भोटान्तिक जनजाति, पृष्ठ 22-23
जोशी, एस0सी0, जोशी, डी0आर0एवं दानी,डी0डी0(1983)	:	कुमाऊँ हिमालयः ए ज्योग्राफिक पर्सपेक्टिव आन रिसोर्स डेवेलपमेन्ट, पृष्ठ 195-96
टेलर, ग्रिफ्फिथ (1960)	:	ज्योग्राफी इन द ट्वन्टींथ सेन्चुरी, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 13-14
ट्रेल, जार्ज विलियम (1828)	:	स्टेटिस्टकल एकाउण्ट आन द भोट महाल्स, एसियाटिक रिकार्ड्स XVI, पृष्ठ 30-35
डबराल, शिवप्रसाद (1966)	:	उत्तराखण्ड के भोटान्तिक, पृष्ठ 21
ढकरियाल,डूंगर सिंह (2004)	:	हिमालयी सौका सांस्कृतिक धरोहर भाग एक, पृष्ठ 95-96
तिवारी, आर0सी0 एवं त्रिपाठी, शंकेश्वर (1988)	:	सांस्कृतिक भूगोल- परिभाषा, विषय क्षेत्र तथा अध्ययन तत्व, पृष्ठ 10-17
तिवारी, रमेश चन्द्र (1977)	:	हिमानी सीमान्त के प्रकृति पुत्र, पृष्ठ 253-270
त्रिपाठी, किरन (1997)	:	अपने मुलुक का भूगोल, पृष्ठ 5-12
धीर, के0सी0 (1992)	:	कुमाऊँ भोटिया पीपुल्स फेड्रेसन द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पृष्ठ 33-34
प्रसाद, ईश्वरी (1980)	:	प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन, पृष्ठ 1-3
पाँगती, शेरसिंह (1992)	:	मध्य हिमालय की भोटिया जनजातिः जोहार के शौका, पृष्ठ 10-18
पाँगती, रामसिंह (1980)	:	जोहार का इतिहास व वंशावली, पृष्ठ 8-9

पाण्डेय, बद्रीदत्त (1990)	:	कुमाऊँ का इतिहास, पृष्ठ 74
प्रणवानन्द, स्वामी (1949)	:	कैलाश मानसरोवर, पृष्ठ 56
बैकेट, जे0ओ0बी0 (1874)	:	रिपोर्ट आन द रिवीजन आफ सेटिलमेण्ट आफ कुमाऊँ डिस्ट्रिक्ट, भाग-2, पृष्ठ 17 डी-19 डी
महाभारत (1994)	:	आदि पर्व आस्तीक सर्ग , प्रथम खण्ड, पृष्ठ 114
मजूमदार, डी0एन0 (1961)	:	रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 63
मजूमदार एवं पुसालकर (1952)	:	'द वैदिक एज', पृष्ठ 167
मिश्र, कैलाशपति (1982)	:	सांस्कृतिक भूगोल, पृष्ठ 20-48
रामअवध (1980)	:	अवध प्रदेश का सांस्कृतिक भूगोल, पृष्ठ-3
राम राहुल (1970)	:	द हिमालय बार्डर लैण्ड, पृष्ठ 24
रायपा, रतन सिंह (1974)	:	शौका सीमावर्ती जनजाति, पृष्ठ 16-44
रावत, नैनसिंह (1868)	:	नैनसिंह की हस्तलिखित डायरी, पृष्ठ-12
वेगनर, पी0एल0 एवं मिक्सेल, एम0 डब्लू0 (1962)	:	रीडिंग्स इन कल्चरल ज्योग्राफी, पृष्ठ 1
शेरिंग, सी0ए0 (1906)	:	वेस्टर्न तिब्बत एण्ड द ब्रिटिश बार्डर लैण्ड, पृष्ठ 69-76
स्पेन्सर, जे0ई0 एवं विलियम, एल0 थामस जूनियर (1969)	:	कल्चरल ज्योग्राफी पृष्ठ-4
स्टीवर्ड, जे0एच0 (1955)	:	द कन्सेप्ट एण्ड मेथड ऑफ कल्चरल इकोलॉजी इन द थ्योरी आफ कल्चरल चेन्ज, पृष्ठ-30-42
सौर, कार्ल, 'ओ0' (1927)	:	रिसेन्ट डेवेलपमेन्ट इन कल्चरल ज्योग्राफी, पृष्ठ 154-212
सांकृत्यायन, राहुल (1958)	:	कुमाऊँ , पृष्ठ 25-137
स्मारिका वार्षिक (1973)	:	हरिजन तथा समाज कल्याण विभाग, उ0प्र0 पृष्ठ- 50
हट्टन, जे0एच0 (1961)	:	कास्ट इन इण्डिया, पृष्ठ- 277
हसन, अमीर (1971)	:	ए बंच आफ वाइल्ड फ्लावर्स, पृष्ठ 56

अध्याय प्रथम

पिथौरागढ़ जनपद की भौगोलिक पृष्ठभूमि

स्थिति एवं विस्तार

1960 से पूर्व पिथौरागढ़, अल्मोडा जनपद की एक तहसील थी। 24 फरवरी 1960 में पिथौरागढ़ तहसील की 30 पट्टियों एवं अल्मोडा तहसील की दो पट्टियों को मिलाकर पिथौरागढ जनपद का सृजन किया गया। पी0सी0सक्सेना (1979, 1-2) के अनुसार इस जनपद का नामकरण नगर मुख्यालय पिथौरागढ़ के नाम पर हुआ। ऐसी मान्यता है कि कुमाऊँ के चन्द शासनकाल में पीरू (पृथ्वी गोसाई) नामक सोर के बन्दोबस्त अधिकारी ने यहाँ पृथ्वीगढ़ नामक किले का निर्माण कराया जो कालान्तर में पिथौरागढ़ के नाम में परिवर्तित हो गया। दूसरी स्थानीय मान्यता के अनुसार गोरखा शासन काल में पिथौरा नामक एक गोरखा राजा ने यहाँ एक किले का निर्माण करवाया जो पिथौरागढ़ कहलाया।

पिथौरागढ़ जनपद, उत्तरांचल के कुमाऊँ मण्डल की उत्तरी पूर्वी सीमा पर स्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार 29° 27′ उत्तर से 30° 48′ 45″ उत्तर तथा देशान्तरीय विस्तार 79° 48′ 10″ पूर्व से 81° 5′ 55″ पूर्व तक है। इसकी उत्तर से दक्षिण लम्बाई लगभग 150 कि0मी0 तथा पूरब से पश्चिम चौडाई 119 कि0मी0 है। जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7218 वर्ग कि0मी0 है जो उत्तरांचल के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 13.58 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से पिथौरागढ़ जनपद का उत्तरांचल में उत्तरकाशी एवं चमोली जनपद के बाद तृतीय स्थान है।

जनपद की सम्पूर्ण उत्तरी एवं पूर्वी सीमा अन्तर्राष्ट्रीय है, अतः राजनैतिक दृष्टि से यह उत्तरांचल की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर स्थित एक अति संवेदनशील जनपद है। इसकी सम्पूर्ण पूर्वी सीमा नेपाल देश एवं उत्तरी सीमा चीन (तिब्बत) देश से संलग्न है। इसके पश्चिम में चमोली एवं बागेश्वर जिले एवं दक्षिण में चम्पावत एवं अल्मोड़ा जिले स्थित हैं। काली नदी जनपद की सम्पूर्ण पूर्वी सीमा बनाती हुई इसे नेपाल देश से पृथक करती है। जनपद की सम्पूर्ण उत्तरी सीमा भारत-तिब्बत अन्तराष्ट्रीय सीमा रेखा द्वारा निर्धारित होती है। रामगंगा (पूर्वी) सरजू एवं पनार नदियाँ तथा अनेक पर्वत श्रेणियाँ इसकी पश्चिमी सीमा बनाती हैं, जबकि दक्षिणी सीमा का निर्माण सरजू नदी करती है जो इस जनपद को चम्पावत जनपद से पृथक् करती है।

DISTRICT PITHORAGARH
80°
15′
30′
45′
81°E
45′
30′
15′
30°
45′
30′
15′
29° N
CHAMOLI BAGESHWAR
TIBET(CHINA)
NEPAL
MUNSYARI
DHARCHULA
DIDIHAT
KANALICHINA
GANGOLIHAT
PITHORAGARH
MUNAKOT
ALMORA CHAMPAWAT
INDEX
INTERNATIONAL BOUNDARY
DISTRICT BOUNDARY
TEHSIL BOUNDARY
BLOCK BOUNDARY
DISTRICT HEADQUARTERS
TEHSIL HEADQUARTERS
BLOCK HEADQUARTERS
METALLED ROAD
10 0 10 20
KM KM
Fig -3 A
36°N
J & K
32°
H.P.
SIMLA
U
D
T
R
C
H
P
B
A
N
C
U
PITHORAGARH
DELHI
28°
NEPAL
LOCATION MAP
U.P.
LUCKNOW
76°
80°
84° E
100 0 100 200 300
KM KM

Fig -3

प्रशासनिक दृष्टि से जनपद को पाँच तहसीलों, आठ सामुदायिक विकास खण्डों, 64 न्याय पंचायतों एवं 1635 ग्रामों में विभाजित किया गया है। जनपद की पाँच तहसीलें पिथौरागढ़, डीडीहाट, मुनस्यारी, धारचूला एवं गंगोलीहाट हैं। पिथौरागढ़ तहसील, इस जनपद के दक्षिण में स्थित एक महत्वपूर्ण तहसील है। इसी तहसील के अन्तर्गत जनपद का मुख्यालय भी स्थित है। मुनस्यारी एवं धारचूला तहसीलें जनपद के लगभग आधे से अधिक क्षेत्रफल को समाहित किये हुए इसके उत्तरी एवं पूर्वी सीमान्त क्षेत्र में स्थित हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार जनपद की कुल जनसंख्या 462289 है। जनपद में लिंगानुपात 1031 एवं जनघनत्व 65 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि0मी0 है। जनसंख्या की दृष्टि से इस जिले का उत्तरांचल में आठवाँ स्थान है। जिले की कुल साक्षरता 76.48 प्रतिशत है जिसमें पुरुष साक्षरता 90.57 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 63.14 प्रतिशत है। जनपद में ग्रामीण जनसंख्या 87.06 प्रतिशत एवं नगरीय जनसंख्या 12.94 प्रतिशत है। जनपद में कुल तीन नगरीय क्षेत्र हैं जिनमें एक नगर पालिका (पिथौरागढ़) एवं दो टाउन एरिया (धारचूला एवं डीडीहाट) हैं (चित्र-3)।

पिथौरागढ़ जनपद की प्राकृतिक संरचना अत्यधिक जटिल है। इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली अनेक लघु एवं वृहद नदियों ने यहाँ के सम्पूर्ण पर्वतीय धरातल को अनेक भू-आकृतिक इकाइयों में विभक्त कर दिया हैं। जनपद के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 25 प्रतिशत भाग स्थायी हिमाच्छादित क्षेत्र के रूप में है जो सतत प्रवाहमान जल का अक्षय स्रोत है। इसी भाग से ही यहाँ की अधिकांश नदियाँ निकलकर जनपद के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवाहित होती हैं।

जनपद का भूमि उपयोग यहाँ के प्राकृतिक पर्यावरण एवं मानव जीवन की सामाजिक एवं आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध को प्रतिबिम्बित करता है। यहाँ का मात्र 13 प्रतिशत भू-भाग कृषि कार्य हेतु उपयुक्त है। विषम पर्वतीय धरातल, अनुपजाऊ मिट्टियाँ एवं कठोर जलवायु ने यहाँ की कृषि के विकास को अवरूद्ध कर दिया हैं। जनपद का 55 प्रतिशत से अधिक भू-भाग वनों से आच्छादित है। ये वन आर्थिक दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं किन्तु इनका अभी तक समुचित दोहन सम्भव नही हो सका है। यहाँ विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन, मिट्टियों के वितरण, जलवायु की विभिन्नता एवं फसल उपयोगिता पर निर्भर है। जनपद का शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल 3869 हेक्टेयर है जो इस क्षेत्र की कृषि की दृष्टि से अत्यधिक न्यून है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पिथौरागढ़ ज़नपद की भोटिया जनजाति का अध्ययन सांस्कृतिक भूगोल के संदर्भ में किया गया है। पिथौरागढ़ जनपद का भोटिया सांस्कृतिक क्षेत्र दो तहसीलों एवं दो एकल

STUDY AREA
N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
NEPAL
DIDIHAT TAHSIL
LILAM
DARKOT
DUGTU
GUNJI
MADKOT
SABILA
SIRTOLA
MARLAKIA
QUEETI
BANS BAGAR
NACHNI
KHET
SOSA
BARAM
DHARCHULA
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
80° E
15′
30′
45′
81°E
KM 5 0 5 10 KM
INDEX
INTERNATIONAL BOUNDARY
DISTRICT BOUNDARY
TAHSIL BOUNDARY
BLOCK BOUNDARY
NYAYPANCHAYAT BOUNDARY
TAHSIL HEADQUARTERS
NYAYPANCHAYAT HEADQUARTER

Fig. 4

विकास-खण्डों मुनस्यारी एवं धारचूला में विभक्त है। मुनस्यारी विकास खण्ड क्षेत्र नौ न्याय पंचायत क्षेत्रों एवं धारचूला विकास खण्ड क्षेत्र छैः न्याय पंचायत क्षेत्रों में विभाजित है। शोध प्रबन्ध में कार्यात्मक इकाइयों का आधार न्याय पंचायत क्षेत्रों को ही माना गया है (चित्र-4)।

भौगर्भिक संरचना

पिथौरागढ़ जनपद कुमाऊँ हिमालय के अन्तर्गत स्थित है। भौगर्भिक दृष्टि से जटिल इस जनपद को दक्षिण से लेकर उत्तरी तिब्बत सीमान्त क्षेत्र तक तीन मुख्य भौगर्भिक पेटियों में विभाजित किया जा सकता है। इन तीनों पेटियों का प्रादेशिक स्तर पर विभाजन तीन सक्रिय भ्रंश रेखाओं द्वारा किया गया है। लघु हिमालय पेटी मुख्य सीमान्त भ्रंश (M.B.F.) एवं मुख्य केन्द्रीय क्षेप भ्रंश **(M.C.T.)** के मध्य में स्थित है। इसका निर्माण मुख्यतः प्रिकैम्ब्रियन युग से लेकर कैम्ब्रो-आर्डोवीसियन युगीन प्राचीन रवेदार शैलों के अवसाद से हुआ है। महान हिमालय पेटी मुख्य केन्द्रीय क्षेप भ्रंश (M.C.T.) एवं ट्रांस हिमाद्रि भ्रंश (T.H.F.) के मध्य में स्थित है। यह पेटी प्रिकैम्ब्रियन युग की कायान्तरित शैलों एवं मध्य टरशियरी युगीन ग्रेनाइट शैलों के अवसाद से निर्मित है। ट्रांस हिमालय पेटी की दक्षिणी सीमा ट्राँस हिमाद्रि भ्रंश द्वारा निर्धारित होती है। इसका निर्माण प्रिकैम्ब्रियन युग के अन्त से लेकर क्रिटेसियस युग के अन्त तक के मोटे अवसाद से हुआ है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र के भौगर्भिक विकास में अवसादीकरण, ज्वालामुखी क्रिया एवं पर्वत निर्माणकारी विवर्तनिक क्रियाओं का विशेष योगदान रहा है (चित्र-5)।

इन भौगर्भिक पेटियों का विवरण निम्नलिखित है।

1. लघु हिमालय पेटी

यह पेटी दक्षिण में मुख्य सीमान्त भ्रंश एवं उत्तर में मुख्य केन्द्रीय क्षेप भ्रंश के मध्य में स्थित है। मुख्य सीमान्त भ्रंश रेखा अपनी सम्पूर्ण लम्बाई में हिमालय प्रदेश में असम से लेकर ब्यास घाटी तक विस्तृत है। आडेन (1934, 357-454) के अनुसार यह भ्रंश रेखा शिवालिक श्रेणियों की उत्तरी सीमा का निर्धारण करती है। इस पेटी की संरचना मुख्यतः तीन इकाइयों से निर्मित है (i) क्रोल-बेल्ट (ii) पिथौरागढ़-देववन-तेजम बेल्ट (iii) अल्मोड़ा-डूडातोली क्रिस्टलाइन थ्रस्ट सीट।

क्रोल बेल्ट का नामकरण शिमला क्षेत्र में स्थित क्रोल पर्वत के नाम से हुआ है जो शिमला क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम से लेकर नैनीताल के दक्षिण-पूर्व तक विस्तृत है। क्रोल बेल्ट के ऊपर फैले जमावों को वाडिया (1963, 363) ने इन्फ्रा क्रोल, क्रोल सैण्डस्टोन्स, क्रोल लाइमस्टोन्स एवं ताल क्वार्टजाइट, शैल

DISTRICT PITHORAGARH
GEOLOGY
N
80° E
15′
30′
45′
81°E
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
CHAMOLI
BAGESHWAR
TIBET (CHINA)
NEPAL
ALMORA
CHAMPAWAT
INDEX
CRETACEOUS FORMATIONS
SPITI SHALES/ TAL SERIES
TRIASSIC GROUP
MUTH SERIES / NAGTHAT GROUP
KROL SERIES/ MANDHALI GROUP
HAIMANTA GROUP / CHANDPUR GROUP
GARBYANG GROUP/ RALAM FORMATION
MARTOLI GROUP / DEOBAN GROUP
ALMORA - RAMGARH GROUP
FAULTS, THRUSTS
5 0 5 10 15 20
KM KM
SOURCE - PLANNING ATLAS OF UP (1987)

Fig. 5

संरचनाओं में विभक्त किया है। गैन्सीर (1964, 82) के अनुसार क्रोल थ्रस्ट ने शिवालिक श्रेणियों के अन्दर प्रवेश करके अनेक संरचनात्मक एवं अपरदनात्मक अवरोध उत्पन्न कर दिया है। पिथौरागढ़ जनपद में लघु हिमालय पेटी के दक्षिण भाग में क्रोल क्रम की शैलें पाई जाती हैं। इनका निर्माण काल प्रिकैम्ब्रियन युग से प्रारम्भिक पैलियोजोइक युग के मध्य माना जाता है।

अल्मोडा-डूडातोली थ्रस्ट सीट, कोल थ्रस्ट के ऊपर फैली हुई है, जो लघु हिमालय की आन्तरिक पेटी (पिथौरागढ़-देववन तेजम पेटी) को पृथक करती है। यह थ्रस्ट सीट पैलियोजोइक युग की शैलों के मोटे रवेदार अवसादों से निर्मित है। पिथौरागढ़-देववन-तेजम पेटी, मुख्य क्षेत्र भ्रंश के दक्षिण में शिमला प्रदेश के उत्तर-पश्चिम से काली नदी घाटी के दक्षिण-पूर्व तक विस्तृत है। यह पेटी वृहद स्तरीय मोटे चूना पत्थर, डोलोमाइट एवं क्वार्टजाइट के अवसादों से निर्मित है। इस पेटी के पूर्वी भाग को वल्दिया (1962ए, 27-48) के अनुसार दो उपपेटियों में बाँटा जा सकता है- उत्तर में चमोली-तेजम पेटी एवं दक्षिण में बदोलीसेरा-पिथौरागढ़ पेटी। भट्टाचार्य (1982, 200-204) के अनुसार देववन तेजम पेटी प्रिकैम्ब्रियन युगीन अवसादों से निर्मित है।

2. महान हिमालय पेटी

यह पेटी मुख्य केन्द्रीय क्षेप भ्रंश द्वारा लघु हिमालय पेटी से पृथक होती है। मुख्य केन्द्रीय क्षेप भ्रंश जिसे वल्दिया (1979, 143-157) ने वैकृता थ्रस्ट के नाम से सम्बोधित किया है, महान हिमालय पेटी की आधार सतह है। इसका निर्माण उच्च स्तरीय कायान्तरित शैलों के अवसाद से हुआ है। इसका स्पष्ट प्रदर्शन काली एवं गोरी गंगा की घाटी में होता है। महान हिमालय उत्तर में ट्रांस हिमाद्रि भ्रंश द्वारा सीमांकित है। इन दोनों भ्रंशों के मध्य में स्थित महान हिमालय वृहद भूविवर्तनिक अलगाव को प्रदर्शित करता है। इस पेटी का निर्माण खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971, 445 447) के अनुसार क्वार्टजाइट, मैग्नेटिक नीस, शिस्ट, डायोराइट एवं एम्फीबोलाइट शैलों से हुआ है।

3. ट्रान्स हिमालय पेटी

इस पेटी की दक्षिणी सीमा कुमार एवं अन्य (1976,81-109), वल्दिया (1973, 204 205) तथा शाह एवं सिन्हा (1974,1-27) के अनुसार मलारी फाल्ट द्वारा निर्धारित की जाती है। इसे वल्दिया (1987, 200-203) ने स्थानीय भाषा में ट्राँस हिमाद्रि फाल्ट कहा है। इसके सहारे-सहारे विभिन्न क्रम की शैलों का वृहद जमाव पाया जाता है। इस पेटी का निर्माण प्रिकैम्ब्रियन युग से लेकर क्रिटेशियस युगीन अवसाद से हुआ है। इस पेटी का निर्माण काँग्लोमरेट, चूनापत्थर, डोलोमाइट, स्लेट, क्वार्टजाइट एवं

DISTRICT PITHORAGARH
RELIEF
N
80° E
15′
30′
45′
81°E
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
CHAMOLI
BAGESHWAR
TIBET (CHINA)
NEPAL
ALMORA
CHAMPAWAT
INDEX
ABOVE 4800 MTS
3000- 4800
1200- 3000
BELOW 1200
5 0 5 10 15 20
KM
KM
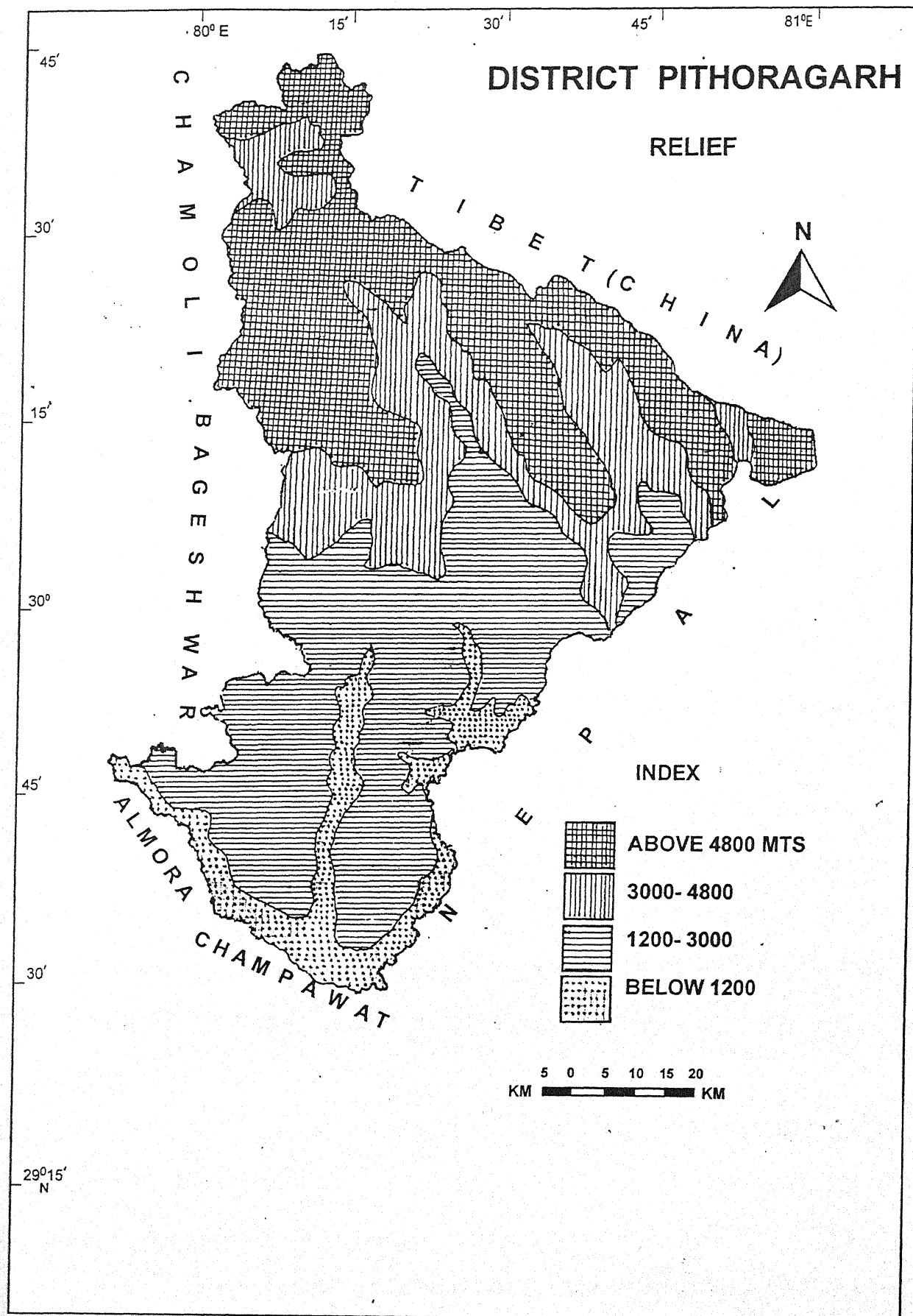
Fig. 6

जीवाश्म युक्त शैलों से हुआ है। इस पेटी के सुदूर उत्तरी भाग में समुद्री तली से ऊपर उठे हुए जीवाश्म युक्त पदार्थो के निक्षेप पाये जाते हैं। गैन्सीर (1964, 289) के अनुसार इस पेटी की जड़ें मानसरोवर क्षेत्र तक फैली हैं।

उच्चावचन

किसी प्रदेश के भौतिक स्वरूप या धरातलीय बनावट का उस प्रदेश के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक तत्वों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। पिथौरागढ़ जनपद के धरातलीय बनावट की मुख्य विशेषताएं विभिन्न आयामों में फैली हुई अनेक समान्तर पर्वत श्रेणियाँ, तीव्र पर्वतीय ढाल, तीव्र प्रवाही वृहद एवं लघु नदियाँ, विस्तीर्ण समतल घाटियाँ, एवं हिमाच्छादित शिखर हैं। जनपद के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 12 प्रतिशत भाग 1200 मीटर से कम ऊँचाई वाला है, जो मानव वसाव हेतु उपयुक्त है। लगभग 38 प्रतिशत भाग 1200 से 3000 मीटर के मध्य ऊँचा है। लगभग 28 प्रतिशत भाग 3000 से 4800 मीटर के मध्य ऊँचा है एवं लगभग 22 प्रतिशत भाग 4800 मीटर से अधिक ऊँचाई वाला है जो मानव वसाव के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है (चित्र-6)। जनपद में स्थित मुख्य पर्वत श्रेणियाँ का ढाल दक्षिण की ओर तीव्र और उत्तर की ओर मन्द है (चित्र 7 एवं 7ए)।

उच्चावचन के आधार पर सम्पूर्ण जनपद को तीन मुख्य भू आकृतिक प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है।

1. लघु हिमालय पेटी

इस पेटी के अन्तर्गत जनपद का अधिकांश दक्षिणी एवं मध्य भाग समाविष्ट है। यह एक स्थूल पर्वतीय भाग है जो दक्षिण में मुख्य सीमान्त भ्रंश एवं उत्तर में मुख्य केन्द्रीय क्षेप भ्रंश के मध्य में स्थित है। इस पेटी की चौड़ाई लगभग 75 किमी० एवं समुद्र तल से औसत ऊंचाई 1500 से 2700 मीटर के मध्य है। ये श्रेणियाँ मुख्यतः एलगोनियन युग से लेकर इयोसीन युग की उच्चस्तरीय दबाव एवं कायान्तरण से वनी शैलों से निर्मित हैं। यह सम्पूर्ण पेटी अनेक समान्तर पर्वत श्रेणियों एवं एक दूसरे को पृथक् करती हुई गहरी घाटियों से युक्त है। इस पेटी में पर्वत श्रेणियों की औसत ऊँचाई 1500 मीटर से 2700 मीटर के मध्य एवं घाटियों की गहराई 500 से 1200 के बीच है। इस पेटी की मुख्य विशेषतायें विस्तृत एवं खुली अन्तःपर्वतीय घाटियाँ हैं, जिसमें पिथौरागढ की सोर घाटी प्रमुख है। ये घाटियाँ मानव वसाव एवं कृषि की दृष्टि से बहुत उपयुक्त है। लघु हिमालय पेटी के अन्तर्गत सम्पूर्ण जनपद की अधिकांश आवासीय भूमि एवं कृषि योग्य भूमि समाविष्ट है।

DISTRICT PITHORAGARH
CONTOUR MAP
80° E
15′
30′
45′
81°E
45′
30′
15′
30°
45′
29°30′
N
14000
13000
12000
11000
10000
9000
8000
7000
6000
5000
4000
3000
2000
15000
DISTRICT PITHORAGARH
AVERAGE SLOPE
Below 10°
10°-15°
15°-20°
20°-25°
25°-30°
Above 30°
Fig -7 A
Km
Miles
Kms
(CONTOUR IN FEET)
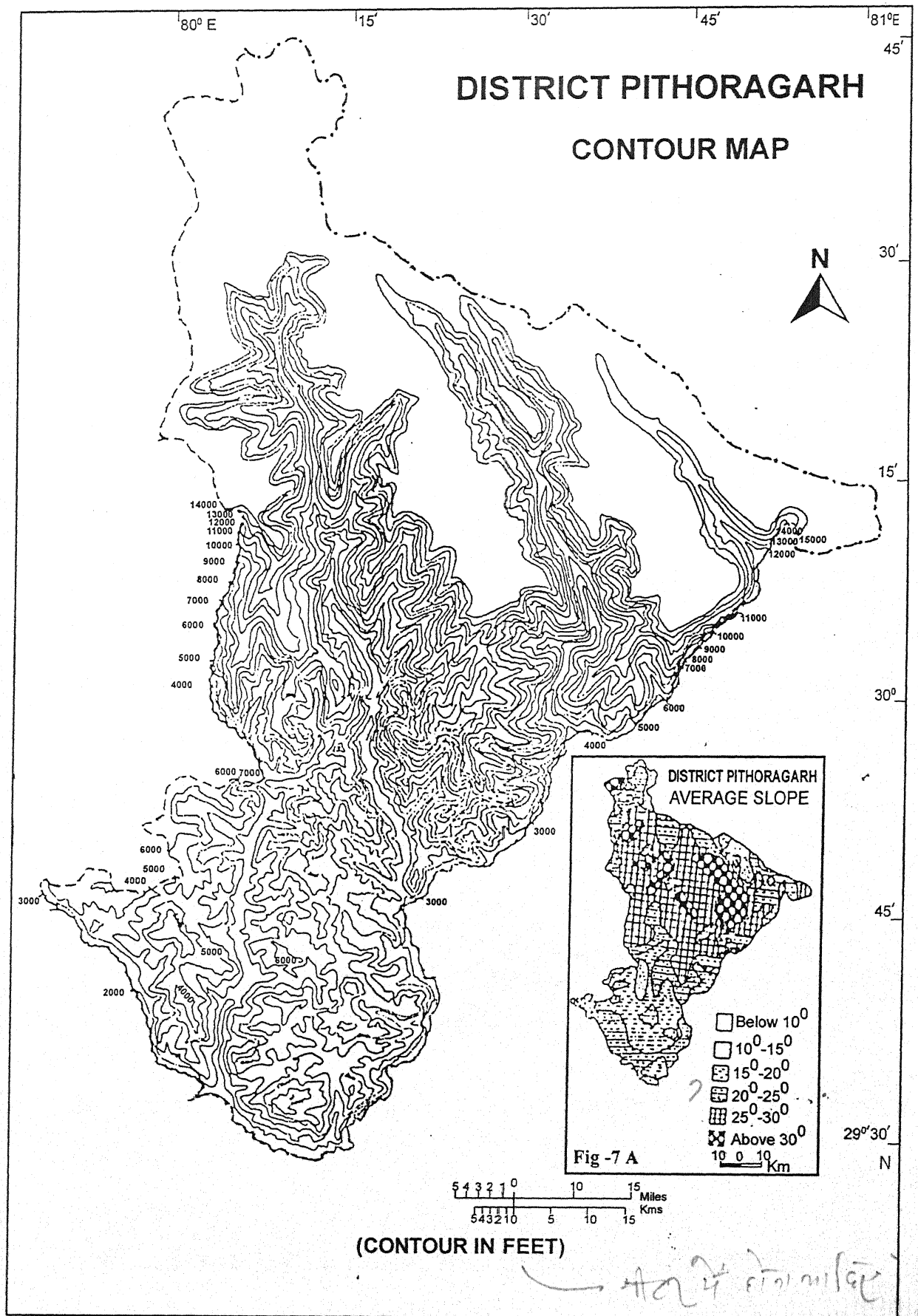
Fig -7

2. महान हिमालय पेटी

यह पेटी हिमालय की मुख्य सीमान्त भ्रंश के उत्तर में स्थित है। इस पेटी की चौड़ाई लगभग 50 कि०मी० एवं औसत ऊँचाई 4800 मीटर से 6000 मीटर या उससे अधिक है। जनपद में स्थित महान हिमालय की प्रमुख ऊँची चोटियाँ नन्दादेवी (7818 मीटर) नन्दाकोट (6862 मीटर), एवं पंचाचूली (6905 मीटर) है। यह पेटी अनेक हिमनद मालाओं से युक्त है। जिनमें मिलम हिमनद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह हिमनद नन्दादेवी एवं पंचाचूली पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित है। इस पेटी का विस्तृत धरातल धौलीगंगा एवं कुटीयाँगती नदियों द्वारा अपरदित लम्बवत कगारों से युक्त है। खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971, 447-448) के अनुसार इन नदी घाटियों की विच्छेदित परिच्छेदिकायें, उन्नतोदर ढालों से युक्त तीव्र घाटियों का निर्माण करती हुई, हिमालय के उत्थान एवं नदियों की प्रौढ़ावस्था का प्रदर्शन करती हैं। इस पेटी के अन्तर्गत जनपद का एक तिहाई से अधिक भाग समाहित है।

3. ट्रांस हिमालय पेटी

यह जनपद का सुदूर उत्तरी भाग है जो तिब्बत जल विभाजक या तिब्बत हिमालय के साथ साथ चीन (तिब्बत) की सीमा से संलग्न है। महान हिमालय की उच्च पर्वतीय श्रेणियों के उत्तर में तिब्बत की सीमा से संलग्न लगभग 45 कि०मी० की चौड़ाई में यह पेटी स्थित है। इसके अधिकांश भाग की औसत ऊँचाई 2500 मीटर से 3500 मीटर के मध्य है। इस भाग में यत्र-तत्र 6500 मीटर तक ऊँचाई वाली एकाकी चोटियाँ भी दिखाई देती हैं। इन पर्वत श्रेणियों एवं उच्च पठारी भागों की ऊँचाई उत्तर की ओर क्रमशः घटती जाती है जो अन्त में तिब्बत के पठार की ओर घटकर 5500 मीटर तक रह जाती है।

एस०सी०जोशी एवं अन्य (1983, 29), अनुसार पिथौरागढ़ जनपद के इस भाग में तीन प्रमुख नदी घाटियाँ सम्मिलित हैं।

(अ) गोरी नदी की सम्पूर्ण ऊपरी घाटी, मुनस्यारी का उत्तरी भाग, मरतोली के उत्तर में स्थित प्रसिद्ध मिलम हिमनद का अधिकांश भाग।

(ब) धौली नदी की सम्पूर्ण ऊपरी घाटी, सोबला का उत्तरी भाग एवं पंचाचूली समूह की चोटियों का उत्तरी पूर्वी एवं उत्तरी भाग।

(स) कुटीयाँगती नदी की सम्पूर्ण घाटी, गरब्याँग का उत्तरी एवं उत्तरी पश्चिमी असमान भाग।

भौगोलिक दृष्टि से यह पेटी वृष्टि छाया क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित है। इसकी प्रमुख श्रेणियाँ पवन विमुखी दिशा में स्थित हैं। सामान्यतः यह एक शुष्क प्रदेश है क्योंकि इसकी उत्तरपूर्व से दक्षिण पश्चिम

में विस्तृत उच्च पर्वत श्रेणियों में हिमनदों के वृहद क्षेत्र पाये जाते हैं। इस पेटी में पूर्व की ओर क्रमशः शुष्कता बढती जाती है और कुटीयाँगती घाटी में सापेक्षतया बहुत सीमित मात्रा में हिम का जमाव पाया जाता है।

जल विभाजक

हिमालय की मुख्य पेटी से आगे, पर्वत श्रेणियों की औसत ऊँचाई 5400 से 6000 मीटर के मध्य शेष रह जाती है। यहाँ कुछ ऐसी नदी घाटियाँ भी स्थित हैं जिनकी ऊँचाई बहुत ही कम है। अन्त में उत्तर की ओर 5300 से 6500 के मध्य ऊँचाई वाली अविरल पर्वत श्रेणियाँ पाई जाती हैं जो जल विभाजक के रूप में तिब्बत एवं भारत के मध्य की प्राकृतिक सीमा का निर्माण करती हैं। इन्हें प्रायः जास्कर पर्वत श्रेणियों एवं पर्वतीय दर्रो (गिरिद्वारों) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन्ही गिरिद्वारों से परम्परागत भारत-तिब्बत व्यापार प्रचलित है। पिथौरागढ़ जनपद के उत्तरी सीमान्त भाग में पश्चिम से पूर्व की ओर अनेक गिरिद्वार स्थित हैं जिनका विवरण तालिका 1.1 से प्रदर्शित है।

तालिका 1.1

पिथौरागढ जनपद के उत्तरी सीमान्त क्षेत्र में स्थित गिरिद्वार

गिरिद्वार का नाम	ऊँचाई(मीटर में)	व्यापार हेतु प्रयुक्त घाटी एवं लोगों का नाम
बाँचा धुरा	5384	मुनस्यारी के लोगों द्वारा
घटमीला धुरा	5347	मिलम घाटी से होकर
कियो धुरा	5439	प्रयुक्त
कुंगरी बिंगरी	5564	धौली की सहायक दारमा गंगा नदी घाटी
लोबे धुरा	5564	के लोगों द्वारा प्रयुक्त
नुवे धुरा	5650	कुटीयाँगती नदी घाटी
लम्पिया धुरा	5533	के लोगों
लीपू लेख	5122	द्वारा प्रयुक्त

स्रोत- एस०सी० जोशी एवं अन्य, कुमाऊँ हिमालय, 1983, पृष्ठ-30

अपवाह तन्त्र

जनपद के उत्तरी भाग में विस्तृत हिमाच्छादित क्षेत्र स्थित है जो अनेक हिमनदों का स्रोत एवं स्थायी जल का अक्षय भण्डार है। इसी भाग से अनेक वृहद् एवं लघु नदियाँ (जिन्हें स्थानीय भाषा में गाड़ एवं गधेरा कहते हैं) निकलकर दक्षिण की ओर प्रवाहित होती हैं। जनपद के अपवाह तन्त्र को वृहद स्तर पर दो मुख्य नदी क्रमों में विभाजित किया जा सकता है (चित्र-8)।

1. अलकनन्दा अपवाह तन्त्र
2. काली अपवाह तन्त्र

1. अलकनन्दा अपवाह तन्त्र

इस अपवाह तन्त्र के अन्तर्गत जनपद के सुदूर उत्तरी-पश्चिमी भाग में प्रवाहित होने वाली दो प्रमुख नदियों को सम्मिलित किया जाता है।

1. **गिर्थी** :- गिर्थी गंगा की उत्पत्ति ऊँटाधुरा पर्वतमाला के उत्तरी हिमाच्छादित भाग से होती है। इसमें तीन छोटी जलधारायें मिलती हैं, जो बालचाधुरा गिरिद्वार, कियोगाड़ गिरिद्वार एवं चितीचुना गिरिद्वार के हिमाच्छादित क्षेत्र से निकलती हैं। इसकी दो छोटी सहायक नदियाँ हैं। गिर्थी लगभग चार कि०मी० उत्तर की ओर प्रवाहित होकर उत्तर-पश्चिम की ओर मुड़ जाती है जहाँ इसमें कियोगाड़ नदी मिलती है। इसके बाद यह नदी चमोली जनपद में प्रवेश करती है और धौलीगंगा (पश्चिमी) में बाई ओर से मिल जाती है।

2. **कियोगाड** :- यह गिर्थी गंगा के उत्तर में पश्चिम की ओर प्रवाहित होने वाली अलकनन्दा अपवाह तन्त्र की एक छोटी नदी है जो जनपद के सुदूर पश्चिमी भाग में एक लघु प्रवहण क्षेत्र का निर्माण करती हुई चमोली जनपद (गढवाल क्षेत्र) में प्रवेश करती है।

2. काली अपवाह तन्त्र

यह जनपद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अपवाह तन्त्र है इसके अन्तर्गत निम्नलिखित नदियों को सम्मिलित किया जाता है।

1. **काली नदी** :- यह जनपद की प्रमुख नदी है जो जनपद की सम्पूर्ण पूर्वी सीमा का निर्माण करती हैं और अपनी सम्पूर्ण लम्बाई के सहारे इसे नेपाल से पृथक करती है। ट्रॉस हिमालय क्षेत्र में इसकी दो मुख्य सहायक नदियाँ हैं, कालापानी नदी एवं कुटीयाँगती नदी। कालापानी नदी का उद्गम, कालापानी के समीप लीपूलेख गिरिद्वार के पास से होता है। कुटीयाँगती नदी लम्पियाधुरा गिरिद्वार से निकलकर

DISTRICT PITHORAGARH
DRAINAGE SYSTEM
N
80° E
15′
30′
45′
81°E
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′
N
KEOGAD
GIRTHI RIVER
GUNKHA RIVER
LISSAR RIVER
DARMAGANGA RIVER
KUTI YANGTI RIVER
RALAM RIVER
GORI RIVER
MADKANI RIVER
RAMGANGA (E)
KALI RIVER
SARJU RIVER
THULIGAD
PERENNIAL
SEASONAL
KM 5 0 5 10 KM
MAIN GLACIERS AND BASINS
GORI
KUTI
DHAULI
RAMGANGA
THULI GAD
SARJU
GLACIERS
1. BAMLAS
2. MILAM
3. BAMBA
4. RALAM
5. SONA
6. PAINA
7. LEBONG
8. GUNNA
9. POTING
Fig -8 A

Fig -8

लम्बी दूरी तक दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई कालापानी नदी में मिल जाती है और इसके पश्चात इसका नाम काली हो जाता है। धौलीगंगा एवं गोरी गंगा इसके ऊपरी प्रवाह क्षेत्र की मुख्य सहायक नदियाँ हैं, जो एक दूसरे के समान्तर अत्यधिक लम्बाई में उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर प्रवाहित होती हैं। रियोगाड़ एवं चुईगाड़, काली की बहुत छोटी सहायक नदियाँ हैं जो धौली एवं गोरी के संगम के मध्य में बहती हुई स्वतन्त्र रूप से काली नदी में मिलती हैं। सरजू नदी काली की एक प्रमुख सहायक नदी है जो पंचेश्वर के समीप काली में मिलती है। गोरी एवं सरजू नदियों के संगम के मध्य चरमागाड़ एवं ठुलीगाड़, काली की छोटी किन्तु महत्वपूर्ण नदियाँ हैं जो कनालीछीना, पिथौरागढ़ एवं मुनाकोट विकास खण्ड क्षेत्रों में प्रवाहित होती हुई, पूर्व में काली से मिल जाती हैं। अपने ऊपरी प्रवाह क्षेत्र में काली तीव्र गर्जन करती हुई गहरी एवं संकीर्ण घाटियों में प्रवाहित होती है जबकि निचले भाग में धरातल का तीव्र कटाव करती हुई एवं अनेक वृहद जल धाराओं को समाहित करती हुई बहती है। इसकी विशाल जलराशि का सिंचाई एवं जलविद्युत निर्माण की दृष्टि से विशेष महत्व है। पंचेश्वर के समीप इस नदी पर बहुद्देशीय परियोजना भी प्रस्तावित है। काली बरमदेव (टनकपुर) के समीप मैदानी भाग में प्रवेश करती है जहाँ इसे शारदा के नाम से जाना जाता है।

2.गोरी नदी :- यह नदी स्थानीय रूप से गोरीगंगा के नाम से जानी जाती है। यह काली नदी के लिए सर्वाधिक मात्रा में जल संग्रहण करती है। इसकी उत्पत्ति दो मुख्य धाराओं से होती है। पूर्वी शाखा का उदगम ऊँटाधुरा पर्वत श्रेणी के दक्षिण में स्थित एक हिमनद से एवं पश्चिमी शाखा का उद्गम मिलम हिमनद से होता है। सामान्यतः यह नदी दक्षिण पूर्व की ओर प्रवाहित होती हुई अपने दोनों किनारों में अनेक वृहद एवं छोटी नदिकाओं के जल को समाहित करती है। इसमें मिलने वाली नदिकाओं में हिम की पर्याप्त मात्रा होती है। अपने प्रवाह मार्ग में यह संकीर्ण घाटियों का निर्माण करती है। प्रायः धौलीगंगा के समान्तर दक्षिण-पूर्व दिशा में बहती हुई अन्त में यह जौलजीवी के समीप काली नदी में मिल जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ रालमगाड़, मदकानी, जिम्बागधेरा, गुंखागाड़ इत्यादि हैं। यह अपने सम्पूर्ण प्रवाह क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के भूदृश्यों का निर्माण करती है। मिलम से नीचे रिलकोट की ओर इसका ढाल मन्द हो जाता है और इसकी विस्तृत घाटी में फाइलाइट एवं हिमोढों का वृहद जमाव पाया जाता है। हीम एवं गेन्सीर (1975,43) के अनुसार रिलकोट से नीचे मुनस्यारी के समीप इसमें अनेक गार्जो एवं द्रुतप्रवाहों की असन्तुलित श्रंखला पाई जाती है।

3. **धौली गंगा** :- यह काली की एक प्रमुख सहायक नदी है और यह जनपद के अधिकांश ऊपरी भाग में बहती है। इसकी उत्पत्ति जनपद के सुदूर उत्तर में स्थित दारमा गिरिद्वार के निकटवर्ती हिमनदों से होता है। इस नदी की दो मुख्य शीर्ष धारायें हैं - दारमा गंगा एवं लसर। इन दोनों धाराओं के सम्मिलित जल को धौलीगंगा के नाम से जाना जाता है। अपने सम्पूर्ण प्रवाह क्षेत्र में यह नदी सामान्यतः दक्षिण पूर्व दिशा में बहती है। यह तवाघाट के पास काली नदी से मिल जाती है। काली से मिलने के पूर्व इसमें अनेक छोटी-छोटी नदियाँ मिलती हैं जिनमें नागलिंगयाँगती, नन्दरमा, सेलायाँगती, कनचुई इत्यादि प्रमुख हैं।

4. **कुटीयाँगती** :- यह जनपद के सुदूर उत्तरी पूर्वी भाग में बहती है और काली की एक प्रमुख सहायक नदी है। इसकी उत्पत्ति लम्पिया धुरा गिरिद्वार के दक्षिणी किनारे पर स्थित एक छोटे हिमनद से होती है। यह नदी दक्षिण-पूर्व दिशा में बहती हुई अपने दोनों किनारों में अनेक हिमयुक्त जलधाराओं को समाहित करती है।

5. **सरजू** :- यह काली की एक प्रमुख सहायक नदी है और इसकी उत्पत्ति अल्मोडा जनपद के सुदूर उत्तरी भाग से होती है। यह जनपद पिथौरागढ़ की चम्पावत एवं अल्मोडा के साथ दक्षिणी-पश्चिमी सीमा बनाती है। पनार एवं रामगंगा (पूर्वी) इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं, जो सरजू में दाहिनें एवं बायें ओर से पृथक-पृथक मिलती हैं। यह नदी पूर्व दिशा में बहती हुई पंचेश्वर के पास काली से मिल जाती है।

6. **रामगंगा (पूर्वी)** :- इस नदी का उद्‌गम नन्दाकोट के पाद प्रदेश में स्थित पोटिंग हिमनद से होती है। यह सरजू की सहायक नदी है। अपने सम्पूर्ण प्रवाह क्षेत्र में यह उत्तर दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती हुई अपने ऊपरी भाग में पिथौरागढ़ एवं अल्मोड़ा के बीच की सीमा बनाती है। इसके दोनों किनारों में अनेक छोटी एवं बड़ी नदिकाएँ मिलती हैं। इसमें रामेश्वर के पास सरजू मिलती है। इसकी मुख्य सहायक नदियाँ भुजपत्रीगाड़, गरगटियागाड़, बरारीगाड़, माँगरगाड़ एवं कालापानीगाड़ इत्यादि हैं।

जनपद की सम्पूर्ण नदियाँ अपने अपवाह क्षेत्र में धरातलीय संरचना के अनुसार कहीं कहीं संकीर्ण एवं कहीं-कहीं विस्तृत गहरी घाटियों का निर्माण करती हैं। सामान्यतः जनपद की नदियाँ वृक्षाकार अपवाह तन्त्र का निर्माण करती हैं। ये पहाड़ियों एवं चोटियों के चारों ओर अरीय प्रतिरूप, भ्रंशों और क्षेप भ्रंशों के क्षेत्रों में जालीनुमा प्रतिरूप का निर्माण करती हैं।

खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971, 451) के अनुसार इस क्षेत्र की अधिकांश मुख्य नदियाँ अपने लम्बवत परिच्छेदिकाओं में पहले दस या बीस कि0मी0 तक तीव्र ढालों में बहती हैं और इसके बाद उनके ढाल क्रमशः मन्द होते जाते हैं जो तालिका 1.2 से स्पष्ट है।

तालिका 1.2

पिथौरागढ़ जनपद की प्रमुख नदियाँ एवं उनका प्रवहण क्षेत्र

नदी का नाम	कहाँ से	कहाँ तक	दूरी (कि०मी)	कुल प्रवहण क्षेत्र(मी०)	प्रवाह की गति मीटर/कि०मी०
गोरी गंगा	ऊँटाधुरा	मिलम	9	1200	1113.3
	मिलम	लीलम	38	2100	55.3
	लीलम	जौलजीवी	262	900	34.3
सरजू	झुण्डी	लोहार खेत	9	600	66.6
	लोहार खेत	पंचेश्वर	202	1070	5.3
काली	लीपूलेख	गरब्याँग	13	1500	115.4
	गरब्याँग	धारचूला	77	1800	23.4
	धारचूला	टनकपुर	154	620	4.0

स्रोत--खर्कवाल, एस०सी० एवं नित्यानन्द, (1971), यू०पी० हिमालय, पृष्ठ 451

हिमनद

जनपद के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 25 प्रतिशत भू-भाग स्थाई रूप से हिमाच्छादित है। 4750 मीटर से अधिक ऊँचाई में स्थित जनपद का उत्तरी क्षेत्र अनेक महत्त्वपूर्ण हिमनदों से युक्त है। इनके समीपस्थ भाग में अल्पाइन चारागाह की एक संकीर्ण पेटी स्थित है जो वर्ष में शीत ऋतु के दौरान 3 से 4 महीने तक हिम से आच्छादित रहती है। जनपद का यह क्षेत्र जल का अक्षय भण्डार है। गोरी, लसर, धौली, काली, कुटीयाँगती इत्यादि नदियों का उद्गम इसी हिमाच्छादित क्षेत्र से होता है। एम0चन्द (1980,122) के अनुसार पिथौरागढ जनपद में महान हिमालय की प्रमुख नदियों के हिमाच्छादित क्षेत्र का विवरण तालिका 1.3 से स्पष्ट है।

तालिका 1.3

पिथौरागढ़ जनपद की नदी घाटियों का विभिन्न ऊँचाई क्रम में स्थित हिमाच्छादित क्षेत्र

(क्षेत्रफल वर्ग कि0मी0 में)

नदी घाटी	3048 मीटर से नीचे	3048 से 3658 मीटर	3658 से 4724 मी0	4724 मीटर से अधिक	कुल योग
कुटी यांगती (ऊपरी काली घाटी को सम्मिलित करते हुए)	265	257	954	825	2301
धौली गंगा	195	245	618	405	1463
गोरी गंगा	166	431	846	407	1850
योग	626	933	2418	1637	5614

स्रोत- चन्द, एम0 'वाटर रिसोर्सेस इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट' , 1980, पृष्ठ 122

उपर्युक्त तालिका के विवरण से स्पष्ट है कि इन नदी घाटियों का अधिकांश भाग हिमाच्छादित है। 3048 मीटर से कम ऊँचे भागों में सर्वत्र हिमपात एक समान नहीं होता है और यहाँ हिमपात की अवधि 2 से 4 महीने तक की होती है। 4500 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले ऊपरी भाग वर्ष भर हिमाच्छादित रहते हैं। यह वह पेटी है जो जनपद की प्रमुख नदियों के लिए अक्षय जल का भण्डार संचय करती है। महान हिमालय श्रेणियों के विभिन्न भागों में हिमपात की मात्रा का विवरण रखना नितान्त कठिन है। इन श्रेणियों में अधिकतम् हिमपात अधिकतम वर्षा की समवर्षण रेखाओं का अनुसरण करता है।

एस0सी0 जोशी व अन्य (1983, 297) के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद की विभिन्न नदी घाटियों में स्थित हिमनदों का विवरण तालिका 1.4 से स्पष्ट है।

तालिका 1.4

पिथौरागढ़ जनपद की विभिन्न नदी घाटियों के हिमनद

नदी घाटी	हिमनद का नाम	प्रभावित क्षेत्र (वर्ग किमी0 में)	हिमनद क्षेत्र (वर्ग किमी0 में)
गोरी	मिलम	212.12	39.50
	पिन्डारी	6.40	2.20
	काला बलन्द	60.00	12.00
	टेराहार	31.00	4.50
	शंकल्पा	19.00	3.20
	बमलास	46.00	9.00
	बालडुंगा	31.00	8.00
	उत्तरी ल्वान	49.00	10.00
	मध्य ल्वान	15.00	2.00
	निम्न ल्वान	45.00	8.00
	पोटिंग ल्वान	30.00	8.50
	निम्न पोटिंग ल्वान	6.50	2.00
	तालकोट	24.00	5.00

	बलाटी	40.00	10.00
	ऊपरी रालमगाड़	26.00	8.50
	निम्न रालमगाड़	22.00	8.00
लसर	ऊपरी लसर	131.60	32.10
	मध्य लसर	115.51	27.60
	निम्न लसर	126.00	39.90
धौली	ऊपरी धौली	32.00	8.20
	मध्य धौली	19.00	3.10
	निम्न धौली	130.00	24.50
	सोना हिमनद	72.00	40.00
	बालिंग-गोल्फू	45.00	3.00
	सोबला-तेजम	22.00	4.00
काली	निम्न काली	30.00	5.20
	ऊपरी काली	10.00	5.00
कुटी.यांगती	कुटीयांगती घाटी के हिमनद	208	20.60

स्रोत-एस0सी0जोशी एवं अन्य, कुमायूँ हिमालय, 1983, पृष्ठ 297

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जनपद में गोरी, लसर, धौली एवं कुटीयाँगती नदी घाटियों के उत्तरी भागों में विशाल हिमनदों का क्षेत्र पाया जाता है (चित्र 8ए)। जनपद के सबसे बड़े हिमनद मिलम, लसर, धौली एवं सोना हिमनद हैं।

जलवायु

हिमालय के अन्य क्षेत्रों के समान पिथौरागढ़ जनपद में भी जलवायु सम्वन्धी क्रमबद्ध आंकड़ों की नितान्त कमी है अतः इनके अभाव में यहां की जलवायुविक दशाओं का वर्णन जनपद के कुछ सीमित स्थानों से प्राप्त मौसम सम्बन्धी आंकड़ों के आधार पर किया गया है। जनपद की जटिल धरातलीय संरचना के कारण एक घाटी से दूसरी घाटी एवं एक स्थान से दूसरे स्थान में सूक्ष्म जलवायुविक दशायें परिलक्षित होती हैं। ये सूक्ष्म जलवायुविक दशायें खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971, 453) के अनुसारै पर्वत श्रेणियों की अवस्थिति, ढाल प्रवणता, धूप एवं छाया की दशायें, वानस्पतिक आवरण की सघनता एवं हिमनदों की समीपता के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं।

सामान्यतः इस जनपद की जलवायु को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है (i) उष्ण कटिबन्धीय जलवायु (ii) शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु एवं (iii) शीत कटिबन्धीय या ध्रुवीय जलवायु। उष्ण कटिबन्धीय जलवायु मुख्यतः नदी घाटियों में एवं शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु लघु हिमालय श्रेणी में स्थित मध्यम ऊँचाई वाले भागों में पाई जाती है। जनपद का उत्तरी भाग जो वर्ष भर हिमाच्छादित चोटियों एवं कठोर शीत से युक्त रहता है वहां शीत कटिबन्धीय या ध्रुवीय जलवायु पाई जाती है।

देश के अन्य भागों के समान यहां की जलवायु भी मानसूनी मौसम चक्रों पर आधारित है। जिसको चार प्रमुख ऋतुओं में विभाजित किया जा सकता है।

(i) शीत ऋतु (मध्य दिसम्बर से मध्य मार्च)

(ii) ग्रीष्म ऋतु (मध्य मार्च से मध्य जून)

(iii) वर्षा ऋतु (मध्य जून से मध्य सितम्बर)

(iv) मानसून प्रत्यावर्तन ऋतु (मध्य सितम्बर से मध्य नवम्बर)

इन ऋतुओं का क्रमिक विवरण निम्नलिखित है।

शीत ऋतु

नवम्बर माह में यहाँ मानसून के समस्त लक्षण समाप्त हो जाते हैं एवं आकाश प्रायः बादलों से रहित और वायु में जलवाष्प की कमी होने लगती है। वायु की ताप संवहनता प्रकृति के कारण दिन में सूर्यातप धरातल पर निर्बाध रूप से प्राप्त होता है एवं निर्वात रातों में तापमान का तीव्रगति से विकिरण हो जाता है, जिससे दैनिक तापान्तर अधिक रहता है एवं कभी-कभी रात में भारी मात्रा में ओस भी

गिरती है। दिसम्बर एवं जनवरी माह में प्रायः औसत न्यूनतम एवं औसत अधिकतम् तापमानों में कमी होने लगती है, परिणामतः रातें ठण्डी एवं दिन कम गर्म रहते हैं। जनवरी वर्ष का सर्वाधिक ठण्डा माह होता है और इस समय जनपद के सम्पूर्ण भागों में अत्यधिक कम तापमान पाये जाते हैं।

यहाँ शीत ऋतु में जनवरी एवं फरवरी माह में वर्षा पश्चिमी विक्षोभों से होती है। 1500 मीटर एवं उससे अधिक ऊँचाई वाले भागों में वर्षा प्रायः हिमपात के रूप में होती है। इस ऋतु की वर्षा सम्पूर्ण जनपद में रबी की फसल के लिए अत्यधिक लाभप्रद होती है। शीतऋतु के महीनों में पर्वतों में रात्रि के समय विकिरण की तीब्रता के कारण ठण्डी वायु की सापेक्षिक आर्द्रता बढ़ जाती है। यह ठण्डी वायु पर्वत पदीय क्षेत्रों की ओर प्रवाहित होने लगती है, जिससे विशेषकर सुबह के कुछ घण्टों में घना कुहरा उत्पन्न हो जाता है।

ग्रीष्म ऋतु

मार्च एवं अप्रैल के महीनों में यहां तापमान में क्रमिक वृद्धि होने लगती है जिससे दिन कुछ गर्म होने लगते हैं किन्तु रातें लगातार ठण्डी रहती हैं। मई एवं जून के महीनों में तापमान तेजी से बढ़ने लगते हैं। इन महीनों में जनपद में अधिकतम तापमान पाये जाते हैं। मार्च एवं अप्रैल माह में अधिक ऊँचाई वाले भागों में गर्मी के अवशोषण से वर्फ के पिघलने एवं वाष्पीकृत होने से निम्न तापमान पाये जाते हैं। जबकि कम ऊँचाई वाले भागों में तापमान तेजी से बढ़ने लगते हैं। इस ऋतु में शीतकालीन महीनों की अपेक्षा वर्षा अत्यन्त कम होती हैं अत्यधिक ऊँचाइयों में, विशेषकर महान हिमालय के दक्षिणी ढालों के सहारे लगातार हिमपात होता रहता है और प्रतिदिन प्रायः गरजते हुए तूफान आते हैं। अप्रैल एवं मई माह में गर्मी के बढ़ने पर, स्थानीय ताप संवहन के प्रभाव से जनपद के अधिकांश भागों में गरजते हुए तूफान एवं ओला युक्त तूफान आते हैं। इस समय जनपद के कुछ निश्चित ऊँचाई वाले भागों में गर्म एवं शुष्क हवायें भी प्रवाहित होती है। औसतन इस मौसम की विशिष्ट दशायें स्वच्छ आकाश, न्यून आर्द्रता, धूल भरे तूफान एवं ओलायुक्त तूफान हैं।

वर्षा ऋतु

मैदानी भागों की अपेक्षा इस जनपद में वर्षा ऋतु का प्रारम्भ सापेक्षतः पहले हो जाता है क्योंकि यहां अधिक ऊँचाई वाले स्थानों की वायु पहले ही संतृप्त होकर नीचे उतरते समय ठण्डी होकर वर्षा के रूप में परिणित हो जाती है। यहां जुलाई एवं अगस्त महीनों में दक्षिणी पश्चिमी मानसून से 80% तक

DISTRICT PITHORAGARH
MEAN MONTHLY TEMPERATURE
2003
N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
ALMORA
CHAMPAWAT
NEPAL
TEMPERATURE IN ^{0}C
50
40
30
20
10
0
J F M A M J J A S O N D
MILAM
DHARCHULA
PITHORAGARH
INDEX
MONTHS
KM 5 0 5 10 KM
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
80° E
15′
30′
45′
81°E
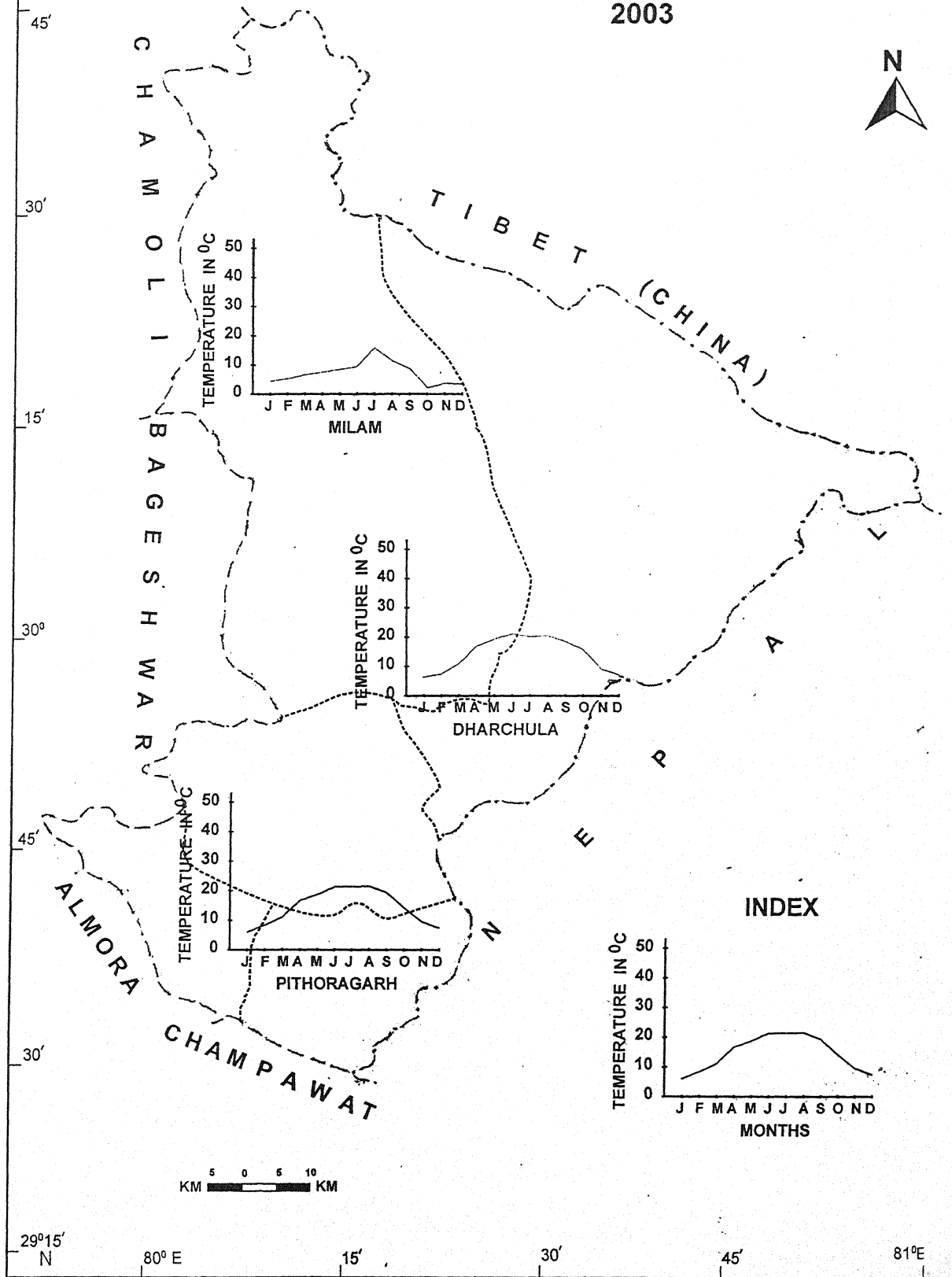
Fig. 9

वार्षिक वर्षा होती है। इस ऋतु में दैनिक तापान्तर में वहुत कम अन्तर पाया जाता है और वायु की गति प्रायः मन्द रहती है।

मानसून प्रत्यावर्तन ऋतु

सामान्यतः सितम्बर माह में मानसून क्षीण होने लगता है और वर्षा प्रायः लम्बे अन्तराल के बाद होने लगती है। मानसून प्रत्यावर्तन के साथ पवने उत्तर पूर्व, उत्तर एवं उत्तर पश्चिम की ओर मुडने लगती हैं। इस समय आकाश प्रायः स्वच्छ एवं आर्द्रता में कमी पाई जाती है। अक्टूबर एवं नवम्बर के महीनों में तापमानों में सामान्य गिरावट होने लगती है जिससे शीत ऋतु के आगमन का आभास होने लगता है।

उपर्युक्त मौसमों के दौरान जनपद में तापमान, वर्षा, आर्द्रता इत्यादि दशाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

तापमान

सामान्यतः जनपद में वर्ष के 9 महीनों तक तापमान कम पाये जाते हैं। किन्तु ऋतुओं के अनुसार भिन्न-भिन्न ऊँचाई वाले स्थानों में तापमानों में पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है। सर्वाधिक ठण्डे माह जनवरी में लघु हिमालय पेटी में स्थित पिथौरागढ़ का औसत तापमान 8°C, महान हिमालय पेटी में स्थित धारचूला का औसत तापमान 7°C एवं मिलम (मुनस्यारी) का 4.8°C पाया जाता है। मार्च से जून के प्रारम्भ तक तापमान तेजी से बढ़ने लगते हैं। जून यहां का सर्वाधिक गर्म महीना है। इस माह में पिथौरागढ़ का औसत तापमान 23.6°C, धारचूला का 21.5°C, एवं मिलम का 16.7°C, पाया जाता है (चित्र-9)। मध्य जून से वर्षा ऋतु का आगमन होने से तापमानों में गिरावट होने लगती है। जनपद के कुछ प्रमुख स्थानों का औसत मासिक तापमान तालिका 1.5 से प्रदर्शित है।

DISTRICT PITHORAGARH
MEAN MONTHLY RAINFALL
2000
N
RAINFALL IN CMS
60
80
100
120
140
160
180
200
TIBET (CHINA)
60 Cm
80 Cm
100 Cm
120 Cm
140 Cm
160 Cm
200 Cm
180 Cm
120 Cm
160 Cm
MUNSYARI
DIDIHAT
DHARCHULA
BERINAG
PITHORAGARH
RAINFALL IN CMS.
J F M A M J J A S O N D
ISOHYETS IN CMS.........100
KM 5 0 5 10 KM
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
80° E
15′
30′
45′
81°E
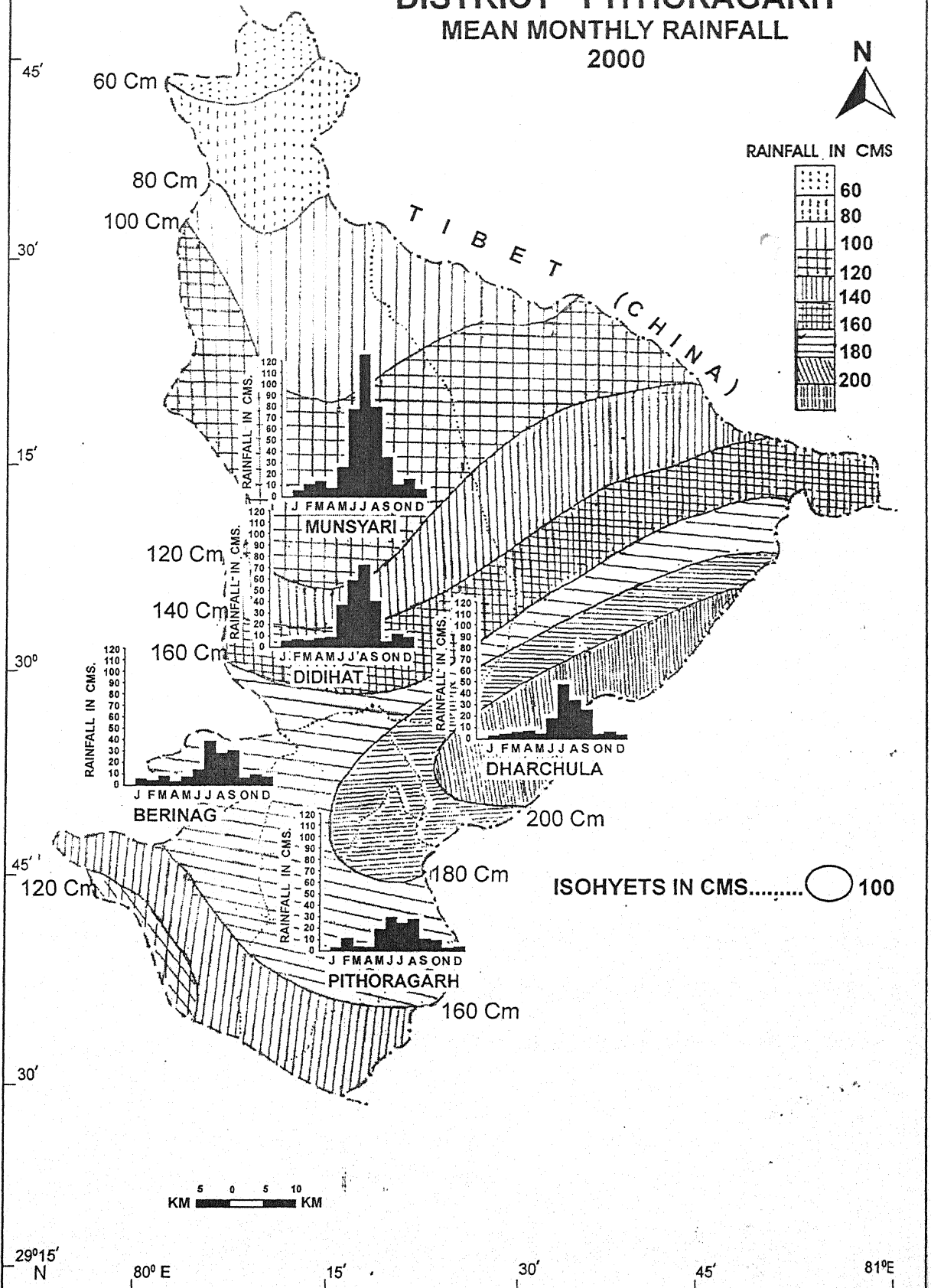
Fig. 10

तालिका 1.5

पिथौरागढ़ जनपद के विभिन्न स्थानों का औसत मासिक तापमान (से0 में)

(ऊँचाई मीटर में)

स्थान	समुद्र तल से ऊँचाई	जन0	फर0	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सित0	अक्टू0	नव0	दिस0
पिथौरागढ़	1645	7.95	9.25	12.9	18.0	20.1	23.6	23.6	23.6	21.5	17.1	11.3	8.8
धारचूला	2375	7.0	9.5	13.0	16.0	20.8	21.9	21.5	21.5	20.0	16.2	10.7	9.1
मिलम	3707	4.8	5.6	6.6	7.2	7.8	11.5	16.7	14.1	9.4	3.2	4.2	4.0

स्रोत- डी0ए0आर0एल0 पिथौरागढ़, वार्षिक प्रतिवेदन, वर्ष 2003

वर्षा - पिथौरागढ़ जनपद में पर्वत श्रेणियों की स्थिति, धरातलीय विषमता एवं ढाल प्रवणता के अनुसार वर्षा में अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है। यहाँ तापमान के समान ही ऊँचाई के अनुसार वर्षा की मात्रा में भी कमी दिखाई देती है। जनपद में वर्षा की मात्रा पर्वत श्रेणियों के पवनाभिमुख एवं पवनाविभुख ढालों के अनुसार तथा विभिन्न प्रकार के धरातलीय स्वरूपों (घाटी, पर्वत शिखर, पर्वत श्रेणियों के बाह्य भाग एवं हिमाच्छादित क्षेत्र) के अनुसार कम या अधिक पाई जाती है। सामान्यतः यहाँ केवल 2500 मीटर की ऊँचाई तक वर्षा तेजी से बढती हुई दिखाई देती है, जबकि इस ऊँचाई से ऊपर वर्षा की मात्रा असामान्य रूप से घटती जाती है। पिथौरागढ जनपद के विभिन्न स्थानों में वर्षा के वितरण में विभिन्नता पाई जाती है। यहाँ वर्षा जुलाई, अगस्त एवं सितम्बर माह में सर्वाधिक होती है। जुलाई माह में पिथौरागढ़ में 26 से0मी0, डीडीहाट में 60 से0मी0 बेरीनाग में 41 से0मी0, धारचूला में 49 से0मी0 एवं मुनस्यारी में 128 से0मी0 रिकार्ड की गई है (चित्र-10)। शीत ऋतु में वर्षा की मात्रा कम पाई जाती है। यहाँ 1500 मीटर से अधिक ऊँचे भागों में वर्षा हिमपात के रूप में होती है। जनवरी एवं फरवरी माह में पिथौरागढ़ में 2 फीट, मुनस्यारी में 5 फीट एवं महान हिमालय पेटी में स्थित मिलम में 5 फीट से अधिक हिमपात होता है।

पिथौरागढ़ जनपद के प्रमुख स्थानों की औसत मासिक वर्षा तालिका 1.6 से स्पष्ट है।

तालिका 1.6

पिथौरागढ़ जनपद के विभिन्न स्थानों की औसत मासिक वर्षा (से0मी0में)

स्थान	ऊँचाई (मी0में)	जन0	फर0	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जु0	अग0	सित0	अक्टू0	नव0	दिस0
पिथौरागढ़	1645	3.5	12.3	4.4	4.0	21.7	34.2	25.9	32.6	11.8	8.6	2.5	3.0
धारचूला	2375	3.0	4.9	7.7	8.5	6.8	18.7	49.4	36.8	26.9	5.3	6.8	2.5
बेरीनाग	1920	6.3	5.5	6.6	3.5	7.8	15.2	40.6	31.0	32.9	7.0	10.4	8.3
डीडीहाट	1850	4.5	6.2	5.8	7.0	7.5	37.8	60.3	75.4	43.0	8.0	12.3	10.4
मुनस्यारी	2135	6.5	9.4	14.1	7.5	28.0	79.3	128.0	80.5	36.9	11.4	15.6	8.8

स्रोत- डी0ए0आर0एल0 पिथौरागढ़, वार्षिक प्रतिवेदन, वर्ष-2000

उत्तरी पिथौरागढ़ वन प्रभाग की प्रबन्ध योजना, वर्ष-2000

जलवायु पेटियाँ

इस जनपद को यहाँ की जलवायुविक दशाओं के अनुरूप विभिन्न जलवायु पेटियों में विभक्त करना अत्यन्त कठिन है। इनका वृहद स्तर पर निर्धारण केवल स्थानीय दशाओं के आधार पर ही सम्भव हो सकता है। खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971, 454) के विवरण के अनुसार विभिन्न ऊँचाई क्रम के आधार पर इस जनपद को 6 वृहद जलवायु पेटियों में विभक्त किया जा सकता है जिसका प्रदर्शन तालिका 1.7 में किया गया है।

तालिका 1.7

पिथौरागढ़ जनपद की जलवायु पेटियाँ

जलवायु पेटियाँ	ऊँचाई मीटर में	औसत तापमान सेन्टीग्रड में		
		वार्षिक	जून	जनवरी
उष्णशीतोष्ण पेटी	900-1800	13.9	21.1	6.1
शीत शीतोष्ण पेटी	1800-2400	10.3	17.2	2.8
शीत पेटी	2400-3000	4.5	13.3	1.7
अल्पाइन पेटी	3000-4000	3.0	5.6	छः माह तक 0°C से नीचे
हिमाच्छादित पेटी	4000-4800	दस माह तक 0°C से नीचे एवं दो माह तक 2.2 एवं 3.9°C के मध्य		जुलाई एवं अगस्त में हिम का पिघलाव
स्थाई रूप से हिमाच्छादित पेटी	4800 से ऊपर	वर्ष भर 0°C से कम		

प्राकृतिक वनस्पति

पर्वतीय प्रदेशों में वनस्पति के ऊर्ध्वाधर वितरण में ऊँचाई तथा जलवायु की निर्णायक भूमिका रहती है किन्तु इसके निर्धारण में धरातलीय बनावट एवं शैलों की रासायनिक संरचना का भी प्रमुख योगदान होता है। जी0एस0पुरी (1960, 29) के अनुसार हिमालय प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में वानस्पतिक प्रकारों के निर्धारण में मिट्टियों एवं भौगर्भिक संरचनाओं का विशेष महत्त्व है। इन्हीं तत्वों के फलस्वरूप यहां विभिन्न प्रकार के वन पाये जाते हैं। जनपद पिथौरागढ़ में धरातलीय बनावट, भौगर्भिक संरचना, शैलों के प्रकार, मिट्टियों एवं जलवायु दशाओं में विभिन्नता के कारण प्राकृतिक वनस्पति में भी अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है।

जनपद के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल का 55 प्रतिशत से अधिक भाग वनों से आच्छादित है। यहां मुख्यतः तीन श्रेणियों के (आरक्षित, संरक्षित एवं अवर्गीकृत) वन पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त राजस्व विभाग के अधीन सिविल, सोयम, पंचायती, व्यक्तिगत, म्यूनिसिपल एवं कैण्टोनमेन्ट के वन भी पाये जाते हैं। पिथौरागढ़ वन प्रभाग मे 32 वीट, 6 रेंज एवं 2 उपवन प्रभाग हैं। प्रथम उपवन प्रभाग का मुख्यालय पिथौरागढ़ तथा दूसरे का मुख्यालय बेरीनाग है। बेरीनाग उप-वन प्रभाग में मुनस्यारी गंगोलीहाट एवं बेरीनाग राजिय़ाँ आती हैं। अस्कोट एवं धारचूला राजियों को मिलाकर अस्कोट वन्य जीव अभयारण्य बनाया गया है। पिथौरागढ़ वन प्रभाग में राजिवार आरक्षित

वनों का विवरण तालिका 1.8 से प्रदर्शित है।

तालिका 1.8

पिथौरागढ़ जनपद में आरक्षित वनों का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)

वन राजि का नाम	आरक्षित वन	अन्य अधिष्ठानों को हस्ता०	प्रबन्ध योजनाधीन वन
डीडीहाट	9553.20	5.54	9547.66
बेरीनाग	7785.00	4.19	7780.81
गंगोलीहाट	6407.30	0.56	6406.74
मुनस्यारी	18571.40		18571.40
अस्कोट एवं धारचूला (अस्कोट वन्य जीव अभ्यारण्य)	28942.40		28942.40
कुल योग	71259.30	10.29	71249.01

स्रोत- उत्तरी पिथौरागढ़ वन प्रभाग की प्रबन्ध योजना, वर्ष-2000 पृष्ठ 20

जनपद की प्रमुख नदी घाटी क्षेत्रों में वनों का क्षेत्रफल भिन्न-भिन्न है। पूर्वी रामगंगा, गोरी, काली एवं सरजू नदी घाटी क्षेत्रों में वनों का क्षेत्रफल अधिक है जबकि धौली एवं गोरी नदी घाटियों में अल्पाइन चारागाह अधिक पाये जाते हैं। जनपद की प्रमुख नदी घाटियों के वन क्षेत्र का विवरण तालिका 1.9 से प्रदर्शित है।

तालिका 1.9
पिथौरागढ़ जनपद की प्रमुख नदी घाटियों के वन क्षेत्र का विवरण (वर्ग किमी० में)

नदी घाटी का नाम	कुल भौगोलिक क्षेत्रफल	वन क्षेत्र	वन क्षेत्र % में	अल्पाइन चारागाह क्षेत्र	अल्पाइन चारागाह क्षेत्र % में
धौली बेसिन	1391	74	5.3	417	29.98
गोरी बेसिन	2270	629	27.7	660	29.07
पूर्वी रामगंगा	1327	863	65.0	33	2.49
सरजू	574	397	69.2		
काली	1961	479	24.4		

स्रोत-फारेस्ट वर्किंग प्लान (1980), स्कीम फार लैण्डयूज एण्ड लैण्ड कैपेबिलिटी, सर्वे ऑफ यू०पी० हिमालय, नैनीताल।

आर0डी0 गुप्ता (1971, 30-35) के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद में निम्नांकित प्रमुख वन पाये जाते हैं।

1. **उष्णार्द्र पर्णपाती वन** :- इसके अन्तर्गत साल के वन एवं उनसे संलग्न विभिन्न किस्म के पर्णपाती वन सम्मिलित हैं। ये वन मुख्यतः 300 मीटर से 1100 मीटर की ऊँचाई के मध्य पाये जाते हैं। साल के वनों की पतली पट्टियाँ काली, सरजू, रामगंगा (पूर्वी) एवं गोरीगंगा नदी घाटियों में पाई जाती हैं।

2. **हिमालयी उपोष्ण वन** :- इस समूह की प्रमुख वनस्पति चीड एवं देवदार है। ये वन सामान्यतः 1100 से 2300 मीटर की ऊँचाई के मध्य, जनपद के पश्चिमी अर्द्ध भाग में, विशेषकर पिथौरागढ़, गंगोलीहाट एवं डीडीहाट तहसीलों के अन्तर्गत पाये जाते हैं। चीड एवं देवदार इस जनपद की लगभग सभी भौगर्भिक संरचनाओं में पाया जाता है।

3. **शीतोष्ण आर्द्र पर्णपाती वन** :- ये वन सामान्यतः जनपद के उत्तरी भागों में, 1800 से 3000 मीटर ऊँचाई के मध्य, गहरी आर्द्र मिट्टियों वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इस ऊँचाई क्रम के निम्न भागों में मिश्रित चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष एवं ऊँचे भागों में ओक एवं हेमलाक के वन मिलते हैं। इन वनों के मध्य में पाँगर, सारू एवं आँगू के वृक्ष पाये जाते हैं। सामान्यतः 2000 मीटर से 3000 मीटर ऊँचाई के मध्य बाँज (ओक) की प्रमुख किस्में मिलती हैं। तिलौंज ओक 2100 से 3000 मीटर के मध्य पाया जाता है। ये वन पिथौरागढ़ तहसील के पूर्वी अर्द्ध भाग एवं मुनस्यारी तहसील के दक्षिणी भाग में पाये जाते हैं।

4. **शीतोष्ण शंकुल वन** :- इस समूह की प्रमुख वनस्पति नीलापाइन, साइप्रस, स्प्रूस एवं सिल्वरफर हैं। नीला पाइन 2000 से 3000 मीटर, साइप्रस 2100 से 3100 मीटर, स्प्रूस 2300 से 3000 मीटर एवं सिल्वर फर 2800 से 3600 मीटर की ऊँचाई के मध्य पाया जाता हैं ये वन जनपद के उत्तरी भागों में पाये जाते हैं।

5. **उपअल्पाइन वनस्पति** :- इसके अन्तर्गत 3000 से 4000 मीटर ऊँचाई के मध्य पाई जाने वाली सदाबहार वृक्षों एवं बुराँस की अनेक किस्में सम्मिलित हैं। इन वनों की मुख्य विशेषता काई, फर्न एवं उनके साथ विभिन्न प्रकार की झाँडियों की उपस्थिति है।

DISTRICT PITHORAGARH
FOREST COVER
80° E
15'
30'
45'
81°E
45'
30'
15'
30°
45'
30'
29°15' N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
ALMORA
CHAMPAWAT
NEPAL
N
INDEX
FOREST COVER
ALPINE PASTURE
TIMBER LINE
SNOW LINE
KM 5 0 5 10 KM
VERTICAL DISTRIBUTION OF NATURAL VAGETATION
000, FEET A S L
14
12
10
8
6
4
2
0
ALPINE VEGETATION
PASTURES
SCRUBS
SUB ALPINE
BIRCH, RHODODENDRON
CYPRES, BLUE PINE
TEMPERATE CONIFEROUS
KHARSU, TILONJ, BANJ
TEMPERATE MOIST
BROAD LEAVED
SUB- TROPICAL
PINE
TROPICAL
MISCELLANEOUS DECIDUOUS
HILL SAL

Fig.- 11

6. **अल्पाइन वनस्पति** :- इसके अन्तर्गत अधिकतम ऊँचाई वाले क्षेत्रों से लेकर हिमाच्छादित क्षेत्र तक पाई जाने वाली झाडियाँ, औषधियां एवं बुग्याल चारागाह आते हैं। यह वनस्पति 3000 से 5000 मीटर ऊँचाई के मध्य पाई जाती है। जी०एस० पुरी (1960, 104) के अनुसार अल्पाइन वनस्पति प्रायः 3500 मीटर से अधिक ऊँचाई में पाई जाती है। इसके पश्चात वृक्षों के स्थान पर झाडियाँ, औषधीय पौधे एवं मुलायम पौधे पाये जाते हैं। जनपद के उत्तरी सीमान्त भागों में मुलायम घास वाले बुग्याल चारागाह पाये जाते है। जी०एस० रावत (1982, 98) ने इनकी स्थिति 4300 मीटर ऊँचाई तक माना है। भोटिया जनजाति के लोग अपने ग्रीष्मकालीन आवासों में इन बुग्याल चारागाहों में पशुचारण करते हैं (चित्र-11)।

जनपद के 55 प्रतिशत से अधिक भाग में वनों का आवरण पाया जाता है जो पर्वतीय क्षेत्रों के लिए निर्धारित मानक 60 प्रतिशत से काफी कम है अतः इसकी वृद्धि करना नितान्त आवश्यक है। सुन्दर लाल बहुगुणा (1988, 25) के अनुसार वनों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए हिमालय क्षेत्र में चिपको आन्दोलन का तीन सूत्रीय कार्यक्रम संचालित है- (1) वन उपजो, मुख्यतः ऐसी उपजों के उपयोग में, जिनके लिए पेड काटने पड़ते हों, संयम और किफायत बरतना (2) बाहुल्य को ही विकास मानकर उपभोग को बढ़ाते जाने में वन ही क्या, प्रकृति के लिए कोई भविष्य नहीं है, यह मानकर चलना (3) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकल्प विकसित करना। जनपद में वनों का क्षेत्रफल बढ़ाने हेतु भारत सरकार के रक्षा विभाग ने पर्यावरण टास्क फोर्स का गठन किया है, जिसके अन्तर्गत सैन्य क्षेत्रों की रिक्त भूमि में प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में वृक्षारोपण करके उनकी समुचित देखभाल की जाती है। इसके अतिरिक्त पहल (पीपुल्स एसोसिएशन ऑफ हिल एरिया लान्चर्स) हिमालय पर्यावरण संस्थान एवं अन्य स्वयंसेवी संगठन के माध्यम से वृक्षों के कटान पर रोक लगाकर वृक्षों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु अनेक प्रयास किये जा रहे हैं, जो अत्यन्त प्रशंसनीय है।

जीव-जन्तु

वन्य जीवों का सदैव वनों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वास्तव में जीवजन्तु वनस्पति की अभिव्यक्ति होते हैं। वन्य जीवों में एक स्थान से दूसरे स्थान तक विभिन्नता वनों एवं जलवायु के आधार पर पाई जाती है। कुमाऊँ हिमालय के अन्तर्गत स्थित इस जनपद में अनेक प्रकार के वन पाये जाते हैं अतः यहां अनेक प्रकार के वन्यजीव परिलक्षित होते हैं। ए०पी० सिंह (1989, 59-60) ने इस

क्षेत्र के वन्यजीवों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।

(अ) लघु हिमालय के वन्य जीव (600 से 1800 मीटर)

(ब) मध्य हिमालय के वन्य जीव (1800 से 3200 मीटर)

(स) आन्तरिक हिमालय के वन्य जीव (3200 से 3800 मीटर)

600 मीटर से 1800 मीटर ऊँचाई के मध्य पाये जाने वाले प्रमुख वन्यजीव तेंदुआ, चीता, बाघ जंगली भालू, कस्तूरी मृग एंव दलदली हिरन हैं। 1800 से 3200 मीटर ऊँचाई के मध्य उपलब्ध होने वाले प्रमुख वन्यजीव भौंकने वाले हिरन, सुस्त हिरन, नीलगाय एवं काला हिरन इत्यादि हैं। 3200 मीटर से अधिक ऊँचाई में शीताधिक्य एवं वनस्पति की कमी के कारण यहाँ का प्राकृतिक पर्यावरण वन्यजीवों के लिए अनुकूल नहीं हैं इन क्षेत्रों में थार, गोरल, भरल इत्यादि भेड प्रजाति के जन्तु पाये जाते हैं। विभिन्न ऊँचाइयों में पाये जाने वाले वन्य जीवों का विवरण तालिका 1.10 से स्पष्ट है।

तालिका 1.10

विभिन्न ऊँचाई पेटियों में वन्य जीवों का वितरण

क्र.सं.	ऊँचाई पेटियाँ (मीटर)	प्रमुख वन्य जीव
1.	600 से नीचे	चीता, बाघ
2.	600 से 1300	तेंदुआ
3.	1300 से 1700	कस्तूरी मृग
4.	1700 से 1800	भौंकने वाले मृग
5.	1800 से 2100	हिमालयन भालू
6.	2100 से 3000	गोरल
7.	3000 से 3300	थार
8.	3300 से 3600	भरल

स्रोत- ए०पी० सिंह, हिमालयन इन्वायरोनमेन्ट एण्ड टूरिज्म, 1989, पृष्ठ 60

इस जनपद में वन्य जीवों के संरक्षण हेतु सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम कार्यान्वित किये गये हैं अस्कोट एवं धारचूला राजियों के 28942.40 हेक्टेयर वन क्षेत्र को अस्कोट वन्य जीव अभ्यारण्य (कस्तूरी मृग विहार) के रूप में विकसित किया जा रहा है जिससे भविष्य में इस दुलर्भ प्रजाति का संरक्षण हो सकेगा।

मिट्टी

मिट्टी एक आधारभूत प्राकृतिक संसाधन है। मिट्टी से ही मनुष्य प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से भोजन प्राप्त करता है। पौधे जो मनुष्य एवं अन्य प्राणियों को भोजन प्रदान करते हैं उनका आधार मिट्टी ही है। वास्तव में मनुष्य की समस्त आवश्यकताएँ (भोजन, वस्त्र, मकान) मिट्टी से ही पूरी होती हैं। मनुष्य की जीविका प्राप्ति का मुख्य साधन कृषि है जो मिट्टी पर ही निर्भर है। मानव सभ्यता का इतिहास मिट्टियों का इतिहास रहा है। मानव सभ्यता की प्रगति मिट्टियों की उर्वरता एवं उनके समुचित प्रबन्धन एवं मानव सभ्यता की अवनति मिट्टियों के अतिशोषण एवं कुप्रबन्धन के परिणामस्वरूप हुई है। अतः यह कथन अक्षरसः सत्य प्रतीत होता है कि मनुष्य मिट्टियों पर निर्भर है और उपजाऊ मिट्टियाँ मनुष्य पर निर्भर हैं।

मिट्टी चट्टानों का वह चूर्ण है जो धरातल पर एक पतली परत के रूप में पाया जाता है। मिट्टी खनिजों तथा जैव तत्वों का गत्यात्मक प्राकृतिक सम्मिश्र है जिसमें वनस्पति एवं पौधों को उत्पन्न करने की क्षमता होती है। शैलों एवं खनिजों के भौतिक एवं रासायनिक अपक्षय से असंगठित पदार्थ का निर्माण होता है, जिसे रिगोलिथ कहते हैं। रिगोलिथ का ऊपरी जैव रासायनिक अपक्षयित भाग मिट्टी कहलाता है। बी०पी० घिल्ड्याल (1990, 186) के अनुसार हिमालय प्रदेश की विभिन्न पर्वत श्रेणियों की रचना विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्वों, खनिजों एवं शैलों से हुई है। अतः इन श्रेणियों में व्याप्त विभिन्न प्रकार के पैतृक पदार्थो के ऊपर विभिन्न विशेषताओं वाली मिट्टियों का विकास हुआ है। ए०पी० सिंह (1989, 60-61) के अनुसार उत्तरांचल की मिट्टियां उपजाऊ नहीं है। यहां अधिकांशतः पथरीली एवं अपरिपक्व मिट्टियां पाई जाती है। इन मिट्टियों का जमाव एक निश्चित क्रम में नहीं पाया जाता है। ये एक घाटी से दूसरी घाटी एवं एक ढाल से दूसरे ढाल में प्राकृतिक दशाओं के अनुसार भिन्न भिन्न मिलती हैं।

डी०एस० जलाल (1976, 41) के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद की मिट्यिां अपरिपक्व एवं प्रायः नदियों द्वारा प्रवाहित मिट्टियां है जो बलुई दोमट या कंकरीली मिट्टियों के रूप में हैं। पर्वत श्रेणियों के उच्च भागों एवं मध्यम ढालानों में चिकनी दोमट एवं बलुई दोमट मिट्टयाँ पाई जाती है। वन भूमियों में अधिक ह्यूमस से युक्त गहरे भूरे रंग वाली एवं कार्बनिक पदार्थो से सम्पन्न मिट्टियां पाई जाती है।

पिथौरागढ़ जनपद की मिट्टियों के संदर्भ में कोई क्रमबद्ध मृदा सर्वेक्षण नहीं हो पाया है। अतः यहां पाई जाने वाली मिट्टियों की किस्मों एवं उनकी भौतिक विशेषताओं की सही जानकारी अप्राप्त है।

फिर भी कुछ विद्वानों के अध्ययन प्रशंसनीय है। इनमें बी०पी० घिल्ड्याल (1990, 193) एवं पी०सी० पन्त (1972, 22-23) आदि के नाम प्रमुख हैं। घिल्ड्याल ने पिथौरागढ़ जनपद के दो विकास खण्डों के 15 ग्रामों की मिट्टी के नमूनों का विवरण एवं उनकी मृदा उर्वरता का वर्णन प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि ये मिट्टियाँ पोटास की दृष्टि से समृद्ध, फास्फोरस में मध्यम एवं नाइट्रोजन में निर्धन है। केवल कुछ ही मिट्टियां कार्वनिक पदार्थो से सम्पन्न हैं, जो कृषि के योग्य हैं। इनका विवरण तालिका 1.11 से स्पष्ट है।

तालिका 1.11

पिथौरागढ़ जनपद के चयनित ग्रामों का मृदा परीक्षण

जनपद	विकास खण्ड	ग्राम का नाम	मिट्टी की संरचना	O.C%	PH	P_2O_5	K_2O Kg/ha
पिथौरागढ़	कनालीछीना	मुवानी	दोमट	1.47	8.4	41.0	672.0
		कमतोली	बलुई, रेतीली चिकनी दोमट	1.11	8.2	46.0	672.0
		सिल	तदैव	0.78	8.5	20.7	372.9
		खनफर	बलुई दोमट	1.74	8.3	4.6	672.0
		सिरोली	तदैव	1.59	8.4	73.6	238.6
	डीडीहाट	दिगतड	तदैव	1.46	7.8	62.1	117.6
		गोवराड़ी	तदैव	0.90	7.6	78.2	114.2
		दुपड	तदैव	0.56	7.8	73.6	164.6
		जीवरा	तदैव	0.79	8.0	27.6	194.8
		दुलोख	तदैव	0.46	7.8	38.1	114.2
		तोली	तदैव	0.53	8.1	11.5	127.7
		कखनीगम	तदैव	0.32	8.0	126.5	157.2
		कान्डा	तदैव	0.56	8.0	85.1	164.6
		कोमा	तदैव	0.71	7.8	108.1	161.3
		वजाणी	तदैव	1.04	8.0	108.1	147.8

स्रोत-बी०पी०घिल्ड्याल (1990) 'स्वायल्स ऑफ हिमालय', हिमालय : इनवायरोनमेन्ट, रिसोर्सेस एण्ड डेवेलपमेन्ट, पृष्ठ 193.

इस मृदा परीक्षण के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इस जनपद में मृदा निर्माण की प्रक्रिया अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है और मिट्टी की ऊपरी परत की गहराई, विभिन्न भू भागों में ढाल प्रवणता एवं भौगर्भिक संरचना के अनुसार 30 से 180 सेमी0 के अन्तराल में है। इन मिट्टियों का रंग सफेद, धूसर, पीला, भूरा, लाल एवं काला है तथा मिट्टी की बनावट दोमट, बलुई दोमट एवं रेतीली चिकनी दोमट है।

मिट्टी के विकास में पैतृक शैलों के रासायनिक गुणों पर सर्वाधिक प्रभाव जलवायु का पड़ता है। अतः इस जनपद की मिट्टयों की किस्में शैलों की किस्मों के आधार पर भिन्न भिन्न पाई जाती है। क्वार्टजाइट शैलों से बलुई एवं शुष्क मिट्टियों एवं चूना पत्थर शैल से हल्की लाल रंग की चिकनी मिट्टी का निर्माण हुआ है। मृदा पर्यवेक्षण के आधार पर पी0सी0 पन्त (1972, 22 23) ने जनपद की मिट्टियों को दो वृहद स्तर पर विभाजित किया है।

1. **चूना रहित पेटी की मिट्टयाँ** :- इस पेटी के अन्तर्गत मुख्यतः अभ्रक शिष्ट, एवं क्वार्टजाइट एवं क्वार्टजाइट इत्यादि कार्यान्तरित शैलों से निर्मित मिट्टियों को सम्मिलित किया जाता है। इनमें भूरी, वन क्षेत्रों की पोडजोल मिट्टियां, लाल दोमट एवं जलोढ़ मिट्टियों का निर्माण हुआ है।

2. **चूना युक्त पेटी की मिट्टियाँ** :- इन मिट्टियों की रचना चूना पत्थर एवं डोलोमाइट शैलों से हुई है। ये मिट्टियाँ अम्लीय हैं, जिसमें अम्ल की मात्रा गहराई के अनुसार बढ़ती जाती है। ये मिट्टियाँ धरातलीय जल के अपरदन से पूर्णतः प्रभावित हैं।

इन मिट्टियों के पर्यवेक्षण से यह सिद्ध हुआ है कि इनमें अन्तर्गलन की दर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में हमेशा अधिकतम रहती है और तेजी से घटकर न्यूनतम स्तर पर स्थित हो जाती है। यह दर प्रायः मिट्टी परिच्छेदिका के अन्तःस्रवण दर के समान होती है।

मृदा अपरदन एवं भू-स्खलन

वर्षा ऋतु में भू-स्खलन, भू-कटाव तथा नदी नालो में बाढ़ आने से पर्वतीय भागों पर जन-धन का अत्यधिक नुकसान होता रहा है। भू-कटाव की दृष्टि से उत्तरांचल राज्य में सर्वाधिक संवेदनशील पिथौरागढ़ जिले में विगत आठ वर्षों में 300 से अधिक लोग काल-कवलित हो गये। इसके अतिरिक्त करोड़ो रुपये की सम्पत्ति का नुकसान हुआ। इस दशक की सबसे बड़ी घटना 1998 में कैलाश मानसरोवर यात्रा मार्ग पर मालपा के निकट घटित हुई जिसमें 60 तीर्थ यात्रियों समेत 206 लोगों की मृत्यु हुई। इसी प्रकार प्रतिवर्ष भू-स्खलन की प्राकृतिक आपदा से मौत का यह क्रम जारी है।

वर्ष 1998 में मालपा की घटना के बाद लखनपुर में भू स्खलन की चपेट में आकर कई मकान क्षतिग्रस्त हो गए जिससे सात लोगों की दर्दनाक मौत हो गई। 1999 में डीडीहाट तहसील के कौलीगराली में भूस्खलन से बहुत नुकसान हुआ। यहां 18 लोग मलबे के ढेर में दब गये। बेरीनाग तहसील के बेलकोट और रैतोली ग्राम में भूस्खलन से 12 लोगों की मृत्यु हो गई। वर्ष 2000 में बांसबगड़ न्याय पंचायत के खेत भराड़ ग्राम में भूस्खलन से छैः लोगों की मृत्यु हो गई। 2002 में धारचूला तहसील के खेत ग्राम में बादल फटने से बहुत नुकसान हुआ और इस घटना में एक ही परिवार के पाँच लोग मौत के मुंह में चले गये। वर्ष 2003 में डीडीहाट में भूस्खलन होने से तीन लोगों की मृत्यु हुई। अगस्त 2005 में धारचूला तहसील के रांथी ग्राम के सेमिला तोक में भू-स्खलन के कारण मलबे में दबने से आठ लोगों की मृत्यु हुई। अमर ऊजाला (8 अगस्त 2005) में वर्णित इस दशक में पिथौरागढ़ जिले में बड़े भू-स्खलन तालिका 1.12 से स्पष्ट हैं।

तालिका 1.12

पिथौरागढ़ जनपद में वृहद भू-स्खलन

वर्ष	स्थान का नाम	भू-स्खलन से हानि
1998	मालपा	206 लोगों की मृत्यु
1998	लखनपुर	7 लोगों की मृत्यु
1999	कौलीगराली	18 लोगों की मृत्यु
2000	खेतभराड़	6 लोगों की मृत्यु
2002	खेत	5 लोगों की मृत्यु
2003	डीडीहाट	3 लोगों की मृत्यु
2005	राँथी	8 लोगों की मृत्यु

पिथौरागढ़ जिले में विगत आठ वर्षो में इस भूस्खलन से 300 से अधिक लोगों की मृत्यु हुई है एवं सैकड़ों एकड़ कृषि भूमि का नुकसान हुआ है। अमर उजाला (13 अगस्त 2005) की विज्ञप्ति के अनुसार इस वर्ष भूमि कटाव और भू स्खलन से जिले में पाँच करोड़ रुपये से अधिक का नुकसान हुआ है। पिथौरागढ़ जिले में भू-स्खलन से सर्वाधिक नुकसान मुनस्यारी विकास खण्ड में हुआ है। धारचूला विकास खण्ड में कैलाश मानसरोवर मार्ग पर तीन स्थानों पर सड़क क्षतिग्रस्त हुई है। जिसमें तवाघाट, सोबला, नारायण आश्रम मार्ग की मरम्मत के लिए दस लाख रुपये की नितान्त आवश्यकता है।

खनिज पदार्थ

किसी प्रदेश के खनिज संसाधनों की वहां के औद्योगिक विकास एवं रोजगार प्राप्ति में अहं भूमिका होती है। उत्तरांचल के पर्वतीय क्षेत्रों में खनिजों की सही मात्रा का मूल्यांकन व्ययसाध्य एवं श्रमसाध्य कार्य है। इसक्षेत्र में खनिजों के समुचित विदोहन एवं सर्वेक्षण का सर्वप्रथम प्रयास प्रथग पंचवर्षीय योजना काल में प्रारम्भ किया गया। द्वितीय योजना काल में भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग ने यहां मैग्नेसाइट एवं साबुन पत्थर के भण्डारों का पता लगाया। तृतीय योजना काल एवं चतुर्थ योजना काल में ताँबा एवं बाक्साइट के भण्डारों की खोज हुई और शनैः शनैः चूना पत्थर, मैग्नेसाइट, सिलिका इत्यादि खनिजों के भण्डारों का पता लगाया गया। पंचम् योजनाकाल में यूरेनियम, चूना पत्थर एवं ताँबे के भण्डारों की खोज हुई और पिथौरागढ़ जनपद के अस्कोट क्षेत्र में मैग्नेसाइट, साबुन पत्थर, ताँबा एवं अस्बेस्टस खनिजों के भण्डारों का पता लगाया गया।

चारू चन्द्र पन्त (1988, 213-220) के अध्ययन अनुसार पिथौरागढ़ जनपद के प्रमुख महत्वपूर्ण खनिजों का विवरण निम्नलिखित है।

डोलोमाइट :- पिथौरागढ़ जनपद में डोलोमाइट की तीन पेटियों पाई जाती हैं। यह डोलोमाइट गंगोलीहाट डोलोमाइट संरचना क्रम के अन्तर्गत आता है। वल्दिया (1980, 191) के अनुसार ये तीन पेटियाँ झूलाघाट-गंगोलीहाट-झिरौली पेटी, पन्तसेरा- राईआगर-काण्डा पेटी एवं धारचूला-कपकोट पेटी के नाम से जानी जाती हैं। इन तीनों पेटियों में कई करोड़ टन डोलोमाइट के संचित भण्डार होने का अनुमान है। डोलोमाइट एक महत्वपूर्ण औद्योगिक खनिज है। इसका उपयोग विस्फोटक पदार्थो के निर्माण, इस्पात, काँच, कागज एवं चीनी उद्योगों में होता है।

चूना पत्थर :- पिथौरागढ़ जनपद में चूना पत्थर की तीन पेटियाँ पाई जाती हैं। प्रथम पेटी रामगंगा घाटी में बस्ते से नौलडा तक फैली है जो पूर्व में लगभग 20 किमी० लम्बी एवं 230 मीटर मोटी है। कुमार एवं दयाल (1970, 123-130) के अनुसार इस पेटी में लगभग 3.4 लाख टन सीमेन्ट ग्रेड चूना पत्थर पाया जाता है। दूसरी सीमेन्टग्रेड चूनापत्थर की पतली पट्टी बेरीनाग के पश्चिम में पोस्तला, कुलूर गाड़ में पाई जाती है। यह पेटी लगभग 6 किमी० लम्बी एवं 25 मीटर मोटी है। इसमें लगभग 16 लाख लाख टन चूनापत्थर होने का अनुमान है। तीसरी अत्यन्त महत्वपूर्ण पेटी 13 किमी० लम्बाई एवं 50 से 200 मी० मोटाई में गंगोलीहाट के दक्षिण में नारगोलगाड़, बागौर, चौनाला एवं सुईतोला में स्थित ह। इसमें लगभग 60 लाख टन चूनापत्थर होने का अनुमान है।

मैग्नेसाइट :- गंगोलीहाट डोलोमाइट के ऊपरी भाग में रवेदार मैग्नेसाइट की क्षैतिजीय परतें पाई जाती है। वल्दिया (1976, 1-14) के अनुसार मैग्नेसाइट के भण्डार काली नदी के पूर्व से अलकनन्दा घाटी के पश्चिम तक फैले हैं। पिथौरागढ़ जनपद में मैग्नेसाइट की तीन पेटियां स्थित है। प्रथम पेटी पिथौरागढ़ के उत्तर में बीसाबजेड, धारीगाँव, बस्ते, देवपाला, डोल-तुसरानी, गणाई, ताछिनी, फडियारी, वौरी, सेलिया एवं धजुराफाट (गंगोलीहाट क्षेत्र) में स्थित है। दूसरी पेटी पन्तसेरा, गन्दाली, डुंगी, देवलथल, राईआगर एवं काण्डा से लेकर पश्चिम में भूलगॉव, देवालधार से गिरिछीना तथा सामेश्वर तक फैली है। तीसरी पेटी मुनस्यारी क्षेप भ्रंश के दक्षिण में पूर्व में पेन्या से लेकर पश्चिम में तुपरजाख एवं जखेरी तक विस्तृत है। इन तीनों पेटियों में लगभग 150 लाख टन मैग्नेसाइट की संचित राशि होने का अनुमान हैं। इस खनिज का प्रमुख उपयोग इस्पात, सीमेण्ट, सिन्थेटिक रबड़, प्लास्टिक, पेन्ट, कासमेटिक्स, कागज एवं टेक्सटाइल्स, उद्योगों में किया जाता है।

टाल्क :- यह मुख्यतः मैग्नेसाइट भण्डारों के साथ पाया जाता है। पिथौरागढ़ जनपद में मालाझूला के समीप लगभग 4 किमी० लम्बी एवं 60 मीटर मोटी टाल्क की पट्‌टी पाई जाती है। जिसमें लगभग 0.12 लाख टन संचित राशि होने का अनुमान है। दूसरी पेटी बोराआगर क्षेत्र में लगभग 300 मीटर लम्बी एवं 20 मीटर मोटी पट्‌टी में स्थित है। टाल्क का उपयोग साबुन, पेन्ट, स्नेहक पदार्थ एवं कीटनाशक पदार्थ बनाने में होता है।

स्लेट - स्लेट का उपयोग छत निर्माण सामग्री के रूप में होता है। पिथौरागढ़ जनपद में कनालीछीना के समीप सोर स्लेट संरचना की भूरी एवं धूसरी रंग की स्लेटें पाई जाती हैं।

ताँबा :- पिथौरागढ़ जनपद में ताँबा विभिन्न संरचनाओं के शैल स्तरों में पाया जाता है। पिथौरागढ़ के उत्तर में चण्डाक के पास एवं कनालीछीना के पूर्व में गंगोलीहाट-डोलोमाइट के साथ ताँबा की पट्टियाँ पाई जाती हैं। देवलथल क्षेत्र में मैग्नेसाइट एवं डोलोमाइट के साथ ताँबा पाया जाता है। बेरीनाग के दक्षिण में राईआगर के पास तॉबे की अनेक पट्टियां पाई जाती हैं। अस्कोट के समीप बहुधात्विक ताँबा का भण्डार स्थित है। इस पेटी में 0.77 लाख टन ताँबा-शीशा-जिंक अयस्क के अनुमानित भण्डार हैं।

शीशा :- यह खनिज प्रायः ताँबे के साथ, राईआगर एवं बेरी नाग के दक्षिण में सीसाखानी, छानापानी, भालदेव एवं गौल नामक स्थानों में तथा अस्कोट सानदेव क्षेत्र में चण्डाक, देवलथल, तछीरा, भैंसखेत एवं भेरीधौरी नामक स्थानों में पाया जाता है। शीशा खनिज की यह पेटी लगभग 4 किमी० लम्बाई में सीसाखानी एवं बालदेव पहाड़ियों के मध्य पाई जाती है।

फास्फोराइट :- वल्दिया (1972, 115-128) के अनुसार यह खनिज पिथौरागढ़ गंगोलीहाट क्षेत्र में गंगोलीहाट डोलोमाइट के साथ जरमालगाँव से लेकर भण्डारी गाँव, वस्ते, धारी, चण्डाक, तरगाँव, मड़गाँव एवं बीसाबजेड तक पाया जाता है। चारू चन्द्र पन्त (1981, 117) के अनुसार फास्फेट बेरीनाग के दक्षिण में गंगोलीहाट एवं बोरा आगर के समीप डोलोमाइट-चूनापत्थर के साथ पाया जाता है।

ग्रेफाइट - यह खनिज अत्यल्प मात्रा में मुनस्यारी क्षेत्र के समीपस्थ भागों में पाया जाता है।

पाइराइट एवं गन्धक :- पाइराइट के महत्वपूर्ण भण्डार तेजम पेटी में काली एवं अलकनन्दा नदी घाटियों के मध्य गोरी नदी के सहारे मदकोट एवं सिर्तोला के मध्य एवं मुनस्यारी के दक्षिण पूर्व में ताँतागाँव एवं धामीगाँव क्षेत्र में पाये जाते हैं।

साबुन पत्थर :- यह खनिज देवलथल, गोल एवं कनालीछीना क्षेत्रों में पाया जाता है। इन तीनों क्षेत्रों में लगभग 160 लाख टन खनिज की संचित राशि होने का अनुमान है। इन निक्षेपों का अवशोपण व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है।

संदर्भ

अमर उजाला (8 अगस्त 2005) : नैनीताल संस्करण, पृष्ठ-6

अमर उजाला (13 अगस्त, 2005) : नैनीताल संस्करण, पृष्ठ-8

आडेन, जे0बी0 (1934) : द जियोलाजी आफ द क्रोल वेल्ट, पृष्ठ 357-454.

चन्द, एम0 (1980) : वाटर रिसोर्सेस इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ वि0वि0 नैनीताल, पृष्ठ 122.

कुमार, जी0, सफाया, एच0एल0 एण्ड प्रकाश, जी0 (1976), : जियोलॉजी ऑफ द बेरीनाग-मुनस्यारी एरिया, पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, कुमाऊँ हिमालय, उ0प्र0, पृष्ठ 81-109.

कुमार, जी0 एण्ड दयाल, बी0 (1970) : ए नोट आन द सीमेण्ट ग्रेड लाइमस्टोन बैण्ड इन द काल्क जोन ऑफ तेजम, पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, यू0पी0, पृष्ठ-123-130

खर्कवाल, एस0सी0 एवं नित्यानन्द (1971) : यू0पी0 हिमालय, इण्डिया ए रीजनल ज्योग्राफी, सम्पादक आर0एल0 सिंह, एन0जी0एस0आई0 पृष्ठ 445-447

गैन्सीर, ए0 (1964) : जियोलाजी ऑफ द हिमालय, पृष्ठ 82.

गुप्ता, आर0डी0 (1971) : वर्किंग प्लान फार द पिथौरागढ़ फारेस्ट डिवीजन नैनीताल, यू0पी0, पृष्ठ 23-50.

घिल्ड्याल, बी0पी0 (1990) : स्वायल्स ऑफ हिमालय, हिमालय : इनवायरोनमेण्ट रिसोर्स एण्ड डेवेलपमेण्ट, सम्पादक एन0के0 साह एवं अन्य पृष्ठ 185-193.

जोशी, एस0सी0, जोशी, डी0आर0 एवं दानी, डी0डी0 (1983) : कुमाऊँ हिमालय, पृष्ठ-23.

जलाल, डी0एस0 (1976) : लैण्ड यूटीलाइजेशन इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट प्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृष्ठ-41

पुरी, जी0एस0 (1960) : इण्डियन फारेस्ट इकोलाजी, खण्ड-एक, पृष्ठ-29.

पन्त, पी0सी0 (1972) : स्वायल्स कन्डीसन्स ऑफ पिथौरागढ़, प्रोग्रेसिव हार्टीकल्चर, खण्ड-4, पृष्ठ-12

पन्त, चारू चन्द्र (1988) : मिनरल वेल्थ ऑफ कुमाऊँ : प्रोसपेक्ट्स एण्ड प्रोबलम्स कुमाऊँ लैण्ड एण्ड पीपुल, सम्पादक के0एस0 वल्दिया, पृष्ठ-213-221.

पन्त, चारू चन्द्र (1981) : स्ट्रक्चरल एण्ड सेडीमेन्टोलाजिकल स्टडीज ऑफ द बेरीनाग-गंगोलीहाट एरिया, डिस्ट्रिक्ट पिथौरागढ़, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृष्ठ-117.

बहुगुणा, सुन्दरलाल (1988) : अस्तित्व के लिए मरते हुए वनों को बचाइये' हिमालय निवासी और निसर्ग, सम्पादक कृष्णमूर्ति गुप्त, अंक 11, पृष्ठ 25-26.

भट्टाचार्य, ए0आर0 (1982) : द लेसर हिमालय सेडीमेन्ट्स : प्रिकैम्ब्रियन स्पान, जियोलाजी ऑफ विन्ध्यांचल, सम्पादक के0एस0 वल्दिया, पृष्ठ 200-204

रावत, जी0एस0 (1982) : ए नोट आन द बुग्याल ऑफ कुमाऊँ, हिमालयन रिसोर्स एण्ड डेवलपमेन्ट, पृष्ठ-98.

वाडिया, डी0एन0 (1963) : जियोलाजी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ-363.

वल्दिया, के0एस0 (1962ए) : एन आउटलाइन ऑफ द स्ट्रेटीग्राफी एण्ड स्ट्रक्चर ऑफ द सदर्न पार्ट आफ द पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, यू0पी0, जनरल ज्योलाजिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया, भाग-3, पृष्ठ 27-48.

वल्दिया, के0एस0 (1979) : एन आउटलाइन ऑफ द स्ट्रक्चरल सेटअप आफ द कुमाऊँ हिमालय, जनरल जियोलाजिकल सोसायटी आफ इण्डिया, 20, पृष्ठ-143-157.

वल्दिया, के0एस0 (1973) : लिथोलाजिकल सबडिवीजन एण्ड टेक्टोनिक्स आफ द सेन्ट्रल क्रिस्टलाइन जोन ऑफ कुमाऊँ हिमालय, एन0जी0आर0 आई0, पृष्ठ-204-205.

वल्दिया, के0एस0 (1987) : ट्रान्स हिमाद्रि थ्रस्ट एण्ड डोमल अपवर्प्स इमीडियेटली साउथ आफ कोलीसियन जोन एण्ड टेक्टानिक इम्प्लीकेसन्स, करेण्ट साइन्स, 56, पृष्ठ 200-209.

वल्दिया, के0एस0 (1980) : जियोलाजी ऑ द कुमाऊँ लेसर हिमालय, पृष्ठ 191.

वल्दिया, के0एस0 (1976) : कुमाऊँ की खनिज सम्पदा, उत्तराखण्ड भारती अंक 1, पृष्ठ 1-14

वल्दिया, के0एस0 (1972) : ओरीजिन आफ फास्फोराइट आफ लेट प्रिकैम्ब्रियन गंगोलीहाट डोलोमाइट ऑफ पिथौरागढ़, कुमाऊँ लेसर हिमालय सेडीमेन्टोलाजी 19, पृष्ठ 115-128.

शाह, एस0के0 एण्ड सिन्हा, अन्शू, के0 (1974) : स्ट्रेटीग्राफी एण्ड टेक्टोनिकस ऑफ द टिथियन जोन इन ए पार्ट ऑफ वेस्टर्न कुमाऊँ हिमालय, हिमालयन जियोलॉजी, 4, पृष्ठ-1-27.

सक्सेना, पी0सी0 (1979) : गजेटियर ऑफ इण्डिया, उत्तर प्रदेश, डिस्ट्रिक्ट पिथौरागढ़, पृष्ठ 1 एवं 2.

सांख्यिकीय पत्रिका, जनपद-पिथौरागढ़, : वर्ष-2002, पृष्ठ-23.

सिंह, ए0पी0 (1989) : हिमालयन इनवायरोनमेण्ट एण्ड टूरिज्म : डेवेलपमेन्ट एण्ड पोटेन्सियल, पृष्ठ 59-60.

हीम, ए0 एण्ड गैन्सीर, ए0 (1975) : सेन्ट्रल हिमालय, पृष्ठ-43.

अध्याय द्वितीय

भोटिया जनजाति की जनांकिकी विशेषताएँ

किसी प्रदेश के आर्थिक विकास में उस क्षेत्र के मानवीय संसाधन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। संसाधन उपयोगिता के संदर्भ में एवं आर्थिक प्रतिरूपों के निर्धारण में, मानव स्वयं एक महत्वपूर्ण सक्रिय संसाधन है। मानव संसाधनों का उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों ही है। किसी प्राकृतिक पदार्थ की संसाधन सम्पन्नता मानव की इच्छा, उपयोग तथा उसके समुचित एवं सकारात्मक उपभोग पर ही निर्भर होती है। इस प्रकार संसाधन विकास मानव द्वारा ही प्रारम्भ होता है, मानव द्वारा ही कार्यान्वित होता है और अन्ततः मानव की इच्छाओं की संतुष्टि के लिए ही प्रयुक्त होता है।

आर०सी० चांदना एवं अन्य (1980, 1-10) के अनुसार जनसंख्या भूगोल, भूगोल विषय की एक नूतन शाखा है, जिसके अन्तर्गत जनसंख्या की विभिन्न विशेषताओं (सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि) का अध्ययन किया जाता है। जी०टी० ट्रिवार्था (1983, 83) के अनुसार जनसंख्या निर्देशों का एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है, जिसमें अन्य सम्पूर्ण तत्वों का निरीक्षण होता है एवं जिसमें सम्पूर्ण तत्व पृथक्-पृथक् या सामूहिक रूप से सार्थक एवं महत्वपूर्ण बन जाते हैं। जनसंख्या एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जिसमें सभी तत्व समाहित होते हैं।

किसी क्षेत्र में जनसंख्या के प्रतिरूप, वहां पर पाये जाने वाले अनेक भौगोलिक तत्वों पर निर्भर होते हैं। पिथौरागढ़ जैसे पर्वतीय प्रदेश, जहां पर जनसंख्या का वितरण पूर्णतः प्राकृतिक भूदृश्यों की विभिन्नता पर आधारित है, यहां की जनांकिकी विशेषताओं को समझने के लिए यहां के प्राकृतिक स्वरूप, भौगर्भिक संरचना, जलवायु, मिट्टी, वानस्पतिक वितरण एवं हिमनदों की उपस्थिति को ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है।

रमेश चन्द्र तिवारी (1977, 255) ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि उत्तरांचल में लगभग 71 प्रतिशत भोटिये कुमाऊँ अंचल में तथा शेष 29 प्रतिशत गढ़वाल अंचल में रहते हैं। कुमाऊँ में रहने वाले भोटियों में से लगभग 94 प्रतिशत पिथौरागढ़ जिले और शेष 6 प्रतिशत बागेश्वर जिले में रहते हैं। पिथौरागढ़ जनपद में रहने वाले भोटियों में से लगभग 90 प्रतिशत धारचूला एवं मुनस्यारी तहसीलों में एवं शेष 10 प्रतिशत डीडीहाट, पिथौरागढ़ एवं गंगोलीहाट तहसीलों में रहते हैं। भोटिया जनजाति का मूल निवास क्षेत्र धारचूला एवं मुनस्यारी तहसीलें ही हैं, अन्य तीन तहसीलों में ये लोग 1962 में

भारत-तिब्बत व्यापार सन्धि समाप्त हो जाने के उपरान्त जीविकोपार्जन हेतु अपने मूल निवास क्षेत्रों से स्थानान्तरित होकर स्थाई या अस्थाई रूप से बस गये हैं।

महान हिमालय श्रृंखला को अपने में समाहित किये हुए भोटांचल, जनपद के शेष भागों से बिल्कुल पृथक् हैं। इस अंचल की अधिकांश भूमि विषम, जलवायु कठोर एवं शीत प्रधान तथा भूमि कृषि कार्य हेतु सर्वथा अनुपयुक्त है। इस अद्भुत हिमानी प्रान्तर के प्रकृति पुत्र भोटियों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को यहां के भौगोलिक पर्यावरण ने पूर्णरूपेण प्रभावित किया है। इसकी सम्पूर्ण जनांकिकी विशेषताओं पर यहां के प्राकृतिक पर्यावरण की अमिट छाप है। प्रस्तुत अध्याय में इस क्षेत्र की भोटिया जनजाति की जनांकिकी विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

जनसंख्या वृद्धि

कुमाऊँ मण्डल में चार जनजातियाँ निवास करती हैं- थारू, भोटिया, बोक्सा एवं राजी। कुमाऊँ की इन चार जनजातियों को जून 1967 में अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया। 1967 से पूर्व भोटिया जनजाति का अध्ययन अनुसूचित जाति के रूप में सम्मिलित करके किया जाता था। अतः इनकी पृथक् रूप से सही जनसंख्या प्राप्त करना नितान्त कठिन है। सर्वप्रथम हरिजन एवं समाज कल्याण विभाग, उ०प्र० द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट (1974) में इस जनजाति की जनपद स्तर पर जनसंख्या का विवरण प्राप्त होता है, जो 1971 की जनगणना पर आधारित है।

पिथौरागढ़ जनपद में 1971 से 2001 के विगत तीस वर्षो में भोटिया जनजाति की जनसंख्या वृद्धि का विवरण तालिका 2.1 से स्पष्ट है।

तालिका 2.1

पिथौरागढ़ जनपद में भोटिया जनजाति की जनसंख्या वृद्धि (1971-2001)

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या	दशकीय अन्तर	दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर (प्रतिशत में)
1971	15093	-	-
1981	16966	+1873	+12.41
1991	17680	+714	+4.21
2001	18714	+1034	+5.84

स्रोत-सेन्सस आफ इण्डिया, जिला पिथौरागढ़, जनगणना वर्ष 1971, 1981, 1991 एवं 2001

POPULATION GROWTH OF BHOTIA TRIBES
1971- 2001
MUNSYARI
DHARCHULA
POPULATION IN THOUSANDS
0
2
4
6
8
10
12
14
16
18
20
1971
1981
1991
2001
CENSUS YEAR
MUNSYARI
DHARCHULA
PERCENTAGE OF GROWTH
0
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
1971
1981
1991
2001
CENSUS YEAR
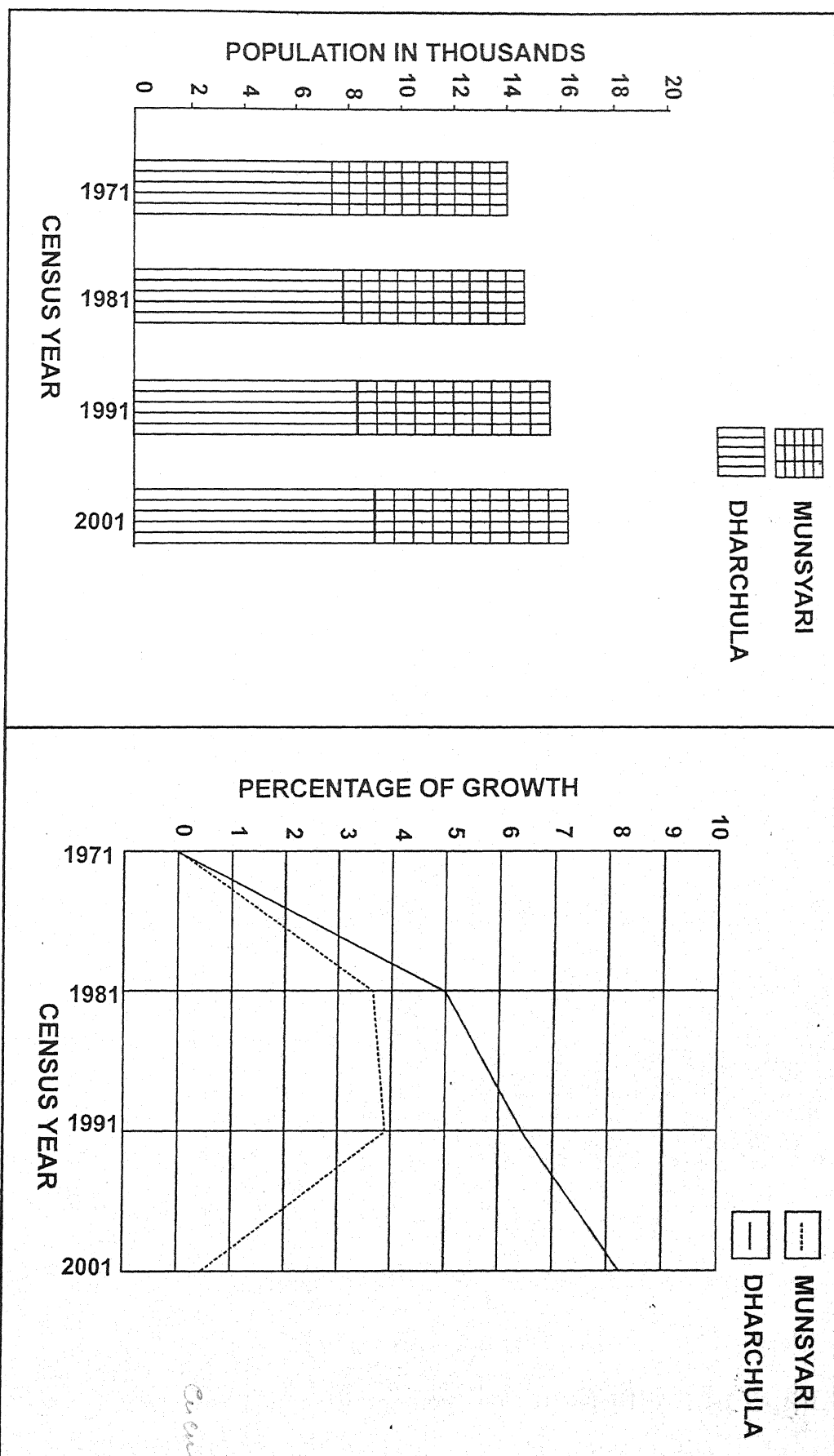
Fig. 12

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पिथौरागढ़ जनपद में 1971 से 1981 के दशक में भोटिया जनजाति की दशकीय वृद्धि दर 12.41 प्रतिशत रही, जो अब तक की सर्वाधिक वृद्धि दर रही है। 1981 – 1991 दशक में वृद्धि दर घटकर 4.21 प्रतिशत हो गई और 1991 से 2001 के दशक मे वृद्धिदर 5.85 प्रतिशत रही, जो 1981-91 दशक की तुलना में आंशिक वृद्धि को प्रदर्शित करती है। इस जनसंख्या में निरन्तर ह्रास का प्रमुख कारण जून 1962 में भारत-तिब्बत व्यापार सन्धि समाप्ति होने से, व्यापारिक एवं पशुपालक भोटिया जनजाति की आर्थिक स्थिति का छिन्न-भिन्न होना एवं आजीविका की खोज में इनका उत्तरांचल एवं देश के विभिन्न स्थानों में प्रवास करके स्थाई या अस्थाई रूप से निवास करना माना जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन में पिथौरागढ़ जनपद की धारचूला एवं मुनस्यारी तहसीलों में निवसित भोटिया जनजाति को ही आधार माना गया है। विगत तीस वर्षो (1971-2001) से इन दोनों क्षेत्रों की जनसंख्या वृद्धि का विवरण तालिका 2.2 में प्रदर्शित है।

तालिका 2.2

धारचूला एवं मुनस्यारी तहसीलों में भोटिया जनजाति की जनसंख्या वृद्धि (1971-2001)

जनगणना वर्ष	धारचूला तहसील			मुनस्यारी तहसील		
	कुल जनसंख्या	दशकीय अन्तर	वृद्धि दर (प्रतिशत में)	कुल जनसंख्या	दशकीय अन्तर	वृद्धि दर (प्रतिशत में)
1971	7452	–	–	6599		
1981	7825	+373	+5.00	6832	+303	+4.64
1991	8410	+585	+7.47	7167	+335	+4.90
2001	9195	+786	+9.34	7268	+101	+1.40

स्रोत- सेन्सस ऑफ इण्डिया, जिला पिथौरागढ़ जनगणना वर्ष 1971, 1981, 1991 एवं 2001

उक्त दोनों तहसीलों में भोटिया जनजाति की जनसंख्या वृद्धि के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि विगत तीस वर्षो में इन दोनों क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि दर बहुत कम रही है, जिसका प्रमुख कारण इन भोटिया जनजाति के मूल निवास क्षेत्रोंसे अधिकांश लोगों का जीविकोपार्जन हेतु एवं देश के विभिन्न भागों में स्थानान्तरण माना जा सकता है (चित्र-12)।

जनसंख्या का वितरण

पिथौरागढ़ जनपद का भोटिया जनजाति क्षेत्र, महान हिमालय पेटी से लेकर ट्रॉस हिमालय पेटी के मध्य स्थित है। यहाँ जनसंख्या वितरण पर प्राकृतिक तत्वों की स्पष्ट छाप दृष्टिगत होती है। इस क्षेत्र की जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख प्राकृतिक तत्व धरातल, जलवायु, मिट्टी एवं जलस्रोतों की उपलब्धता है। इन विभिन्न प्राकृतिक तत्वों के सम्मिलित प्रभाव एवं स्थानीय भौगोलिक विभिन्नताओं के कारण भोटिया जनजाति क्षेत्र में जनसंख्या के वितरण में अत्यधिक विभिन्नताएं पाई जाती है।

2001 की जनगणना के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद में भोटिया जनजाति की कुल जनसंख्या 18714 है। प्रस्तुत अध्ययन में जनपद की धारचूला एवं मुनस्यारी तहसीलों में निवास करने वाली भोटिया जनजाति को ही सम्मिलित किया गया है। इन दोनों तहसीलों में भोटिया जनजाति की कुल जनसंख्या 16463 हैं, जिसमें पुरुषों की संख्या 8031 एवं स्त्रियों की संख्या 8432 है। इन दोनों तहसीलों को दो विकास खण्ड क्षेत्रों एवं 15 न्याय पंचायत क्षेत्रों में विभाजित किया गया हैं। इन दोनो विकास खण्ड क्षेत्रों में न्याय पंचायत स्तरीय भोटिया जनजाति की जनसंख्या वितरण तालिका 2.3 से प्रदर्शित है।

तालिका 2.3

न्याय पंचायत स्तरीय भोटिया जनजाति की जनसंख्या का वितरण

विकास खण्ड का नाम	न्याय पंचायत का नाम	पुरुष	स्त्री	कुल जनसंख्या
मुनस्यारी	1. लीलम	495	460	955
	2. सिर्तोला	385	412	797
	3. मदकोट	351	348	699
	4. दरकोट	1093	1302	2395
	5. सेबिला	795	827	1622
	6. मडलकिया	106	102	208
	7. क्वीटी	178	229	407
	8. नाचनी	86	82	168
	9. बाँस बगड	12	05	17
योग	–	3502	3766	7268

धारचूला	1. दुग्तू	499	474	973
	2. गुंजी	474	438	912
	3. सोसा	750	797	1547
	4. खेत	414	318	732
	5. बरम	92	99	191
	6. धारचूला	1042 1175	2217	
योग	—	3271	3301	6572
कुल ग्रामीण जनसंख्या	—	6773	7067	13840
कुल नगरीय जनसंख्या	धारचूला देहात एवं नगर	1258	1365	2623
कुल जनसंख्या	—	8031	8432	16463

स्रोत– प्रोवीजनल आंकडे, जनगणना वर्ष 2001 जिला पिथौरागढ़

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उक्त दोनों विकास खण्ड क्षेत्रों की विभिन्न न्याय पंचायतों में जनसंख्या के वितरण में अत्यधिक असमानता है। दरकोट, धारचूला देहात एवं धारचूला नगर क्षेत्रों में जनसंख्या का संक्रेन्द्रण अधिक है जबकि नाचनी, बाँसबगड, मडलकिया एवं बरम न्याय पंचायतों में जनसंख्या का संकेन्द्रण न्यून है। इन दोनों भोटिया क्षेत्रोंकी विभिन्न न्याय पंचायतों में जनसंख्या के वितरण में विभिन्न भू आकृतिक संरचनाओं, सूक्ष्म जलवायुविक दशाओं, मिट्टियों के वितरण एवं कृषि दशाओं का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों क्षेत्रों में 1991–2001 दशक में भोटिया जनजाति की दशकीय जनसंख्या वृद्धि तालिका 2.4 से प्रदर्शित है।

तालिका 2.4

भोटिया जनजाति की न्याय पंचायत स्तर पर जनसंख्या वृद्धि

विकास खण्ड का नाम	न्याय पंचायत का नाम	जनसंख्या 1991	जनसंख्या 2001	दशकीय अन्तर	जनसंख्या वृद्धि दर (%में)1991–2001
मुनस्यारी	1. लीलम	1050	955	–95	–9.04
	2. सिर्तोला	870	797	–73	–8.39
	3. मदकोट	640	699	+59	+9.21
	4. दरकोट	2240	2395	+155	+6.92
	5. सेविला	1480	1622	+142	+9.59

POPULATION DISTRIBUTION
2001
N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
DIDIHAT TAHSIL
NEPAL
3000
1000
URBAN POPULATION
· = 10 PERSONS
5 0 5 10 15 20
KM
KM
45′
80⁰ E
15′
30′
45′
81⁰E
30′
15′
30⁰
45′
30′
29⁰15′ N
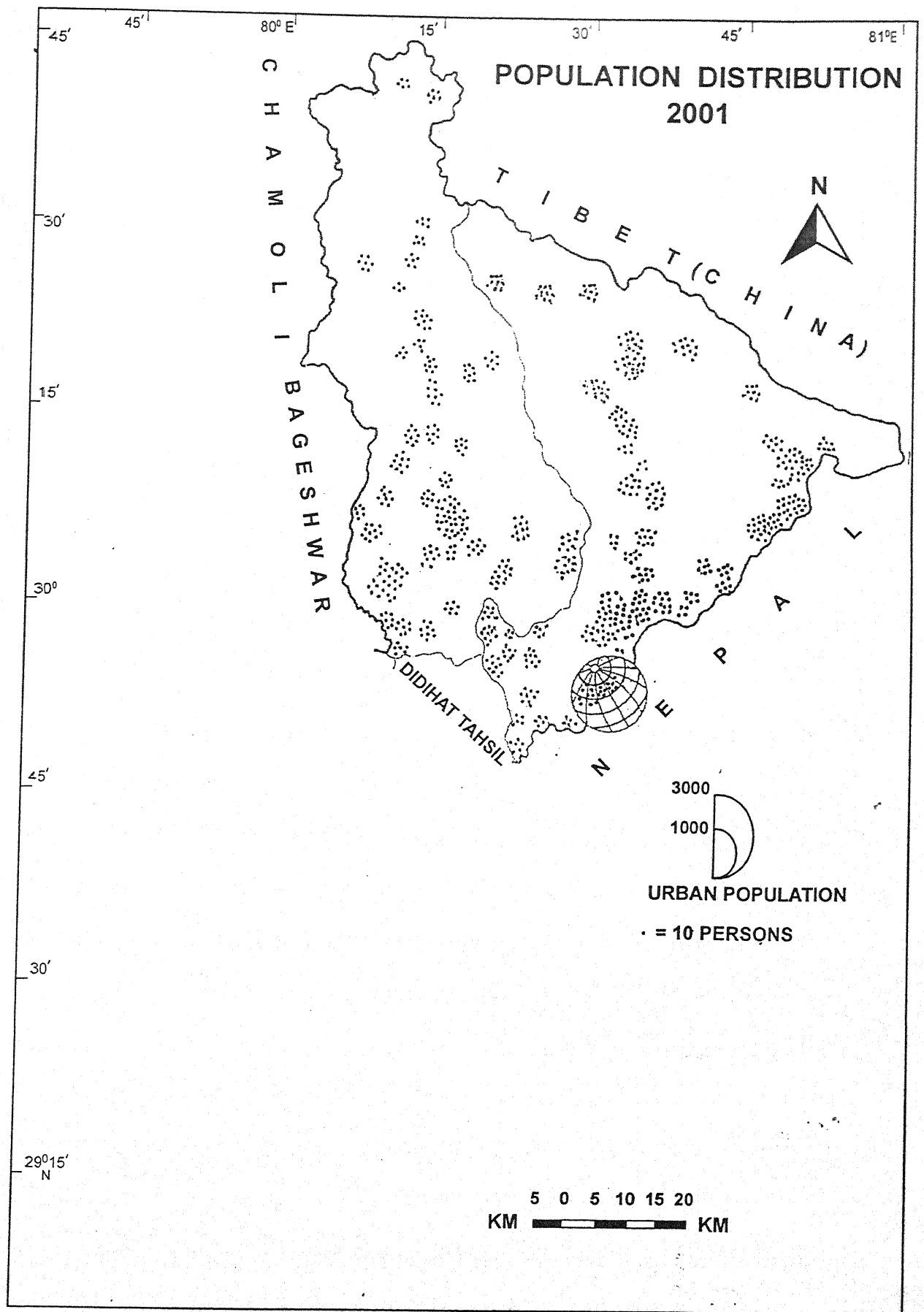
Fig. 13

	6. मडलकिया	303	208	95	31.35
	7. क्वीटी	360	407	+47	+13.05
	8. नाचनी	210	168	742	20.00
	9. बॉसबगड़	14	17	+3	+21.42
धारचूला	1. दुग्तू	1311	973	338	25.78
	2. गुंजी	1058	912	146	13.79
	3. सोसा	1440	1547	+107	+7.43
	4. खेत	801	732	69	8.61
	5. बरम	221	191	30	13.57
	6(अ)धारचूला	1573	2217	+644	+40.94
	(ब) धारचूला देहात एवं नगर	2006	2623	+617	+30.75
योग	-	15577	16463	+887	+5.69

स्रोत- भोटिया जनजाति की जनसंख्या, जनगणना वर्ष 1991 एवं 2001, जिला पिथौरागढ़

उक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि भोटिया जनजाति क्षेत्र के दोनों विकास खण्ड क्षेत्रों की विभिन्न न्याय पंचायतों में इस जनजाति की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि में अत्यधिक विभिन्नता दृष्टिगत होती है। जनसंख्या में सर्वाधिक वृद्धि धारचूला देहात (40.94%) एवं धारचूला नगर (30.75%) न्याय पंचायत क्षेत्र में हुई है। क्वीटी (13.05%) एवं बॉसबगड़ (21.42%) न्याय पंचायत क्षेत्रों में भी पर्याप्त वृद्धि अंकित की गई है। लीलम, सिर्तोला, मडलकिया, नाचनी, दुग्तू, गुंजी, खेत एवं बरम न्याय पंचायत क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि नकारात्मक है। इन सभी न्याय पंचायत क्षेत्रों में जनसंख्या वितरण को प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक दशाओं ने प्रभावित किया है (चित्र-13)।

भोटिया जनजाति क्षेत्र में जनसंख्या के असमान वितरण से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय है :-

1. इस क्षेत्र की असमान धरातलीय संरचना, यहां की जनसंख्या के असमान वितरण के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है। इस धरातलीय विभिन्नता के कारण यहां अनेक सूक्ष्म जलवायुविक दशायें

पाई जाती हैं जिनके फलस्वरूप यहां विविध प्रकार की वनस्पतियां एवं मिट्टियों का सृजन हुआ है, जिससे इस क्षेत्र का मानव अधिवास पूर्णतः प्रभावित है।

2. मानव अधिवासों की स्थिति के निर्धारण में मध्यम ढालों, धूप की उपलब्धता, पर्वतीय चोटी एवं घाटियों इत्यादि की अहम् भूमिका रहती है।

3. इस क्षेत्र के मानव अधिवास के लिए पेयजल की उपलब्धता एवं अनुपलब्धता भी एक निर्णायक कारक है। यहां के अधिकांश अधिवास, प्राकृतिक जल स्रोतों के आसपास ही स्थित हैं।

4. इस क्षेत्र की जनसंख्या के वितरण में ऊँचाइयों, ढालों, मिट्टियों एवं अपवाह तन्त्रों का भी विशेष योगदान है। इस क्षेत्र के अधिकांश मानव अधिवास 1000 से 1500 मीटर की ऊँचाइयों के मध्य एवं 15 से 20 डिग्री के आदर्श ढाल प्रवणता वाले स्थानों में स्थापित हैं।

5. इस क्षेत्र की विभिन्न न्याय पंचायतों में कृषि योग्य भूमि सीमित है जो जनसंख्या वितरण को प्रभावित करती है। कृषि योग्य भूमि की अनुपलब्धता एवं शीताधिक्य के कारण फसलों का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन न हो पाने के कारण भोटिया लोग कृषि कार्य छोड़कर जीविकोपार्जन के अन्य साधनों की प्राप्ति हेतु अन्य क्षेत्रों में प्रवास के लिए बाध्य हो जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भोटिया जनजाति की जनसंख्या के वितरण एवं मानव अधिवासों के निर्धारण में यहां के प्राकृतिक तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान है। दूसरे शब्दों में इस क्षेत्र की जनसंख्या पूर्णतः प्राकृतिक दशाओं से प्रभावित है।

जनसंख्या घनत्व

पर्वतीय क्षेत्रों में, जनसंख्या के संकेन्द्रण के प्रमुख निर्णायक तत्व ढाल, ऊँचाई, जलवायु, जल की उपलब्धता एवं मिट्टी की उर्वरता है। किसी निश्चित क्षेत्र में पाये जाने वाले भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों के सम्मिलित प्रभाव के फलस्वरूप ही उस क्षेत्र में जनसंख्या का संकेन्द्रण सघन या विरल रूप में दृष्टिगत होता है। एस0सी0 जोशी व अन्य (1983, 115) के अनुसार पर्वतीय क्षेत्रों में जनसंख्या का वितरण अत्यधिक असमान एवं अस्पष्ट होता है। यहां जनसंख्या का संकेन्द्रण प्रायः प्रमुख नदी घाटियों के सहारे पाया जाता है क्योंकि अधिक ऊँचाई वाले भागों में शीताधिक्य के कारण कृषि एवं अन्य मानवीय क्रियायें बाधित होती हैं। इसीलिए महान हिमालय एवं ट्रांस हिमालय पेटी में जनघनत्व अत्यधिक कम पाया जाता है। पिथौरागढ़ जनपद का भोटिया जनजाति क्षेत्र महान हिमालय एवं ट्रांस

ARITHMETIC DENSITY
2001
N
CHAMOLI
BAGESHWAR
TIBET (CHINA)
NEPAL
DIDIHAT TAHSIL
INDEX
PERSONS / KM2
BELOW 25
25- 50
ABOVE 50
KM 5 0 5 10 KM
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
80° E
15′
30′
45′
81°E
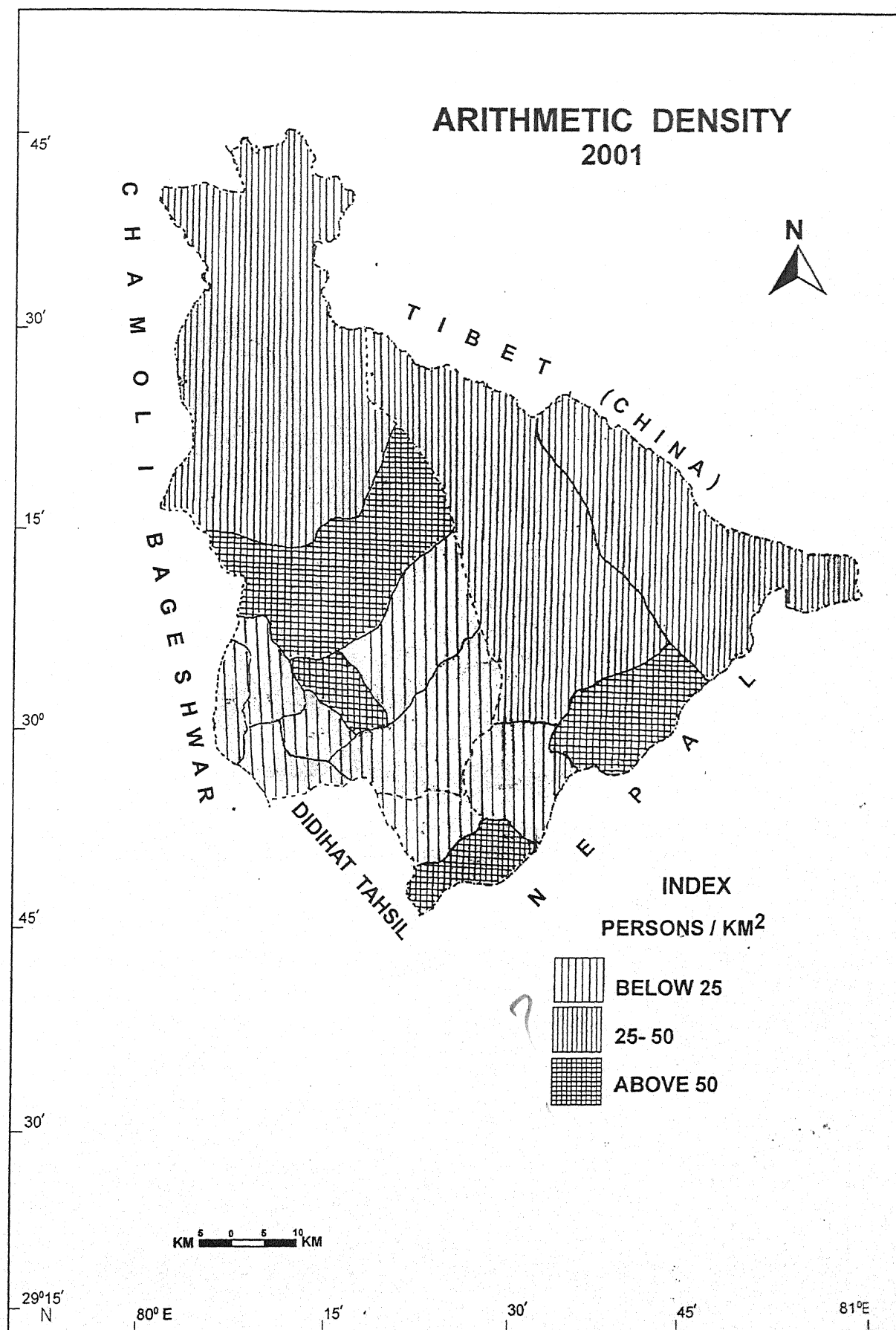
Fig.- 14

हिमालय पेटी मे स्थित है। अतः जनपद के अन्य भागों की अपेक्षा यहां जन घनत्व अत्यधिक न्यून है।

पिथौरागढ़ जनपद के भोटिया जनजाति क्षेत्र (मुनस्यारी एवं धारचूला) के जनसंख्या घनत्व का अध्ययन निम्नलिखित प्रमुख दो भागों में विभाजित करके किया गया है।

1. गणितीय घनत्व :- इसके अन्तर्गत जनसंख्या एवं क्षेत्रफल (Man-Land-ratio) अनुपात का विचार किया जाता है। भोटिया जनजाति क्षेत्र की कुल जनसंख्या 16463 एवं प्रतिवेदित क्षेत्रफल 592.28 वर्ग किमी० है अतः भोटिया जनजाति क्षेत्र का गणितीय घनत्व 28 है। इस क्षेत्र की 15 न्याय पंचायतों में घनत्व में अत्यधिक विभिन्नता देखने को मिलती है (चित्र-14)। अधिक घनत्व दरकोट एवं धारचूला देहात में एवं निम्न घनत्व बाँसबगड़, नाचनी, क्वीटी, बरम एवं मडलकिया न्याय पंचायतों में पाया जाता है। इन दोनों विकास खण्ड क्षेत्रों का न्याय पंचायत स्तर पर गणितीय घनत्व तालिका 2.5 से प्रदर्शित है।

तालिका 2.5

न्याय पंचायत स्तर पर गणितीय घनत्व

विकास खण्ड	न्याय पंचायत	प्रतिवेदित क्षेत्रफल (वर्ग किमी० में)	जनसंख्या (2001)	गणितीय घनत्व
मुनस्यारी	1. लीलम	35.40	955	27
	2. सिर्तोला	56.53	797	14
	3. मदकोट	38.21	699	18
	4. दरकोट	26.28	2395	91
	5. सेविला	26.04	1622	62
	6. मडलकिया	21.95	208	09
	7. क्वीटी	65.11	407	06
	8. नाचनी	58.33	168	03
	9. बॉस बगड	67.11	17	0.25
योग	–	394.96	7268	18

धारचूला	1. दुग्तू	30.01	973	32
	2. गुंजी	18.47	912	49
	3. सोसा	27.00	1547	57
	4. खेत	37.53	732	20
	5. बरम	25.69	191	07
	6. धारचूला देहात/नगर	58.62	4840	83
योग	-	197.32	9195	47
कुल योग	-	592.28	16463	28

स्रोत- जनसंख्या- जनगणना वर्ष 2001, जिला-पिथौरागढ़

क्षेत्रफल- जिला सांख्यिकी पत्रिका 2001, जिला-पिथौरागढ़

उक्त विवरण के आधार पर भोटिया जनजाति क्षेत्र को न्याय पंचायत स्तर पर निम्नलिखित तीन घनत्व पेटियों मे विभाजित किया जा सकता है।

1. अधिक घनत्व के क्षेत्र (50 व अधिक)

इसके अन्तर्गत दरकोट, धारचूला देहात, सेविला एवं सोसा न्याय पंचायतें आती हैं। इन क्षेत्रों में अधिक घनत्व होने के प्रमुख कारण कृषि योग्य भूमि की अधिकता, सिंचाई के साधन एवं यातायात की सुविधा का होना है।

2. मध्यम घनत्व के क्षेत्र (25 - 50)

इस वर्ग के अन्तर्गत गुंजी, दुग्तू, लीलम, न्याय पंचायते सम्मिलित हैं। इन न्याय पंचातयों में मध्यम घनत्व होने के प्रमुख कारण कृषि भूमि की उपलब्धता, यातायात की सुविधा एवं भोटिया जनजाति के मूल ग्रामों की अवस्थिति है।

3. निम्न घनत्व के क्षेत्र (25 से कम)

इसके अन्तर्गत आठ न्याय पंचायते आती हैं, जिनमें क्रमशः बाँसबगड़, नाचनी, क्वीटी, बरम, मडलकिया, सिर्तोला, मदकोट एवं खेत हैं। इन क्षेत्रों के अधिकांश गाँव भोटिया जनजाति के शीतकालीन अधिवास हैं। जहां ये लोग मध्य अक्टूबर के बाद शीताधिक्य के कारण ऊँचाई पर स्थित अपने मूल गाँवों से यहां प्रवास करते हैं। एवं ऊन से निर्मित वस्तुओं का विक्रय करते हैं।

इस जनघनत्व को अधिक स्पष्ट करने हेतु इसे निम्नलिखित श्रेणीक्रम में वर्गीकृत किया गया है। जो तालिका 2.6 से स्पष्ट है।

तालिका 2.6

जनसंख्या का गणितीय घनत्व (2001)

क्र0सं0	समूह	श्रेणी क्रम	न्याय पंचायतों की संख्या
1.	अधिक घनत्व	> 50	04-दरकोट, धारचूला देहात, सोविला, सोसा
2.	मध्यम घनत्व	25-50	03-गुंजी, दुग्तू, लीलम
3.	निम्न घनत्व	< 25	08-बाँसबगड़, नाचनी, क्वीटी, बरम, मडलकिया, सिर्तोला, मदकोट, खेत
	कुल योग	-	15

2. कार्यिक या कृषि क्षेत्रीय घनत्व

गणितीय घनत्व के माध्यम से किसी क्षेत्र की जनसंख्या का केवल वृहद् स्तर पर सामान्य विश्लेषण ही किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में अनेंक पर्यावरणीय विभिन्नतायें पाई जाती हैं, अतः कृषि क्षेत्रीय घनत्व के द्वारा कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या के वास्तविक दबाव का आंकलन किया जा सकता हैं। इसके अन्तर्गत प्रति वर्ग किमी0 कृषि क्षेत्र का उस क्षेत्र की जनसंख्या के साथ अनुपात ज्ञात करके जनघनत्व की अर्थपूर्ण व्याख्या की जा सकती है। पिथौरागढ़ जनपद के भौटिया जनजाति क्षेत्र के कृषि क्षेत्रीय घनत्व को तालिका 2.7 से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 2.7

न्याय पंचायत स्तर पर कृषि क्षेत्रीय घनत्व (2001)

विकास खण्ड	न्याय पंचायत	कृषि क्षेत्रफल (वर्ग किमी0 में)	जनसंख्या (2001)	कृषि क्षेत्रीय घनत्व
मुनस्यारी	1. लीलम	5.85	955	163.0
	2. सिर्तोला	11.33	797	70.0
	3. मदकोट	10.65	699	66.0
	4. दरकोट	7.52	2394	318.0
	5. सेविला	10.99	1622	147.0
	6. मडलकिया	5.00	204	41.0

PHYSIOLOGICAL DENSITY
2001
N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
DIDIHAT TAHSIL
NEPAL
INDEX
PERSONS/ Km2
BELOW 150
150 - 300
ABOVE 300
KM 5 0 5 10 KM
45′
30′
15′
30⁰
45′
30′
29⁰15′ N
80⁰ E
15′
30′
45′
81⁰E
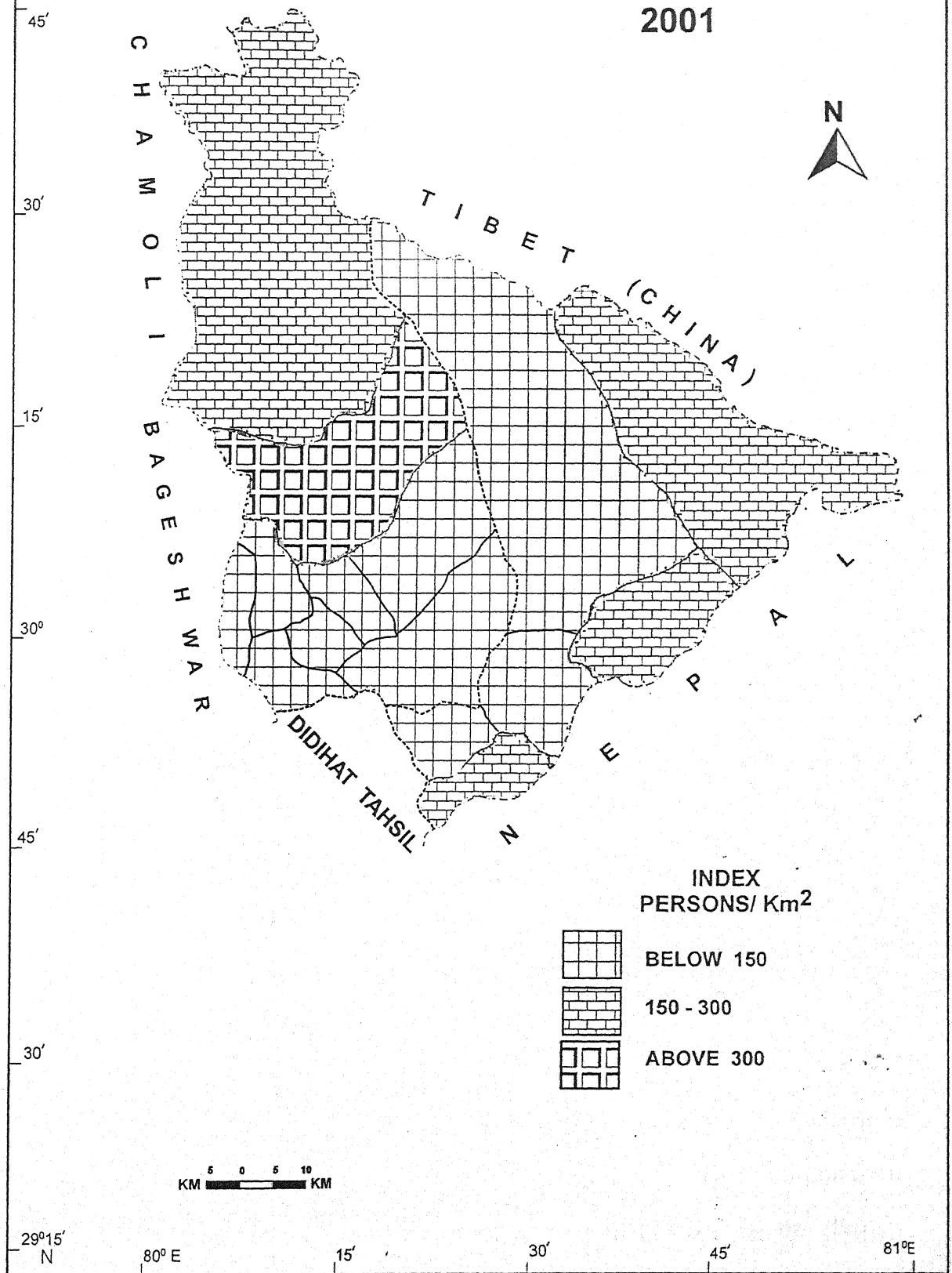
Fig. 15

	7. क्वीटी	10.18	407	40.0
	8. नाचनी	10.36	163	16.0
	9. बॉस बगड	10.82	17	1.6
योग		82.70	7268	88
धारचूला	दुग्तू	7.08	973	137
	गुंजी	4.03	912	226
	सोसा	9.65	1547	160
	खेत	8.39	732	87
	बरम	7.68	191	25
	धारचूला	17.56	4840	275
योग		54.39	9195	169

उक्त विवरण के आधार पर भोटिया जनजाति क्षेत्र के कृषि क्षेत्रीय घनत्व को तीन घनत्व पेटियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. अधिक घनत्व के क्षेत्र (300 व अधिक)

इस के अन्तर्गत मात्र दरकोट न्याय पंचायत आती है। इस न्याय पंचायत में जनसंख्या के अनुपात में कृषि क्षेत्र का प्रतिशत निम्न है अतः यहाँ कृषि घनत्व सर्वाधिक है।

2. मध्यम घनत्व के क्षेत्र (150-300)

इस वर्ग के अन्तर्गत लीलम, गुंजी, सोसा एवं धारचूला देहात न्याय पंचायतें आती हैं। इन न्याय पंचायतों में मध्यम घनत्व पाया गया है।

3. निम्न घनत्व के क्षेत्र (150 से कम)

इस श्रेणी के अन्तर्गत सिर्तोला, मदकोट, सेविला, मडलकिया, क्वीटी, नाचनी, बाँसबगड़, दुग्तू, खेत एवं बरम न्याय पंचायतें सम्मिलित हैं। इन सभी न्याय पंचायतों में कृषि भूमि का अनुपात जनसंख्या से अधिक है अतः इनमें निम्न घनत्व पाया गया है।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि भोटिया जनजाति क्षेत्र की विभिन्न न्याय पंचायतों के कृषि क्षेत्रीय घनत्व में अत्याधिक भिन्नता पाई जाती है। जिन न्याय पंचायतों में कृषि क्षेत्र अधिक एवं जनसंख्या कम है वहाँ कृषि घनत्व कम एवं जिन न्याय पंचायतों मे कृषि क्षेत्र कम एवं जनसंख्या अधिक है वहाँ कृषि घनत्व अधिक पाया जाता है (चित्र-15)।

जनसंख्या संरचना

किसी क्षेत्र में उपलब्ध विविध संसाधनों के विकास के माध्यम से वहाँ के क्षमतावान विकास एवं आगे वढने की दृढ़ इच्छा शक्ति के आधार का माध्यम मानवीय गुणवत्ता होती है। परिश्रमशील, विकास की चाह रखने वाली एवं कुशल जनसंख्या ही सीमित संसाधनों में भी अपने आर्थिक विकास का मार्ग स्वयं ढूँढ लेती है। किसी क्षेत्र के आर्थिक विकास में उस क्षेत्र की जनसंख्या संरचना की प्रमुख भूमिका होती है। जनसंख्या संरचना के अन्तर्गत जनसंख्या के विविध पक्षों जैसे आयु संरचना, लिंगानुपात, साक्षरता, व्यावसायिक संरचना, ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या, जनसंख्या स्थानान्तरण इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। भोटिया जनजाति क्षेत्र के जनसंख्या संरचना से सम्बन्धित विभिन्न तत्वों का अध्ययन निम्नलिखित है।

आयु संरचना

आयु संरचना का प्रत्यक्ष प्रभाव श्रमशक्ति, निर्भरता अनुपात तथा अन्य सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों एवं प्रतिक्रियाओं पर पडता है। किसी क्षेत्र में आर्थिक विकास की ढर काफी हद तक आयु संरचना पर भी निर्भर करती है। भारत की जनसंख्या (1951) रिपोर्ट के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद में 0-14 आयु वर्ग की जनसंख्या का अनुपात कुल जनसंख्या के आधे से अधिक है। जनसंख्या के सभी आयु वर्गो में 0-14 वर्ग का छोड़कर अधिकांश भाग स्त्रियों का है। युवक एवं युवतियों जो जनसंख्या का प्रमुख उत्पादक वर्ग होता है, उनकी संख्या कम है, जबकि मध्यम आयु वर्ग के लोगों एवं वृद्ध लोगों की संख्या अधिक है। अतः इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनपद में दीर्घायुता बढ रही है। अर्थात् उच्च आयु वर्ग के लोगों का अनुपात बढ़ रहा है और 15-39 आयु वर्ग का अनुपात घट रहा है।

भोटिया जनजाति क्षेत्र की प्रत्येक न्याय पंचायत की जनसंख्या की आयु संरचना के आँकड़े उपलब्ध नही हैं और न ही इस दुर्गम पर्वतीय सीमान्त क्षेत्र के सभी गाँवों का सर्वेक्षण करके उनकी यह जानकारी प्राप्त करना ही सम्भव है। अतः इस क्षेत्र के दोनों विकास खण्ड क्षेत्रों की भोटिया जनजाति की आयु वर्ग संरचना का विवरण सांख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर प्रस्तुत है (तालिका 2.8 व 2.9)।

तालिका 2.8

मुनस्यारी विकास खण्ड क्षेत्र की भोटिया जनजाति की आयु संरचना

आयु वर्ग (वर्षो में)	व्यक्तियों की संख्या		
	पुरुष	स्त्री	कुल
0-14	1785	1921	3706
15-59	1515	1610	3125
60 व अधिक	202	235	437

स्रोत- सांख्यकीय पत्रिका, पिथौरागढ़ वर्ष 2001

तालिका 2.9

धारचूला विकास खण्ड में भोटिया जनजाति की आयु संरचना

आयु वर्ग (वर्षो में)	व्यक्तियों की संख्या		
	पुरुष	स्त्री	कुल
0-14	2325	2367	4692
15-59	1975	1990	3965
60 व अधिक	229	309	538

स्रोत- सांख्यकीय पत्रिका, पिथौरागढ़ वर्ष 2001

उपर्युक्त तालिकाओं के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों भोटिया जनजाति क्षेत्रों में 0-14 आयु वर्ग के लोगों की जनसंख्या, कुल जनसंख्या के आधे से भी अधिक है। उच्च आयु वर्ग के लोगों की जनसंख्या भी बढ़ रही है जबकि मध्यम आयु वर्ग की जनसंख्या उक्त दोनों के अनुपात में कम है।

लिंगानुपात

अर्थव्यवस्था एवं समाज के विकास में लिंग अनुपात की महत्वपूर्ण भूमिका है। क्षेत्रीय आधार पर, यौनानुपात में पाई जाने वाली विभिन्नता सामाजिक-आर्थिक प्रगति में असंतुलन का एक प्रमुख कारण बनती है। फलतः यह एक सूचक भी होती है। प्रादेशिक अध्ययन एवं नियोजनगत विश्लेषण में यह अनुपात सहायक हो सकता है। विभिन्न सामाजिक-आर्थिक तथ्यों को प्रभावित करने वाले बहुत से जनांकिकीय तथ्य जैसे वृद्धि, वैवाहिक-संरचना और व्यावसायिक संरचना इस अनुपात द्वारा अत्यधिक

प्रभावित होते हैं। इस प्रकार किसी क्षेत्र के भौगोलिक विश्लेषण के यौनानुपात एक आवश्यक तथ्य है।

भारतीय संदर्भ में लिंगानुपात की व्याख्या प्रति एक हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या से की जाती है। 2001 की जनगणना के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद की कुल जनसंख्या 462289 है, जिसमें पुरुषों की जनसंख्या 227615 एवं स्त्रियों की जनसंख्या 234674 है, अतः जनपद में लिंगानुपात 1031 है। जनपद के दोनों भोटिया जनजाति क्षेत्रों की कुल जनसंख्या 16463 है, जिसमें पुरुषों की जनसंख्या 8031 एवं स्त्रियों की जनसंख्या 8432 है, अतः इस क्षेत्र में लिंगानुपात 1050 है। इस क्षेत्र में लिंगानुपात जनपद के सम्पूर्ण लिंगानुपात से अधिक है। इस क्षेत्र का लिंगानुपात तालिका 2.10 से स्पष्ट है।

तालिका 2.10

न्याय पंचायत स्तर पर लिंगानुपात (2001)

विकास खण्ड का नाम	न्याय पंचायत का नाम	लिंगानुपात
मुनस्यारी	1. लीलम	929
	2. सिर्तोला	1070
	3. मदकोट	991
	4. दरकोट	1191
	5. सेविला	1040
	6. मडलकिया	962
	7. क्वीटी	1286
	8. नाचनी	953
	9. बॉसबगड़	417
धारचूला	1. दुग्तू	950
	2. गुंजी	924
	3. सोसा	1063
	4. खेत	768
	5. बरम	1076
	6. अ- धारचूला	1104
	ब- धारचूला देहात एवं नगर	1085
योग	-	1050

SEX RATIO
2001
N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
DIDIHAT TAHSIL
NEPAL
INDEX
BELOW 900
900- 1000
1000 - 1100
1100- 1200
ABOVE 1200
KM 5 0 5 10 KM
45′
30′
15′
30⁰
45′
30′
29⁰15′ N
80⁰ E
15′
30′
45′
81⁰E
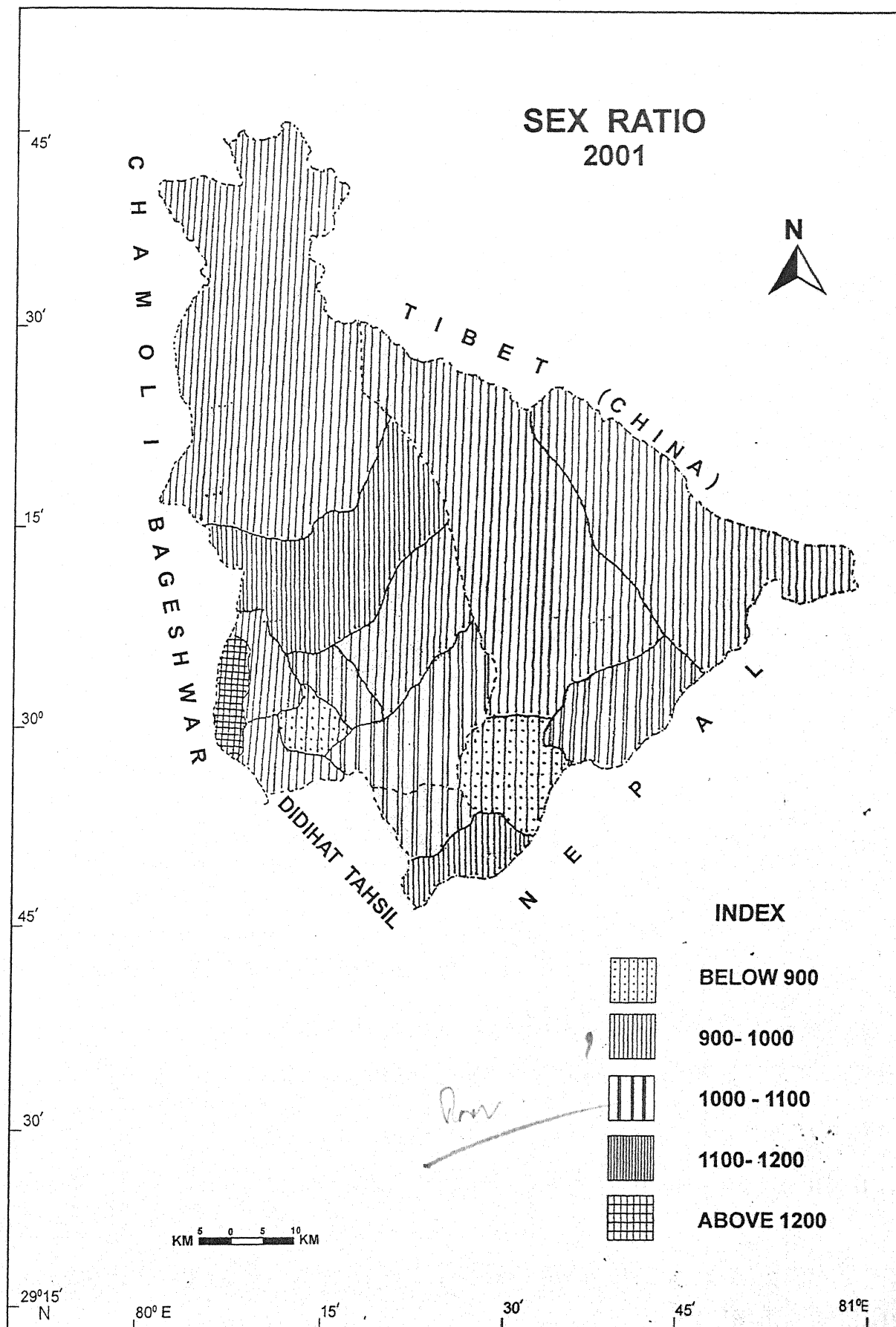
Fig. 16

उक्त तालिका के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भोटिया जनजाति क्षेत्र के दोनों विकास खण्डों की विभिन्न न्याय पंचायतों के लिंगानुपात में अत्यधिक विभिन्नता है। लिंगानुपात की दृष्टि से इन 15 न्याय पंचायत क्षेत्रों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया गया है (चित्र 16)।

1. अत्योच्च लिंगानुपात के क्षेत्र (1200-1300)

इसके अन्तर्गत क्वीटी न्याय पंचायत आती हैं। सामान्यतः इस क्षेत्र में अधिक उम्र की महिलाओं की संख्या अधिक है। इस क्षेत्र में अत्यधिक लिंगानुपात के प्रमुख कारण पुरुष वर्ग का आजीविका की प्राप्ति हेतु वाह्य क्षेत्रों को प्रवास एवं पुरुष युवकों का अच्छी शिक्षा प्राप्ति हेतु अन्यत्र गमन है।

2. उच्च लिंगानुपात के क्षेत्र (1100-1200)

इस श्रेणी क्रम के अन्तर्गत दरकोट एवं धारचूला न्याय पंचायत क्षेत्र आती हैं। इस क्षेत्र में उच्च लिंगानुपात का प्रमुख कारण कार्य शील पुरूषों का वाह्य क्षेत्रों में प्रवास एवं साक्षरता की कमी होना है।

3. मध्यम लिंगानुपात के क्षेत्र (1000-1100)

इस वर्ग के अन्तर्गत सिर्तोला, बरम, सोसा, सेविला एवं धारचूला देहात न्याय पंचायतें आती है। इस क्षेत्र में अधिक लिंगानुपात का प्रमुख कारण अधिक साक्षरता एवं द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों का विकसित होना है।

4. निम्न लिंगानुपात क्षेत्र (900-1000)

इसके अन्तर्गत मदकोट, मडलकिया नाचनी, दुग्तू, लीलम एवं गुजी न्याय पंचायतें आती है। इन क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि की कमी के कारण आजीविका की प्राप्ति हेतु पुरुष वर्ग के लोगों का अनिवार्यतः अन्यत्र गमन है। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों में साक्षरता का अनुपात भी कम है।

5. अति निम्न लिंगानुपात के क्षेत्र (900 से कम)

इस वर्ग के अन्तर्गत खेत एवं बाँसबगड़ न्याय पंचायतें आती हैं। यहाँ लिंगानुपात में कमी के प्रमुख कारण अधिक साक्षरता, कम स्थानान्तरण एवं द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों का विकसित होना है।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता कि प्राकृतिक दशाओं, जनसंख्या घनत्व की प्रवृत्ति, साक्षरता एवं लिंगानुपात का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन विभिन्न कारकों का सम्मिलित प्रभाव लिंगानुपात की असमानता पर प्रत्यक्ष रुप से पड़ता है।

साक्षरता

किसी क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में साक्षरता का प्रमुख योगदान होता है। साक्षर व्यक्ति अपने परिवार एवं समाज के साथ-साथ अपने प्रदेश एवं देश के बहुमुखी विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। किसी क्षेत्र के विकास का मापदण्ड साक्षरता के माध्यम से ही आँका जा सकता है।

साक्षरता की दृष्टि से उत्तराँचल का देश में 14वाँ स्थान है। राज्य का कुल साक्षरता प्रतिशत 72.28 है, जो देश के कुल साक्षरता प्रतिशत 65.38 से काफी अधिक है। महिला साक्षरता दर राष्ट्रीय स्तर पर 54.16 प्रतिशत है जबकि उत्तरांचल में यह 60.26 प्रतिशत है। पुरुष साक्षरता दर राष्ट्रीय स्तर पर 75.85 प्रतिशत है जबकि उत्तरांचल में यह 84.01 प्रतिशत है। पिथौरागढ़ में कुल साक्षरता का प्रतिशत 61.3 है, जिसमें पुरुष साक्षरता 80.3 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 42.4 प्रतिशत है।

पिथौरागढ़ जनपद में मुनस्यारी एवं धारचूला, कम साक्षरता वाले विकास खण्ड हैं। मुनस्यारी विकास खण्ड क्षेत्र की कुल साक्षरता का प्रतिशत 49.4 है, जिसमें पुरुष साक्षरता 70.2 एवं महिला साक्षरता 27.4 प्रतिशत है। इसी प्रकार धारचूला विकास खण्ड की कुल साक्षरता 53.3 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता 74.4 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 29.8 प्रतिशत है। सर्वशिक्षा अभियान मार्च 2005, द्वारा प्रकाशित बेसिक शिक्षा सांख्यकी पुस्तिका के विवरण के अनुसार मुनस्यारी एवं धारचूला विकास खण्डों में साक्षरता का प्रतिशत तालिका 2.11 से स्पष्ट है।

तालिका- 2.11

मुनस्यारी एवं धारचूला विकास खण्डों में साक्षरता का प्रतिशत

विकास खण्ड	पुरुष	स्त्री	कुल
मुनस्यारी	70.2	27.4	49.4
धारचूला	74.4	29.8	53.3
पिथौरागढ़ जनपद	80.3	42.4	61.3

स्रोत- बेसिक शिक्षा सांख्यकीय पुस्तिका, सर्व शिक्षा अभियान देहरादून, उत्तरांचल-2005

व्यावसायिक संरचना

व्यावसायिक संरचना एक महत्वपूर्ण संकेतक है, जिसके माध्यम से किसी प्रदेश की जनसंख्या के स्वास्थ्य एवं शक्ति की आर्थिक गतिशीलता पर प्रकाश डाला जा सकता है। व्यावसायिक संरचना किसी क्षेत्र की प्राथमिक, द्वितीयक तृतीयक एवं कार्यशील जनसंख्या के तीन व्यावसायिक घटकों का एकलाबद्ध अन्तर्सम्बन्ध प्रतिरूप होता है, जो आर्थिक तन्त्र में अपना दायित्व स्थापित करते हैं। स्मिथ (1948, 164) के अनुसार व्यावसायिक संरचना का विशिष्ट महत्व जनसंख्या के विश्लेषण के लिए होता है, क्योकिं यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अपने चारों ओर स्थित प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में उसमें कार्य निर्धारण की प्रकृति क्या है ?

क्लार्क जे0आई0 (1966, 88) के अनुसार जनसंख्या के विश्लेषण के उद्देश्य से व्यावसायिक संरचना को प्रमुख तीन व्यावसायिक समूहों या क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है- प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक। प्राथमिक वर्ग के अन्तर्गत वह जनसंख्या आती है जो प्रत्यक्षतः भूमि पर निर्भर होती है। इस वर्ग में कृषक एवं कृषि श्रमिक आते हैं। द्वितीयक वर्ग में अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों में संलग्न, सामान्यतया वस्तुओं के उत्पादन कार्य में लगी जनसंख्या सम्मिलित है। तृतीयक वर्ग के अन्तर्गत व्यापार, वाणिज्य, परिवहन इत्यादि विभिन्न सेवाओं में संलग्न जनसंख्या आती है।

एस0सी0 जोशी व अन्य (1993, 133) के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद के भोटिया जनजातीय क्षेत्र मुनस्यारी एवं धारचूला विकास खण्डों में भौगोलिक दशायें कुमाऊँ के अन्य क्षेत्रों से एकदम भिन्न हैं। इस क्षेत्र में न्यूनतम नगरीकरण हुआ है। मुनस्यारी कुमाऊँ की एक मात्र ऐसी तहसील है जहाँ नगरीय जनसंख्या शून्य है। इसके अतिरिक्त, यह क्षेत्र व्यापारिक जनजाति भोटिया का पारंपरिक निवास क्षेत्र है जहाँ के अधिकांश लोग प्राचीन काल से ही द्वितीयक एवं तृतीयक कार्यो में संलग्न रहे हैं। यद्यपि कृषि सदैव लोगों के स्थायित्व का कारण रही है और इसी के द्वारा कुटीर एवं घरेलू उद्योगों, पशुपालन, व्यापार एवं वाणिज्य को भी स्थायित्व मिला है। इन क्षेत्रों में तुलनात्मक दृष्टि से कार्यशील जनसंख्या का अधिकतम भाग द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में संलग्न हैं और इन्हीं के द्वारा इस समाज की आर्थिक संरचना निर्धारित है। 1962 में भारत-तिब्बत व्यापार की समाप्ति के पश्चात भोटिया जनजाति के लोगों का लगाव प्राथमिक कार्यो की तरफ भी बढा है (तालिका 2.12)।

तालिका 2.12

न्याय पंचायत पर कार्यशील जनसंख्या (2001)

विकास खण्ड का नाम	न्याय पंचायत का नाम	कुल जनसंख्या में कुल कार्यशील जनसंख्या का %	कुल कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत			
			प्राथमिक कर्म कर	द्वितीयक कर्म कर	तृतीयक कर्म कर	सीमान्त कर्म कर
मुनस्यारी	1. लीलम	37.54	45.64	15.46	38.90	13.41
	2. सिर्तोला	39.32	65.32	8.43	26.25	9.64
	3. मदकोट	36.45	51.73	16.54	31.73	10.43
	4. दरकोट	37.43	49.76	9.67	40.57	11.35
	5. सेविला	40.32	68.54	17.86	13.60	15.32
	6. मडलकिया	38.23	58.46	13.58	27.96	8.75
	7. क्वीटी	40.25	66.86	12.35	20.79	12.69
	8. नाचनी	42.32	52.69	11.43	35.88	15.20
	9. बाँसबगड़	44.45	35.47	18.53	46.00	14.38
योग	–	39.59	54.94	13.76	31.30	12.35
धारचूला	1. दुग्तू	32.35	41.45	13.54	45.01	9.43
	2. गुन्जी	33.26	45.48	12.86	41.66	8.57
	3. सोसा	35.43	52.63	13.45	33.92	11.38
	4. खेत	41.45	55.82	11.34	32.84	12.35
	5. बरम	46.84	54.35	12.83	32.82	13.81
	6. धारचूला	45.52	56.67	18.62	24.71	15.46
योग	–	39.14	51.06	13.77	35.16	11.83

स्रोत- प्रोवीजलन आंकड़े, जनगणना वर्ष 2001, जनपद पिथौरागढ़

प्राथमिक वर्ग :- इस वर्ग के अन्तर्गत कृषि, खनन, लकड़ी काटना एवं मत्स्य व्यवसाय आदि प्राथमिक कार्यो में संलग्न जनसंख्या को सम्मिलित किया जाता है। भोटिया जनजाति क्षेत्रों में प्राथमिक व्यवसायों में लगी जनसंख्या का प्रतिशत लगभग 1/2 है। कठिन पर्यावरणीय दशाओं एवं रोजगार के सीमित अवसर होने के कारण यहाँ के पुरुष वर्ग अन्यत्र स्थानान्तरण करते हैं, अतः अधिकांश औरतें इस वर्ग के अन्तर्गत

OCCUPATIONAL STRUCTURE
NYAY PANCHAYAT LEVEL
2001
N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
NEPAL
DIDIHAT TAHSIL
NOT TO SCALE
TERTIARY
SECONDARY
PRIMARY
OCCUPATIONAL STRUCTURE TAHSIL LEVEL 2001
KM 5 0 5 10 KM
Fig. 17 A
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
80° E
15′
30′
45′
81°E
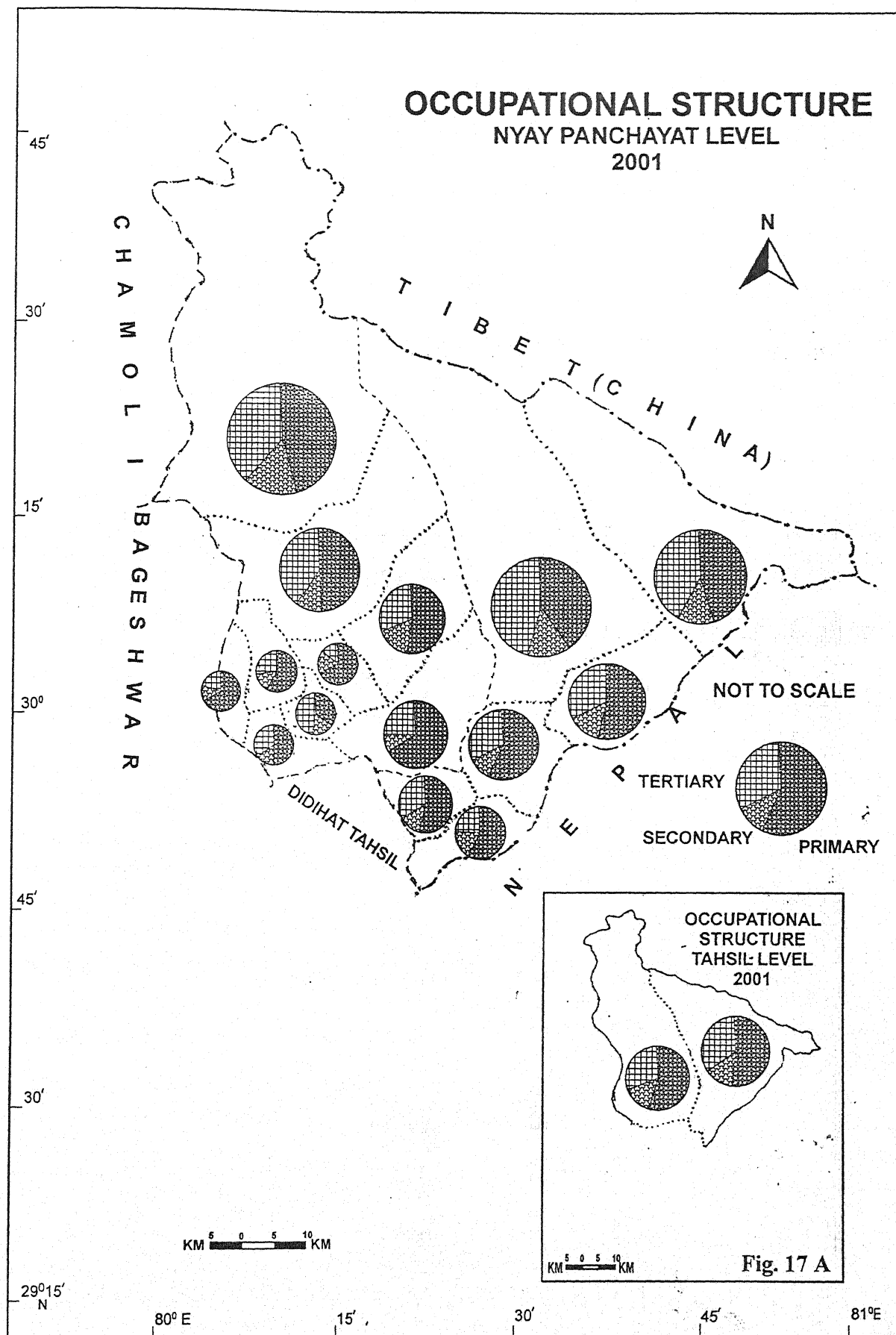
Fig. 17

संलग्न रहती हैं। उल्लेख्य है कि अध्ययन क्षेत्र में प्राथमिक वर्ग महिलाओं के द्वारा संचालित होता है क्योंकि सभी न्याय पंचायत क्षेत्रों में पुरुष वर्ग के लोग प्रवास में रहते हैं। लीलम (45.64), बाँसबगड (35.47), दुग्तू (41.45) एवं गुंजी (45.48) न्याय पंचायत क्षेत्रों में प्राथमिक कार्यों में लगी जनसंख्या का अनुपात कम है जबकि शेष न्याय पंचायतों में यह अनुपात लगभग 50% या इससे अधिक है।

द्वितीयक वर्ग :- इस वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के व्यवसाय उद्योगों में संलग्न जनसंख्या आती है। इस क्षेत्र में औद्योगीकरण शून्य है। अतः घरेलू एवं कुटीर उद्योगों की अधिक उपादेयता है। इस वर्ग में कुटीर उद्योगों में संलग्न कर्मकरों की संख्या अधिक है। इसका सर्वाधिक प्रतिशत बाँसबगड़, सेविला, मदकोट, लीलम एवं धारचूला न्याय पंचायतों में पाया गया है।

तृतीयक वर्ग :- इस वर्ग के अन्तर्गत उन सभी क्रियायों को सम्मिलित किया जाता है, जिनका सम्बन्ध उत्पादकता, निर्माण सामग्री, परिवहन तथा व्यापार से है। इस वर्ग के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र की एक तिहाई से अधिक जनसंख्या संलग्न है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिन न्याय पंचायतों में साक्षरता का सर्वाधिक अनुपात पाया गया है, वहाँ तृतीयक वर्ग में लगी जनसंख्या का सर्वाधिक अनुपात दृष्टिगत होता है। जिन न्याय पंचायतों में साक्षरता का स्तर न्यून है वहाँ तृतीयक वर्ग में लगी जनसंख्या का प्रतिशत भी न्यून पाया गया है। सभी न्याय पंचायतों में इस वर्ग के अन्तर्गत पुरुष वर्ग के लोगों की संख्या अधिक है। स्पष्टतः विभिन्न न्याय पंचायतों में विभिन्न वर्गो के अन्तर्गत कार्यरत जनसंख्या में अत्यधिक विभिन्नता मिलती है (चित्र-17)।

परिवार कल्याण कार्यक्रम -

भोटिया जनजाति के लोग परिवार कल्याण कार्यक्रम के महत्व को भलीभाँति समझते हैं। डूँगर सिंह ढकरियाल (2004, 87) के अनुसार प्राचीन काल से वर्तमान समय तक शौकों के परिवार पूर्णरुप से नियोजित ही रहे हैं। आदिकाल से मध्य काल तक अनेक गाँव हिमालयी शौका क्षेत्रों में बसते-उजडते रहे किन्तु तब से आज तक उन गाँवों के परिवारों की जनसंख्या में बृद्धि नही देखी गयी है। कुछ गाँवों में इनकी जनसंख्या में ह्रास हुआ है।

भोटिया परिवारों के नियोजित रहने के विभिन्न कारण रहे हैं। जिन कठिन व बीहड भौगोलिक परिस्थितियों में भोटिया परिवार व गाँव अवस्थित हैं उस वातावरण में मानव जनसंख्या वृद्धि के लिए पारस्थितिकी अनुकूल नहीं हैं। माता-पिता द्वारा अपने बच्चों के पालन-पोषण में अधिक समय न दे पाना, बच्चों को उचित पौष्टिक आहार न मिल पाना वर्ष में मात्र दो चाह माह ही घर में रहने का समय मिलना,

शिक्षा का अभाव, आँधी तूफान, ओलावृष्टि एवं अनावृष्टि के मध्य परिवार, बच्चों एवं जानवरों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए उत्क्रमण इत्यादि अनेक प्राकृतिक,आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारण इनके परिवार नियोजन में सहायक रहे हैं। दारमा क्षेत्र में कुष्ठ रोग एवं क्षय रोग देखने एवं सुनने को नहीं मिलता है किन्तु हैजा एवं चेचक रोग से अनेक लोगों की मृत्यु होने के समाचार मिलते हैं। दुर्भाग्य से यदि कोई व्यक्ति गुप्त रोगों से ग्रसित होता है तो वह लज्जित होकर आत्महत्या कर लेता है क्योंकि समाज उस व्यक्ति को चरित्रहीन समझकर तिरस्कृत कर देता है। सम्भवतः उक्त कारण भी भोटिया समाज में परिवार नियोजन हेतु सहायक रहे हैं।

भोटिया जनजाति क्षेत्र के परिवार नियोजन सम्बन्धी न्याय पंचायत स्तर पर आँकड़े उपलब्ध होना नितान्त कठिन है। अतः मुख्य चिकित्साधिकारी कार्यालय पिथौरागढ़ के अभिलेखों से प्राप्त विवरण के आधार पर विकास खण्ड स्तर पर प्राप्त विगत दस वर्षो के परिवार नियोजन सम्बन्धी आँकड़ों का विवरण देना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। विकास खण्ड स्तर पर परिवार नियोजन का विवरण तालिका 2.13 से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 2.13

परिवार कल्याण कार्यक्रमों में सहभागिता

वर्ष	विभिन्न साधनों से लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या	
	मुनस्यारी विकास खण्ड	धारचूला विकास खण्ड
1995	285	325
1996	310	401
1997	405	395
1998	396	423
1999	417	535
2000	425	467
2001	305	425
2002	385	510
2003	403	535
2004	415	630

स्रोत- मुख्य चिकित्साधिकारी पिथौरागढ़ कार्यालय अभिलेख, वर्ष 1995-2004

परिवार नियोजन सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के अपनाये गये साधनों में वन्ध्याकरण के अनेक साधन, पुरुष एवं महिला नसबन्दी, कापर टी एवं गर्भनिरोधक गोलियाँ इत्यादि सम्मिलित हैं। तालिका 2.13 के अवलोकन से स्पष्ट है कि गत एक दशक में परिवार कल्याण कार्यक्रमों में व्यक्तियों की सहभागिता बढ़ी है।

ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या

पिथौरागढ़ जनपद का भोटिया जनजाति क्षेत्र दो मुख्य भागों में विभाजित है, प्रथम मुनस्यारी क्षेत्र द्वितीय-धारचूला क्षेत्र। धारचूला क्षेत्र के भोटिया पूर्वी भोटिया एवं मुनस्यारी तहसील के भोटिया पश्चिमी भोटिया कहलाते हैं। इन दोनों क्षेत्रों को दो तहसीलों, दो विकास खण्ड क्षेत्रों एवं 15 न्याय पंचायत क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। मुनस्यारी तहसील/विकास खण्ड में 9 न्याय पंचायतें हैं, जिनमें भोटिया जनजाति के कुल 87 गाँव हैं। इन सम्पूर्ण गाँवों में केवल ग्रामीण जनसंख्या निवास करती है। मुनस्यारी विकास खण्ड में नगरीय जनसंख्या शून्य है। धारचूला तहसील/ विकास खण्ड में कुल 60 गाँव हैं, इनमें 59 ग्रामों में ग्रामीण जनसंख्या पाई जाती है। इस क्षेत्र में केवल धारचूला कैण्टोनमेन्ट एवं धारचूला नगरपालिका में नगरीय जनसंख्या निवास करती है (तालिका 2.14)।

तालिका 2.14

भोटिया जनजाति क्षेत्र की ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या (2001)

विकास खण्ड का नाम	न्याय पंचायत का नाम	कुल ग्रामों की संख्या	कुल ग्रामीण जनसंख्या	कुल नगरीय जनसंख्या
मुनस्यारी	1. लीलम	19	955	
	2. सिर्तोला	06	797	
	3. मदकोट	07	699	
	4. दरकोट	13	2395	
	5. सेविला	25	1622	
	6. मडलकिया	04	208	–
	7. क्वीटी	05	407	–
	8. नाचनी	06	168	–
	9. बाँसबगड़	02	17	
योग	–	87	**7268**	–

धारचूला	1. दुग्तू	12	973	
	2. गुन्जी	07	912	
	3. सोसा	16	1547	
	4. खेत	12	732	
	5. बरम	04	191	
	6. (अ) धारचूला	08	2217	
	(ब) धारचूला देहात/नगर	01		2623
योग	–	60	6572	
कुल योग	–	147	13840	2623

उक्त तालिका के अवलोकन ये यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों जनजातीय क्षेत्रों के कुल 147 ग्रामों में से 146 ग्राम ग्रामीण जनसंख्या वाले हैं, जबकि मात्र धारचूला नगर में नगरीय जनसंख्या पाई जाती है। इन दोनों क्षेत्रों की ग्रामीण जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी न्याय पंचायतें दरकोट, धारचूला देहात, सेविला, एवं सोसा हैं, जबकि छोटी न्याय पंचायतें बाँसबगड़ नाचनी, वरम, मडलकिया एवं कवीटी हैं। एक मात्र नगरीय क्षेत्र धारचूला कैण्टोनमेन्ट एवं धारचूला नगर की नगरीय जनसंख्या 2623 है, जो अन्य नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या से अत्यधिक न्यून है।

जनसंख्या का मौसमी स्थानान्तरण

भोटिया जनजाति क्षेत्र की विषम भौगोलिक परिस्थिति, धरालीय विषमता, पर्वतीय ढालों एवं ऊँचाई से उत्पन्न जलवायु सम्बन्धी विभिन्नता के कारण भोटिया जनजीवन की एक अनिवार्यता इनका ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन निष्क्रमण है। एस0सी0बोस (1960,3) ने इनके मौसमी स्थानान्तरण का प्रमुख कारण जलवायु माना है जबकि एस0सी0 खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971,470) ने जलवायु, परिवर्तन चारागाहों का उपयोग एवं व्यापार को माना है। एस0सी0 जोशी एवं अन्य (1983,198) ने भोटियों के मौसमी स्थानान्तरण के प्रमुख कारण जलवायु परिर्वतन एवं सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं को स्वीकार किया है। इन्होनें भोटिया लोगों को वास्तविक प्रवासी माना है। इनका कथन है कि भोटिया जनजाति के लोगों को बुग्याल चारागाहों के उपयोग एवं तिब्बत के साथ व्यापार के लिए अपने अधिवासों को दो विभिन्न क्षेत्रों में बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन आवास, तिब्बत के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से बनाये गये जबकि निचली गर्म घाटियों में शीतकालीन

आवासों का निर्माण कठोर शीत से बचने एवं तिब्बत व्यापार से क्रय की गई सामग्री का कुमाऊँ एवं देश के विभिन्न भागों में विक्रय के उद्देश्य से किया गया।

पर्वतीय क्षेत्रों में ऊँचाई में विभिन्नता के कारण जलवायु में भी अनेक विभिन्नतायें पाई जाती हैं। निम्न घाटियों में असहनीय गर्मी तथा उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में कठोर शीत के कारण, जलवायुजनित विभिन्नताओं ने भोटिया जनजाति के लोगों को घुमन्तू जीवन अपनाने को विवश कर दिया है। भोटियों के अस्थाई जीवन की तुलना टर्की के पशुपालकों के जीवन से की जा सकती है जो ग्रीष्मकाल में अपने पशुओं के साथ अनातोलिया पठार में प्रवास करते हैं और शीतकाल में भूमध्यसागरीय तटवर्ती मैदानी भागों में आ जाते हैं। पं० राहुल सांकृत्यायन (1958,190) के अनुसार शौका क्षेत्र की तरह पाली पछाँव, काली कुमाऊँ और फल्दाकोट परगने के घमतप्पा (धूप लेने वाले) लोग अपने घरों के छोडकर, अपने पशुओं को लेकर भाबर एवं तराई की ओर चले जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट हैं कि भोटिया लोगों के स्थानान्तरण का प्रमुख कारण जलवायु जन्य परिस्थितियाँ हैं।

वर्तमान समय में भी मुनस्यारी एवं धारचूला तहसीलों में निवास करने वाले भोटिया जनजाति के लोगों का मौसमी स्थानान्तरण यथावत है, जिसका विवरण अमर उजाला, नैनीताल संस्करण (11 अप्रैल 2002, 6 अक्टूबर 2004, 11 दिसम्बर 2004) एवं दैनिक जागरण नैनीताल संस्करण (27 अक्टूबर 2004) में वर्णित है। यद्यपि तिब्बत के साथ व्यापार समाप्त हो जाने के बाद इनकी व्यापारिक गतिविधियों एवं अर्थव्यवस्था पर तीव्र आघात पहुँचा है तथापि इनका मौसमी स्थानान्तरण पूर्ववत् ही है। इन लोगों की दोनों प्रकार के आवासों में थोड़ी-बहुत परिसंपत्तियाँ होती हैं। ये लोग ग्रीष्मकाल अपने मूल आवासों में एवं शीतकाल घाटियों में व्यतीत करते हैं। शीत ऋतु के समय बर्फीले क्षेत्रों में अवस्थित गाँवों से घाटियों की ओर लोगों का पलायन प्रारम्भ हो जाता है। यह प्रवास प्रायः अक्टूबर के प्रारम्भ से होने लगता है। स्थानान्तरण के समय ये लोग अपने पशु एवं खाद्य सामग्री को साथ लेकर चलते हैं। लगभग छैः महीने तक घाटियों में स्थित आवासों में रहने के पश्चात मार्च से इनकी मूल गाँवों में वापसी प्रारम्भ होने लगती है।

दारमा के भोटियों का मौसमी स्थानान्तरण

रतन सिंह रायपा (1974, 153-158) ने भोटिया लोगों के मौसमी स्थानान्तरण का प्रमुख उद्देश्य जलवायु की अपेक्षा आर्थिक स्थिति को सुदृढ करना माना है। इनका कथन है कि दारमा के गाँवों के कुछ परिवार पूर्वकाल से ही अपने ग्रीष्मकालीन अधिवासों में ही स्थाई रूप से निवास करते थे। इनके धारचूला

एवं नेपाल में शीतकालीन आवास नहीं थे। ये लोग कृषक या पशुपालक के रूप में अपने ग्रीष्मकालीन आवासों में स्थाई रूप से निवास करते थे। तिब्बत के साथ व्यापार आरम्भ होने के बाद ही इस स्थानान्तरण व्यवस्था का उदय हुआ। शनैः-शनैः पट्टी व्यांस के शौका शीतकाल में धारचूला एवं उससे संलग्न नेपाल क्षेत्र में तथा मल्ला दारमा के निवासी जौलजीवी से धारचूला तक काली नदी की उपत्यका में बसने लगे। ये लोग ग्रीष्मकाल में अपने मूल आवासों से तिब्वत व्यापार के लिए जाते थे क्योंकि तिब्बत क्षेत्र व्याँस एवं मल्ला दारमा से निकट पड़ता था। दूसरी ओर तिब्वत में विक्रय के लिए विभिन्न वस्तुओं के संग्रह हेतु इनके शीतकालीन आवास कुमाऊँ, तराई क्षेत्र व मैदानी भागों से निकट पड़ते थे। अतः भोटिया लोग तिब्बत से आयातित वस्तुओं के विक्रय एवं तिब्बत में विक्रय हेतु वस्तुओं के संग्रह हेतु अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ शीतकाल में घाटियों में स्थित आवासों में प्रवास करने लगे। इस उद्देश्य से दारमा क्षेत्र (धारचूला) के भोटियों के दो प्रकार के आवास स्थल हैं।

ग्रीष्मकालीन आवास स्थल

यहाँ भोटिया लोग अप्रैल से नवम्बर तक रहते हैं। पुरुष वर्ग के लोग जून में तिब्बत व्यापार के लिए जाते हैं। स्त्रियाँ कृषि कार्य करती हैं। शीताधिक्य होने पर तिब्बत जाने के मार्ग बन्द होने से पूर्व शौका व्यापारी नवम्बर तक अपने आवासों में लौट आते हैं। इसके पश्चात तिब्बत से आयातित वस्तुओं को लेकर सम्पूर्ण परिवार एवं पशुओं सहित शीतकालीन आवासों में लौटने लगते हैं। इनके ग्रीष्मकालीन अधिवास 2400 मीटर से 3500 मीटर तक या उससे अधिक ऊँचाई में स्थित हैं।

शीतकालीन आवास स्थल

इनके शीतकालीन आवास धारचूला से जौलजीवी तक काली एवं धौली उपत्यका तथा नेपाल से संलग्न क्षेत्रों में स्थित हैं। यहाँ ये लोग दिसम्बर से मार्च-अप्रैल तक रहते हैं। इन गाँवों की ऊँचाई लगभग 1000 मीटर है। 1962 से पूर्व जब तिब्बत से ऊन का आयात होता था, तब स्त्रियाँ घरों में ऊनी वस्त्र तैयार करती थीं और पुरुष वर्ग के लोग तिब्बत व्यापार हेतु मैदानी भागों से विभिन्न वस्तुओं का आयात करते थे।

रतन सिंह रायपा (1975, 5-6) के मतानुसार पट्टी व्याँस एवं मल्ला दारमा के भोटिया लोगों में अनेक वर्षो से आवास परिवर्तन होता रहा है, जिसका विस्तृत विवरण तालिका 2.15, 2.16 व 2.17 में अंकित है।

तालिका 2.15

पट्टी व्याँस (काली उपत्यका) में मौसमी स्थानान्तरण

क्रम संख्या	मूल ग्राम	शीतकालीन आवास	उपजाति
1.	कुटी	धारचूला, रौतेडा (नैपाल)	कुटियाल
2.	रौंगकौंग	धारचूला	रौंकली
3.	नावी	धारचूला, धुलिगडा (नैपाल)	नवियाल
4.	गुंजी	धारचूला, धुलिगडा (नैपाल)	गुंज्याल
5.	नपलच्यू	धारचूला, खेट्टाबगड (नैपाल)	नपलच्याल
6.	गरब्याँग	धारचूला, हर्सिबगड, रौलेडा, बंगा बगड मोती (नैपाल)	गर्ब्याल
7.	बूँदी	धारचूला, हर्सिबगड, रौतेडा, सितोला (नैपाल)	बुदियाल, रायपा

तालिका 2.16

पट्टी चौदाँस (काली उपत्यका) में मौसमी स्थानान्तरण

क्रम संख्या	मूल ग्राम	शीतकालीन आवास	उपजाति
1.	पांगू	स्थाई	पतियाल, हयांकी
2.	रिमझिम	स्थाई	रौंतेला
3.	तंतागाँव रौतों	स्थाई	रौंतेला
4.	छिलासों	स्थाई	फकालियाल
5.	हिमखोला	स्थाई	गरखाल
6.	सोसा	स्थाई	हयांकी
7.	रूँग	स्थाई	हयांकी, रूवाल
8.	सिर्खा	स्थाई	सिर्खाल
9.	बौंग बौंग	स्थाई	मिश्रित
10.	सिर्दांग	बंबा	खुन्नू, हयांकी

तालिका 2.17

दारमा मल्ला व तल्ला पट्टी (धौली उपत्यका) में मौसमी स्थानान्तरण

क्रम संख्या	मूल ग्राम	शीतकालीन ग्राम	उपजाति
1.	सीपू	गलातीगाड	सीपाल
2.	मार्छा	गलातीगाड	मार्छाल
3.	तीदांग	कालिका	तितिंग्याल
4.	गो	बलकोट (घाटी वगड)	ग्वाल
5.	फिलम	छारछुम	फिरमाल
6.	ढाकर	घाटीबगड	ढकरियाल
7.	बौन	छारछुम, गोठी	बोनाल
8.	दुग्तू	निगालपानी, जौलजीवी	दुग्ताल
9.	बालिंग	गलाती	बनग्याल
10.	सौन	निगालपानी	सोनाल
11.	नागलिंग	निगालपानी, गलातीगाड	नंगन्याल
12.	चल	जूनीबगड	चलाल
13.	स्याला	अन्सीगडा	स्यलाल
14.	दर	स्थाई	दरियाल
15.	बोलिंग	स्थाई	बाङ्लगी
16.	दांतू	जौलजीवी	दताल

जोहार के भोटिया का मौसमी स्थानान्तरण

डा० शेरसिंह पांगती (1992, 17) का मत है कि चन्द शासन काल से ही ज़ोहार के शौका लोग ऋतु परिवर्तन के अनुसार अपना प्रवासी जीवन व्यतीत करने के लिए अपने मूल निवास जोहार के अतिरिक्त गोरी, रामगंगा तथा सरयू नदी घाटी क्षेत्रों में अस्थाई आवास बनाने लगे थे। इन स्थानों में शीतकाल के कुछ महीनों के लिए अपने परिवार को व्यवस्थित करके पुरुष वर्ग व्यापार के लिए बाहर जाते थे। चन्द, गोरखा और ब्रिट्रिश शासनकाल में शासन की ओर से इन्हें जागीर के रूप में कई

गाँव भी प्राप्त हुए तथा इन्होनें कई गाँवों में भूमि क्रय करके भू-स्वामित्व भी प्राप्त कर लिया था। ऐसे गाँव शीतकालीन आवास हेतु उपयुक्त समझकर इन्होनें अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये। ग्रीष्म एवं शीतकालीन आवासों के अतिरिक्त प्रवास की सुगमता हेतु इस क्षेत्र के मध्य भाग मुनस्यारी में एक मध्यवर्ती आवास की भी व्यवस्था थी जहाँ शीत एवं वर्षा ऋतु से पूर्व नवम्बर और मई में एक माह विश्राम करके व्यापारिक वस्तुओं का संग्रह किया जाता था। जोहार का प्रत्येक शौका परिवार सत्रहवीं शताब्दी से तीन आवासीय स्थलों में निवास करता था। इन आवासीय स्थलों के भवन पक्के थे और यहाँ नियुक्त प्रतिनिधि इनकी सेवा में संलग्न रहते थे। जोहार क्षेत्र में मौसमी स्थानान्तरण का विवरण तालिका 2.18 से स्पष्ट है।

तालिका 2.18

जोहार क्षेत्र (मुनस्यारी तहसील) में मौसमी स्थानान्तरण

क्रम संख्या	मूल निवास	मध्यवर्ती प्रवास	शीतकालीन प्रवास	उपजाति
1.	मिलम	जलथ जैती, तिकसैन, सरमोली	क्वीटी, तेजम, लाछुली, भनार कोट, रीठाबगड, डोटिला, बोना	रावत
2.	मिलम	दरकोट	टिमटिया, कनौली	धर्मसक्तू
3.	मिलम	दरकोट, नानासेन	भैंसखाल, भैंसकोट, रसियाबग़ड चिलकिया	पांगती
4.	मिलम	दरकोट	चिलकिया	सयाना
5.	मिलम	नानासेन	धन्यार	निखुर्पा
6.	मिलम	शंखधूरा	ढोलढूंगा	नित्वाल
7.	बिल्जू	तल्ला डम्मर, मल्ला घोडपाटा	तोडा थल	बिलज्वाल
8.	बुर्फू	मल्ला डम्मर, राँथी	भकुन्डा,बमोरी झलोरी मवानी दवानी, पतेत	जंगपांगी
9.	बुर्फू	दरांती	बसोरा, कुलिया, पमतोड़ी	बुर्फाल
10.	टोला	सांई,	तल्ला भैंस कोट	टोलिया
11.	सुमदू	सांई, लीलम	तल्ला भैंस कोट	सुमत्याल
12.	खेलांच	सेला	–	खिनच्याल

BHOTIA VALLEYS
SETTLEMENT, TRANSHUMANCE & TRADE
80° E
15'
30'
45'
81°E
45'
30'
15'
30°
45'
30' N
T I B E T (C H I N A)
C H A M O L I
B A G E S H W A R
N E P A L
N
BALCHA DHURA
KEOGAD
LAPTHAL
GRITHI RIVER
GRITHI
TOPIDUNGA
KUNGRI BINGRI
UNTADHURA
DUNG
GUNKHA R.
MILAM
PANCHHU
GANGHAR
BILJU
BURPHU
MARTOLI
TOLA
RALAM
RALAM
SIPU
MARCHA
DHARMA GANGA
LISSAR RIVER
DARMA PASS
LAMPIYA DHURA
MANGSYA DHURA
SINLA P
KUTHIYANGTI RIVER
KUTI
TO KAILAS MANSAROVAR
NABIDHANG
TAKLAKOT
LIPULEKH PASS
KALAPANI
TIDANG
PEDANG
DANTU
DUGTU
BAUN
DHAULI
BALING
NAGLING
NIHAL
NABI
GUNJI
RONGKONG
NAPALCHU
GARBYANG
BUNDI
MALPA
LILAM
BUIN
KUIRIO
KULTHAM
NAMIK
RIVER
GAILA
MUNSYARI
MADKOT
GOLPHA
SHELA
RIVER
SOBLA
DAR
SUMDUM
GIRGAON
SAMKOT
SIRTOLA
KHET
PANGU
JIBTI
SOSA
TAWAGHAT
TEJAM
JUMA
NACHNI
KUNIYA
BHAMI GAON
BARAM
DHARCHULA
THAL
BALWAKOT
DIDIHAT
MIRTHI
ASKOT
JAULJIBI
INDEX
SUMMER VILLAGE
WINTER VILLAGE
CAMPING
ANNUAL FAIR
GERERAL ASCENT (JUNE)
GENERAL DESCENT (OCTOBER)
TRADERS TO TIBET (JUNE-AUG)
RETURN FROM TIBET (AUG-SEPT)
RIVER VALLEYS
PASS
5 0 5 10
KM KM

Fig. 18

13.	पाछू	तल्ला घोडपाटा	टुनेती, धरमधर	पछप्याल
14.	गनधर	तल्ला धोडपाटा	थाला	गन धरिया
15.	मापा	मपवाल वाडा	कोलिया	मप्याल
16.	मरतोली	सुरिंग, घोडपाटा	बला, भनारीगांव, च्यूरिया धार फर्साली, तिमला वगड़ आमथल	मरतोलिया
17.	रिलकोट	धापा	-	रिलकोटिया
18.	लास्पा	पोलू	-	ल्हसप्वाल
19.	लास्पा	धापा	-	धाकल

उक्त तालिकाओं के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि दारमा क्षेत्र की व्याँस, मल्ला दारमा एवं तल्ला दारमा पट्टियों में आज भी मौसमी स्थानान्तरण पूर्ववत प्रचलित है जबकि पट्टी चौदाँस मे भोटिया लोगों के स्थाई आवास है। जोहार क्षेत्र की मल्ला जोहार पट्टी के चौदह मूल गाँवों में मौसमी स्थानान्तरण पूर्ववत होता आ रहा है (चित्र-18)

संदर्भ

अमर उजाला, समाचार पत्र : नैनीताल संस्करण, 11 अप्रैल 2002, 6अक्टूबर 2004 एवं 11 दिसम्बर 2004

क्लार्क, जे० आई० (1966) : पापुलेसन ज्योग्राफी, पृष्ठ 88

खर्कवाल, एस० सी० एवं नित्यानन्द (1971) : यू० पी० हिमालय, इण्डिया : ए रीजनल ज्योग्राफी, सम्पादक आर०एल० सिंह, एन०जी०एस०आई०, पृष्ठ 470

चांदना, आर० सी० एवं सिधू, एम०एस० (1980) : इन्ट्रोडक्सन टु पापुलेशन जियोग्राफी, पृष्ठ–1–10

जोशी, एस०सी० एवं अन्य (1983) : कुमाऊँ हिमालय, पृष्ठ 115

ट्रिवार्था, जी०टी० (1973) : ए केस आफ पापुलेशन ज्योग्राफी, एनाल्स आफ द एसोशियेसन आफ द अमेरिकन ज्योग्राफर्स, खण्ड XL III संस्था–दो, पृष्ठ–83

ढकरियाल, डूँगरसिंह 'हिमरज' (2004): हिमालयी शौका साँस्कृतिक धरोहर भाग–एक, पृष्ठ–87

तिवारी, रमेशचन्द्र (1977) : हिमानी सीमान्त के प्रकृति पुत्र , कुमाऊँनी संस्कृति, सम्पादक बटरोही, पृष्ठ–255

दैनिक जागरण, समाचार पत्र : नैनीताल संस्करण, 27 अक्टूबर 2004

पाँगती, शेरसिंह (1992) : मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति : जोहार के शौका, पृष्ठ–17

बेसिक शिक्षा साँख्यकी पुस्तिका (2005): सर्वशिक्षा अभियान, देहरादून, उत्तरांचल, मार्च पृष्ठ 15

बोस, एस०सी० (1960) : नोमेडिज्म इन माउण्टेन वैली आफ उत्तरांचल एण्ड कुमाऊँ जियोग्राफिकल रिव्यू आफ इण्डिया अ खण्ड 22, भाग 2; पृष्ठ–3

रायपा, रतनसिंह (1974) : शौका सीमावर्ती जनजाति, पृष्ठ–153–158

स्मिथ, टी०एल० (1948) : पापुलेशन एनालिसिस, पृष्ठ–164

साँख्यकीय पत्रिका (2001) : जनपद पिथौरागढ़

साँकृत्यायन, राहुल (1958) : कुमाऊँ, पृष्ठ–190

सेन्सस आफ इण्डिया : ज़िला पिथौरागढ़ जनगणना वर्ष 1971, 1981,1991 एवं 2001

अध्याय तृतीय

भोटिया जनजाति के अधिवास एवं भवन प्रतिरूप

शारीरिक अस्तित्व बनाये रखने हेतु मानव के लिए तीन जैविक आवश्यकताओं भोजन, वस्त्र और मकान की अनिवार्यता होती है। मानवीय बस्तियों के अन्तर्गत मानव निवास के गृह, मकान, आश्रय, एवं भवन, आदि सम्मिलित होते हैं। मानव अधिवास अधिकांशतः केन्द्रित रूप से अपेक्षाकृत किसी समतल स्थान पर स्थापित किये जाते हैं, जिनका मुख्य प्रयोजन सामुदायिक जीवन होता है। पर्वतीय क्षेत्रों में अधिवास निर्माण हेतु सीमित समतल क्षेत्र उपलब्ध होते हैं और साथ ही एकान्त क्षेत्रों में पर्यावरण की नीरसता एवं अज्ञात आशंकाओं से भी मनुष्य सामूहिक रूप से रहना उपयुक्त समझता है। इन क्षेत्रों में मानव अधिवासों का वितरण प्राकृतिक पर्यावरण एवं आर्थिक आवश्यकताओं दोनों से ही समान रूप से सम्बन्ध रखता है।

डा० शरदचन्द्र जोशी (1977, 108) के अनुसार भोटिया लोग सदैव दो प्रकार के स्थाई आवास बनातें हैं- प्रथम शीतकालीन आवास निचली घाटियों में और द्वितीय ग्रीष्मकालीन आवास उत्तरी सीमावर्ती क्षेत्रों के उच्च पर्वतीय भागों में। निचले स्थानों में शीतकालीन अधिवासों की स्थिति जलवायु की अनुकूलता एवं कुमाऊँ व भाबर के मैदानी भागों से व्यापार सम्पर्क बनाने की दृष्टि से उपयुक्त होती है जबकि ग्रीष्मकालीन अधिवास तिब्बत से व्यापार एवं बुग्याल चारागाहों का लाभ लेने की दृष्टि से अनुकूल स्थिति में निर्मित किये जाते हैं।

ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों की संख्या

भोटिया जनजाति क्षेत्र मुनस्यारी एवं धारचूला तहसील/विकास खण्ड क्षेत्रों में कुल अधिवासों की संख्या 147 है, जिनमें ग्रामीण अधिवासों की संख्या 146 एवं नगरीय अधिवासों की संख्या मात्र एक है। मुनस्यारी तहसील के सम्पूर्ण 87 ग्राम ग्रामीण अधिवास हैं जबकि धारचूला तहसील के कुल 60 ग्रामों में से 59 ग्रामीण अधिवास एवं मात्र एक नगरीय अधिवास है। इन दोनों क्षेत्रों के ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों की संख्या तालिका 3.1 में दी गई हैं।

तालिका 3.1

भोटिया जनजाति के ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों की संख्या (2001)

क्रम सं0	तहसील/विकास खण्ड का नाम	न्याय पंचायत का नाम	ग्रामीण अधिवासों की संख्या	नगरीय अधिवासों की संख्या
1.	मुनस्यारी	1.लीलम	19	--
		2.सिर्तोला	06	
		3.मदकोट	07	
		4.दरकोट	13	
		5.सेविला	25	--
		6.मडलकिया	04	
		7.क्वीटी	05	--
		8.नाचनी	06	--
		9.बांसबगड़	02	--
	योग	9	87	--
2.	धारचूला	1.दुग्तू	12	
		2.गुंजी	07	
		3.सोसा	16	--
		4.खेत	12	--
		5.बरम	04	--
		6(अ) धारचूला देहात	08	--
		(ब) धारचूला कैण्टोनमेन्ट एवं नगर पालिका	-	01
	योग	6	59	01
	कुल योग	15	146	01

अधिवासों की स्थिति एवं उनका वितरण

मानव अधिवासों की स्थिति, आकार प्रतिरूप और कार्यो का निर्धारण पारिस्थितिक कारकों के द्वारा होता है। एस0डी0 कौशिक (1959,2) के अनुसार किसी क्षेत्र के अधिवासों के वितरण की

प्रवृत्ति, मकानों की परस्पर दूरी, अधिवासों के स्थानिक प्रतिरूप, वास्तुशिल्प की शै
तथा बस्ती की ग्रामीण एवं नगरीय व्यवस्था का निर्धारण उस क्षेत्र के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक प
के जटिल प्रभावों का प्रतिफल होता है। इसके निर्धारण में भौतिक परिस्थिति, जनसंख्या और उसकी संरचना, प्रौद्योगिकी की अवस्था, दूसरे प्रदेशों से सांस्कृतिक सम्पर्क की मात्रा और प्रकार तथा पारिस्थितिक अनुक्रम भी क्रियाशील रहते हैं।

मानवीय बस्तियों की स्थिति, आकार एवं विन्यास आदि पर निम्नलिखित कारकों का प्रभाव पड़ता है।

1. **प्राकृतिक कारक** :- (1) जलवायु (2) भूमि की बनावट (3) ढाल की दिशा (4) सूर्य का प्रकाश (5) जलपूर्ति (6) मिट्टियों की उर्वरता (7) प्राकृतिक वनस्पति इत्यादि।

2. **आर्थिक कारक** :- जीविका निर्वाह के लिए अपनाये गये आर्थिक साधनों तथा व्यवसायों के अनुसार गांवों या नगरों की स्थिति, आकार तथा मार्गो और मकान की रचना होती है।

3. **सामाजिक कारक** :- गाँव के सामूहिक जीवन की व्यवस्था का ढंग, सामाजिक, रीतिरिवाज, प्रथायें और परम्पराएं।

4. **सांस्कृतिक कारक** :- धार्मिक विश्वास, शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में उन्नति का अवसर।

5. **राजनैतिक कारक** :- शासन व्यवस्था।

किसी बस्ती को बसाते समय सबसे प्रमुख विचार उपयुक्त जलवायु, जलपूर्ति, भूमि की बनावट, सूर्य का प्रकाश और मिट्टी की उर्वरता इत्यादि तत्वों पर किया जाता है। एस०सी० खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971, 459) के अनुसार हिमालय क्षेत्र (कुमाऊँ हिमालय) में अधिवासों के निर्माण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थितियाँ नदी घाटियाँ, सीढीदार ढाल, पर्वतीय कूट और स्पर (पर्वत शाखाएँ) के मध्यम ढाल वाले भाग होते हैं। इन विभिन्न भू-भागों में अवस्थित गाँव भू-स्खलन एवं हिमखण्डों के स्खलन के भय से मुक्त रहते हैं। पर्वतों के ऊपर या नीचे स्थित सीढ़ीदार मैदानों से युक्त स्पर, ग्रामीण वसाव के लिए सामान्यतया उपयुक्त होते हैं। वास्तव में पर्वतीय क्षेत्रों में समतल मैदान नदियों की तलहटियों से पर्वत कूटों तक विस्तृत होते हैं और इनके मध्यवर्ती भागों में स्थित बस्तियों से कृषक लोगों को अपने खेतों की देखभाल करने में विशेष सुविधा रहती है। यहाँ के अधिवास प्रायः किसी सदावाही जलस्रोत या जलधारा के समीप स्थित होते हैं। मध्यवर्ती ढालों की जलवायु पर्वतीय कूटों के ऊपरी भाग की तरह ठण्डी एवं नदियों की तलहटी की तरह गरम नही होती है फिर भी नदी घाटियों की तलहटियाँ

प्रवृत्ति, मकानों की परस्पर दूरी, अधिवासों के स्थानिक प्रतिरूप, वास्तुशिल्प की शैली, निर्माण सामग्री तथा बस्ती की ग्रामीण एवं नगरीय व्यवस्था का निर्धारण उस क्षेत्र के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के जटिल प्रभावों का प्रतिफल होता है। इसके निर्धारण में भौतिक परिस्थिति, जनसंख्या और उसकी संरचना, प्रौद्योगिकी की अवस्था, दूसरे प्रदेशों से सांस्कृतिक सम्पर्क की मात्रा और प्रकार तथा पारिस्थितिक अनुक्रम भी क्रियाशील रहते हैं।

मानवीय बस्तियों की स्थिति, आकार एवं विन्यास आदि पर निम्नलिखित कारकों का प्रभाव पड़ता है।

1. **प्राकृतिक कारक** :- (1) जलवायु (2) भूमि की बनावट (3) ढाल की दिशा (4) सूर्य का प्रकाश (5) जलपूर्ति (6) मिट्टियों की उर्वरता (7) प्राकृतिक वनस्पति इत्यादि।

2. **आर्थिक कारक** :- जीविका निर्वाह के लिए अपनाये गये आर्थिक साधनों तथा व्यवसायों के अनुसार गांवों या नगरों की स्थिति, आकार तथा मार्गो और मकान की रचना होती है।

3. **सामाजिक कारक** :- गाँव के सामूहिक जीवन की व्यवस्था का ढंग, सामाजिक, रीतिरिवाज, प्रथायें और परम्पराएं।

4. **सांस्कृतिक कारक** :- धार्मिक विश्वास, शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में उन्नति का अवसर।

5. **राजनैतिक कारक** :- शासन व्यवस्था।

किसी बस्ती को बसाते समय सबसे प्रमुख विचार उपयुक्त जलवायु, जलपूर्ति, भूमि की बनावट, सूर्य का प्रकाश और मिट्टी की उर्वरता इत्यादि तत्वों पर किया जाता है। एस0सी0 खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971, 459) के अनुसार हिमालय क्षेत्र (कुमाऊँ हिमालय) में अधिवासों के निर्माण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थितियाँ नदी घाटियाँ, सीढीदार ढाल, पर्वतीय कूट और स्पर (पर्वत शाखाएँ) के मध्यम ढाल वाले भाग होते हैं। इन विभिन्न भू-भागों में अवस्थित गाँव भू-स्खलन एवं हिमखण्डों के स्खलन के भय से मुक्त रहते हैं। पर्वतों के ऊपर या नीचे स्थित सीढ़ीदार मैदानों से युक्त स्पर, ग्रामीण वसाव के लिए सामान्यतया उपयुक्त होते हैं। वास्तव में पर्वतीय क्षेत्रों में समतल मैदान नदियों की तलहटियों से पर्वत कूटों तक विस्तृत होते हैं और इनके मध्यवर्ती भागों में स्थित बस्तियों से कृषक लोगों को अपने खेतों की देखभाल करने में विशेष सुविधा रहती है। यहाँ के अधिवास प्रायः किसी सदावाही जलस्रोत या जलधारा के समीप स्थित होते हैं। मध्यवर्ती ढालों की जलवायु पर्वतीय कूटों के ऊपरी भाग की तरह ठण्डी एवं नदियों की तलहटी की तरह गरम नही होती है फिर भी नदी घाटियों की तलहटियाँ

अपनी अन्य सुविधाओं के कारण अधिक संख्या में मानव बसाव को प्रभावित करती हैं।

पिथौरागढ़ जनपद के भोटिया जनजाति क्षेत्र के सम्पूर्ण ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों का निर्माण उपर्युक्त भौगोलिक दशाओं को ध्यान में रखकर किया गया है। भोटिया लोगों ने अपने अधिवासों का निर्माण दो अलग-अलग क्षेत्रों में दो प्रमुख बातों को ध्यान में रखकर किया है। प्रथम ऊँचें भागों में ग्रीष्मकालीन अधिवासों का निर्माण, तिब्बत के समीपस्थ भाग में स्थित विभिन्न गिरिद्वारों से व्यापार करने के उद्देश्य से किया गया है और दूसरे निम्न घाटियों में शीतकालीन अधिवासों का निर्माण कुमाऊँ के विभिन्न भागों में तिब्बत व्यापार से आयातित वस्तुओं के क्रय-विक्रय हेतु किया गया है। ग्रीष्मकालीन आवास का उपयोग औसतन मार्च से सितम्बर तक किया जाता है, जब परिवार के कुछ पुरुष वर्ग के लोग इन भागों के समीपस्थ स्थित मार्गो एवं गिरिद्वारों के माध्यम से तिब्बत व्यापार के लिए जाते हैं और उसी समय बुग्याल चारागाहों की प्रचुर घास का उपयोग पशुचारण हेतु करते है। ये लोग निचली घाटियों में सितम्बर या अक्टूबर माह में उच्च भागों में हिमपात होने से शीताधिक्य के कारण शीत ऋतु में प्रवास करते हैं और पुनः परिवार के पुरुष वर्ग के लोग इस अवधि का उपयोग कुमाऊँ एवं उत्तरी भारत के नगरीय केन्द्रों में व्यापारिक सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से करते हैं। इसी समय बागेश्वर, थल एवं जौलजीवी में व्यापारिक मेले भी आयोजित होते हैं, जिसमें अधिकांश भागीदारी भोटिया व्यापारियों की होती है। इस प्रकार से ये अपने ग्रीष्म एवं शीतकालीन आवासों का उपयोग प्रायः व्यापारिक गतिविधियों के उद्देश्य से ही करते हैं और इनके अधिसंख्य पारिवारिक व्यक्ति कृषि कार्य में संलग्न रहते है (चित्र-18)।

भोटिया जनजाति क्षेत्र को दो तहसील/विकास खण्ड क्षेत्रों, एवं 15 न्याय पंचायत क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। इन 15 न्याय पंचायत क्षेत्र में कुल 146 ग्रामीण अधिवास एवं एकमात्र धारचूला नगरीय अधिवास है।

अधिवासों का आकार एवं प्रकार

एस0डी0 कौशिक (1976 ,339) के अनुसार मानवीय बस्तियाँ चार प्रकार की होती हैं। इन प्रकारों का निर्धारण किसी बस्ती में मकानों या आश्रयों या झोपड़ियों आदि की पारस्परिक दूरी के आधार पर किया जाता है।

1. प्रकीर्ण या बिखरी हुई या एकाकी बस्तियाँ।
2. सघन, पुन्जित, एकत्रित या न्यष्टित बस्तियाँ।

3. संयुक्त बस्तियाँ।

4. अपखण्डित बस्तियाँ।

एस0सी0 खर्कवाल एवं नित्यानन्द (1971, 459) के अनुसार भोटिया जनजाति क्षेत्र में दो प्रकार के ग्रामीण अधिवास पाये जाते हैं- (1) एकत्रित (**agglomerated**) या न्यष्टित (**nucleated**) तथा (2) प्रकीर्ण (dispersed) या अत्यधिक दूरी में बिखरे हुए। वास्तव में इस क्षेत्र में सघन बस्तियों से आशय एक ही समुदाय के मानव समूहों के एकत्रीकरण से है। इन बस्तियों में एक या अधिक समुदायों के समूह भी हो सकते हैं। प्रकीर्ण बस्तियाँ न्यूनाधिक आकार में एकाकी कृषि गृह होते हैं, जो असमान पर्वतीय एवं वनीय धरातलीय विशेषताओं वाले भू भागों में स्थित होती हैं। इस प्रकार के अधिवासों में, किसी एक परिवार द्वारा अपनी कृषि योग्य भूमि में कंटीली झाडियों की बाड़ या पत्थरों की दीवाल लगाकर उसे अन्य परिवार के कृषि क्षेत्रों से पृथक् कर दिया जाता है।

रघुबीर चन्द (1981, 403) के अनुसार कुमाऊँ हिमालय में पाया जाने वाला ग्रामीण अधिवासों का सामान्य आकार मुख्यतः दो प्रकार का होता है- वृहद हिमालय में गुम्फित (Clustered) अधिवास मिलते है। प्रत्येक गाँव में एक ही अधिवास पुंज (Nucleus) होता है। मध्य तथा शिवालिक हिमालय में गाँव के केन्द्रीय भाग के अतिरिक्त आठ दस घरों के छोटे-छोटे समूह बिखरे होते हैं, इन्हे पड़ोस कहते हैं। इन बस्तियों का नामकरण उनमें निवास कर रही जातियों के नाम से ही होता है। पिथौरागढ़ के भोटिया जनजाति क्षेत्र में उक्त दोनों प्रकार के ग्रामीण अधिवास पाये जाते हैं।

एस0सी0बोस0 (1972,83-84) के अनुसार पिथौरागढ के भोटिया जनजाति क्षेत्रों में अधिवासों के दो समूह पाये जाते हैं। प्रथम निम्न उँचाइयों या घाटियों में जिन्हें तल्ला गाँव (Talla Village) एवं दूसरे अधिक ऊँचाइयों या पर्वतीय टीलों में जिन्हें मल्ला गाँव (Malla Village) कहा जाता है। तल्ला गाँव का उपयोग शीत ऋतु में एवं मल्ला गॉव का उपयोग ग्रीष्म ऋतु में किया जाता है। भोटिया लोग प्राचीन काल से ही कुशल व्यापारी एवं पशुपालक रहें हैं। अतः इसी बात को ध्यान में रखकर उन्होनें अपने अधिवासों का निर्माण दो भिन्न-भिन्न स्थानों में करना उपयुक्त समझा। इनके ऊँचे भागों में स्थित मल्ला गाँव तिब्बत से संलग्न विभिन्न गिरिद्वारों के समीप पड़ते हैं अतः ये तिब्बत व्यापार हेतु सर्वथा उपयुक्त होते हैं। इन मल्ला गॉवों के समीप हरी एवं मुलायम घासों के बुग्याल चारागाहों की स्थित के कारण ये अधिवास पशुपालन हेतु उपयुक्त होते हैं। इस प्रकार मल्ला गाँवों का उपयोग भोटिया लोग ग्रीष्म ऋतु में तिब्बत व्यापार एवं बुग्याल चारागाहों का लाभ लेने हेतु करते हैं। इनके निम्न ऊँचाइयों या

निम्न घाटियों में स्थित तल्ला गाँव कुमाऊँ के मध्य भाग में पड़ते हैं। अतः इन गाँवों का उपयोग कठोर शीत से बचने एवं तिब्बत व्यापार से लाई गई वस्तुओं के विक्रय हेतु किया जाता है। अतः भोटिया लोगों का दो भिन्न-भिन्न स्थानों में अपने दो पृथक्-पृथक् आवास निर्मित करने का मूल उद्देश्य व्यापारिक गतिविधियों का सुचारू रूप से संचालन करना है।

अधिवासों की संरचना

कुमाऊँ हिमालय क्षेत्र में अधिवासों की संरचना विशिष्ट प्रकार की होती है। यहाँ के भवनों की आकृति, आकार एवं स्थान के निर्धारण में जलवायु एवं धरातलीय दशाओं की निर्णायक भूमिका होती है। भवनों के कार्य एवं उपयोग विभिन्न आर्थिक स्तर के मानव समूह एवं वातावरण के अन्तर्सम्बन्ध की असमानता एवं विशिष्टता को सूचित करते हैं। यद्यपि भवनों के आन्तरिक विन्यास एवं विशेषताओं के निर्धारण में आर्थिक तत्वों की विशेष सहभागिता होती है तथापि भवनों की संरचना की सम्पूर्ण व्यवस्था इन्ही तत्वों पर ही पूर्णतः निर्भर नही है। वास्तव में यहाँ के भवन विन्यास की सम्पूर्ण व्यवस्था प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही तत्वों पर आधारित है।

इस क्षेत्र के अधिवासों का निर्माण प्राकृतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखकर किया गया है। इनकी सम्पूर्ण संरचना में स्थान संगठन एवं कार्यात्मक उपयोग को विशेष आधार माना गया है। इन अधिवासों की संरचना एवं कार्यात्मक उपयोग पर दृष्टिपात करने पर तीन प्रमुख तत्व उभर कर सामने आते हैं। प्रथम- भवन का कार्यात्मक उपयोग एवं कार्यात्मक आवश्यकता, द्वितीय- भवन का क्षैतिज एवं लम्बवत विन्यास एवं तृतीय आंगन की आवश्यकता एवं उपयोगिता।

अनिल के0सिंह एवं अन्य (1984, 468-472) के अनुसार इस क्षेत्र की किसी ग्रामीण बस्ती में पहुँचते ही प्रथम दृष्टि में किसी मकान का प्रांगण (आंगन) ही सर्वप्रथम दिखाई पड़ता है। आंगन प्रायः मकान के बाहर सामने ही होता है। आंगन गृह स्वामी के आर्थिक स्थिति के अनुरूप विभिन्न आकार के होते हैं। सामान्यतः आंगन आयताकार आकृति में मकान के तीन ओर लगभग 60से0मी0 ऊँची पत्थर की दीवाल से घिरा होता है। आंगन के एक कोने में ऊखल या उकाव की स्थिति होती है जिसकी प्रमुख घरेलू उपयोगिता होती है।

आंगन से प्रथम दृष्ट्या में मकान में एक विशिष्ट संरचना दिखाई देती है, जिसे स्थानीय भाषा

में गोठ कहते हैं। गोठ मकान का आधार तल होता है जो मुख्यतः पशुशाला होती है। गोठ की आंतरिक संरचना गृहस्वामी के आर्थिक स्तर पर निर्भर होती है। निम्न आर्थिक वर्ग के गृहस्वामी के गोठ में दो कमरे होते हैं। गोठ का पश्च भाग मल्ला गोठ एवं गोठ का अग्रभाग तल्ला गोठ कहलाता है। मध्यम वर्गीय लोगों का गोठ विस्तृत आकार का होता है। जिसमें विभिन्न उपयोग के चार कमरे होते हैं। अग्रभाग के दो कमरे सामान्यतः तल्ला गोठ एवं गोठ मल्ला कहलाते हैं जिनका उपयोग प्रायः कृषि उपकरणों के रखने एवं कभी-कभी निवास के उद्देश्य से भी होता है। गोठ के शेष दो कमरों को वल्ला भीतर गोठ एवं पल्ला भीतर गोठ के नाम से सम्बोधित किया जाता है जिनका प्रायः उपयोग पशुओं को रखने एवं गोदाम के रूप होता है। वल्ला से आशय बायाँ एवं पल्ला से तात्पर्य दायाँ होता है। सामान्यतः जिस भाग का उपयोग बारम्बार होता है उसे वल्ला कहते हैं। गोठ की ऊंचाई 1.5 मीटर से 2.4 मीटर के मध्य होती है। गोठ में खिड़कियों का आकार छोटा एवं संख्या कम होती है।

मकान का प्रथम तल विभिन्न कक्षों में विभक्त होता है जो सामान्यतः आधार तल (गोठ) की संरचना का ही अनुकरण करता है। निम्न आर्थिक वर्ग के लोगों के मकान के प्रथम तल में प्रायः दो छोटे कक्ष (लगभग गोठ के कक्षों के समान) होते हैं। पश्च भाग के कमरे को 'भीतर खण्ड' एवं अग्रभाग के कमरे को 'चाख' कहते हैं। मध्यम आर्थिक वर्गीय लोगों के प्रथम तल के कमरों में कुछ विशेष सुविधायें होती हैं। इनके प्रथम तल में प्रायः चार कक्ष होते हैं। स्थानीय बोली में पश्च भाग के कक्षों को 'वल्ला भीतर खण्ड', 'पल्ला भीतर खण्ड' एवं अग्रभाग के दो कक्षों को 'वल्ला चाख', 'पल्ला चाख' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। प्रथम तल के कमरे एक दूसरे से भली भाँति संलग्न होते हैं। पश्च भाग के कक्षों की खिडकियाँ संकीर्ण एवं अग्रभाग के कक्षों की कुछ विस्तृत होती हैं।

अधिवासों की कार्यात्मक व्यवस्था

यहाँ के अधिवासों के विभिन्न स्थानों का विभिन्न कार्यो के लिए उपयोग न केवल परम्परागत विरासत एवं धार्मिक मूल्यों के संरक्षण तथा सामाजिक स्पष्टता का द्योतक है बल्कि इनके उपयोग में कुछ वैज्ञानिक कारण भी निहित हैं। भारत के अन्य प्रदेशों में आंगन भवन की आंतरिक संरचना होती है जबकि इस क्षेत्र में आंगन भवन के बाहर होता है। यहाँ आगन का प्रमुख उपयोग सूर्यातप से सम्बन्धित है इस स्थान की महत्ता एवं आवश्यकता फसल, लकड़ी, चारा एवं ईधन को सुखाने एवं मनुष्यों एवं पशुओं के घमौनी लेने हेतु विशेष रूप से है। आंगन का सामाजिक महत्व प्रातः एवं सांय काल परिवार एवं ग्राम के सदस्यों के एकत्र होने से है। इस भाग की अन्य महत्ता यह है कि जब किसी परिवार

ANATOMY AND FUNTIONAL PROFILE OF RURAL DWELLINGS IN PITHORAGARH DISTRICT
HAY-RICK (LUTA)
FUEL WOOD STOCK
A LOWER ECONOMIC GROUP DWELLING
C
MALLA GOTH
TALLA GOTH
TALLA GOTH
ANGAN
C+B+WO+M
UKHAL
GROUND FLOOR (GOTH)
SL+St
K
BHITAR KHAND
Wd
CHAKH
S+SI+M
FIRST FLOOR
LOCATION OF PITHORAGARH IN INDIA
0 400
INDEX
STAIRS
BUILDING WALL
ALMIRAH
DOOR
FENESTRA
PLAN OF THE DWELLING
A MIDDLE ECONIMIC GROUP DWELLINGS
F
BHITAR GOTH (WALLA)
BHITAR GOTH (PALLA)
Cr + AE q+M
GOTH WALLA
AEq+S+M
GOTH TALLA
ANGAN
D+B+WA+M
UKHAL
GROUND FLOOR (GOTH)
W+St+SL
BHITAR KHAND (WALLA)
St
BHITAR KHAND (PALLA)
GOTH WALLA
DR
GOTH TALLA
S+SL+M
FIRST FLOOR
SPACE UTILIZATION
Aeq. AGRICULTURAL EQUIPMENT
B BASKING
C CATTLE
Cr CROP
D DRYING
DR DRAWING ROOM
K KITCHEN
M MISCELLANEOUS
S SEATING
SL SLEEPING
St STORE
W WORSHIP
Wd WASHING (UTENSILS ETC)
Source- Anatomy and funtional organization of rural dwelling in Kumaon (1984)

Fig. 19

के सदस्य का स्वर्गवास होता है तो मृतक के शरीर को आंगन में रखकर परिवार के लोग एवं सम्वन्धी ईश्वर से उस दिवंगत आत्मा की शान्ति हेतु विशेष प्रार्थना करते हैं। ओखली की स्थिति प्रायः आंगन में ही होती है, जिसका महत्व प्रतिदिन परिवार के भोजन व्यवस्था हेतु खाद्यान्नों की सफाई करने से है।

सामान्तया इस क्षेत्र के मकानों में पृथक् पशुशाला नही होती है। मनुष्य एवं पशु एक ही मकान में एक ही छत के नीचे साथ-साथ रहते हैं। आधार तल (गोठ) का उपयोग विशेपकर पशुओं के उपयोग हेतु होता है। इस क्षेत्र के मकानों में निवास स्थान के साथ-साथ पशुशाला के संलग्न होने के प्रमुख लाभ वन्य जन्तुओं से पशुओं की सुरक्षा एवं प्रथम तल के तापमान में समायोजन है। इस क्षेत्र में कन्यादान संस्कार गोठ में ही सम्पन्न होता है। गोठ का अन्य उपयोग बच्चा जनने एवं मासिक धर्म के दौरान (अपवित्र अवस्था) निवास स्थान के रूप में भी होता है। जिसके तार्किक कारण घर की शुद्धता एवं आरोग्यता हैं।

मकान के प्रथम तल का कार्यात्मक उपयोग पारिवारिक गतिविधियों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसमें प्रायः चार कक्ष होते हैं जो दो प्रमुख भागों में विभक्त होते हैं। चाख भाग पुरुषों के लिए एवं भीतर खण्ड महिलाओं के लिए होता है। यह पृथकत्व दीर्घकालीन परम्परागत व्यवस्था एवं दूरी तथा गोपनीयता की संकल्पना को सूचित करता है। रसोई घर हमेशा प्रथम तल में ही होता हैं। प्रत्येक भवन में ईश्वर की पूजा हेतु एक पृथक् स्थान होता है जिसे स्थानीय बोली में 'देवथान' कहते हैं। यहाँ के परम्परागत ग्रामीण भवनों की छतें स्लेट से आच्छादित रहती हैं जिनका उपयोग फसल एवं ईधन को सुखाने हेतु होता है (चित्र-19)।

भवन प्रकार एवं भवनों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री

किसी क्षेत्र की ग्रामीण पारिस्थैतिकी के प्रमुख महत्वपूर्ण तत्व भवनों के आकार-प्रकार, भवनों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री तथा इससे सम्बन्धित आवासीय दशाऐं होती हैं। इस प्रकार के अध्ययन का प्रारम्भ सर्वप्रथम फ्राँस में मानव तथा वातावरण के अन्तर्सम्बन्धों को समझने हेतु एक मापक की तरह प्रयुक्त हुआ। इसके पश्चात् अधिवास भूगोल में मकानों का अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय सामग्री के रूप में सम्मिलित किया गया। ब्रून्ज (1920,74) ने मकानों को सांस्कृतिक शक्तियों एवं प्राकृतिक दशाओं की उत्पत्ति माना है। शनैः-शनैः मकान एक भौगोलिक कारक के रूप में स्थापित होकर अधिवास भूगोल का इकाई मापदण्ड बना तथा ग्रामीण आकारिकी का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रारम्भ हुआ। नीफिन (1965,

549) ने गृह को सांस्कृतिक भूदृश्य का एक महत्वपूर्ण तत्व माना है जो सांस्कृतिक सम्पदा, रीतिरिवाज, कार्मिक आवश्यकतायें तथा प्राकृतिक वातावरण की सहयोगी तथा विरोधी दोनों शक्तियों का समय एवं स्थान विशेष की सीमाओं के अन्तर्गत एक समायोजन है।

गृह निर्माण पर भौगालिक कारकों का प्रभाव

कुमाऊँ हिमालय में पाये जाने वाले ग्रामीण मकानों के प्रकार यहाँ कि प्राकृतिक परिस्थितियों के स्थानीय विभिन्नता का परिणाम हैं। इस क्षेत्र के मकानों के निर्माण व स्वरूप निर्धारण में जलवायु, भूमि की बनावट तथा ढाल की समाकृति, जल प्राप्ति की दशाएँ एवं प्राकृतिक वनस्पति इत्यादि प्राकृतिक कारकों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त मकानों की बनावट में क्षेत्रीय अन्तर, गृह निर्माण सामग्री की उपलब्धता, आर्थिक दशा, सामाजिक परम्पराओं तथा रीतिरिवाज, जाति वर्ग एवं धार्मिक विश्वास इत्यादि तत्वों के कारण भी पाया जाता है। इन सभी तत्वों में जलवायु का प्रभाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जलवायु के अन्तर्गत वर्षा की मात्रा, हिमपात, पवनों की दिशा, तापमान, सूर्यातप या छाया की दशाएं इत्यादि मकानों के निर्माण व स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बृहद हिमालय व ट्रान्स हिमालय के भोटिया जनजाति क्षेत्र में मकानों की छतें वर्षा की मात्रा एवं हिमपात को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। यहाँ की छतों में ढाल बहुत कम रखा जाता है। ट्रान्स हिमालय में सपाट छतें भी बनाई जाती है, जिनमें छत की स्लेट को मिट्टी की मोटी परत से ढक दिया जाता है, ताकि बर्फ को हटाने की सुविधा हो। साथ ही बर्फ के भार को सहने हेतु छतों में मजबूत व अधिक चौड़ी लकड़ियों का आधार दिया जाता है। बर्फीली हवाओं से बचाव के लिए खिड़कियों की संख्या कम एवं आकार बहुत छोटा बनाया जाता है। मकानों की निर्माण सामग्री में लकड़ी का उपयोग सर्वाधिक होता है। सूर्य प्रकाश की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए मकानों की दिशा प्रायः पूर्व की ओर रखी जाती है। प्रत्येक मकान के आगे खुले आंगन का निर्माण आवश्यक है, जिसका उपयोग शीत ऋतु में धूप सेंकने, फसल सुखाने तथा अन्य घरेलू उपयोगों में किया जाता है। यहाँ कठोर शीत से रक्षा हेतु भवन एक दूसरे से सटे हुए तथा समीप-समीप बनाये जाते हैं।

भवनों के निर्माण को प्रभावित करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण कारक भूमि की बनावट तथा ढाल की समाकृति है। रघुबीर चन्द एवं जी भट्टाचार्य (1984,51-57) के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद में वृहद हिमालय व ट्रान्स हिमालय में धरातल की उपयुक्तता के साथ-साथ हिम स्खलन से सुरक्षा भी आवश्यक है। अतः मकानों का निर्माण उन सुरक्षित स्थानों पर किया जाता है, जहाँ हिम स्खलन का भय न हो।

भवन निर्माण सामग्री में स्थानीय अन्तर प्रस्तुत करने वाला एक तत्व चट्टान भी है। यहाँ मकानों की दीवालें प्रायः कठोर पत्थरों की बनाई जाती हैं तथा छतों में मुलायम स्लेट पत्थर का प्रयोग किया जाता है।

प्राकृतिक वनस्पति एवं जल आपूर्ति भी मकानों के निर्माण को प्रभावित करते हैं। चीड़ वनों के समीपवर्ती क्षेत्रों में चीड़ के वृक्षों का प्रयोग छतों के निर्माण में किया जाता है। इसके साथ ही मकानों का आकार भी कुछ सीमा तक इमारती लकड़ी की उपलब्धता पर निर्भर करता है। यहाँ नदियों के सहारे रेखीय प्रतिरूप में विकसित अधिवास तथा प्राकृतिक जल स्रातों के निकट ग्रामीण अधिवासों का विकास जल आपूर्ति के प्रभाव को प्रदर्शित करता है।

गृह निर्माण सामग्री की प्राकृतिक उपलब्धता के अनुसार मकानों की वनावट में क्षेत्रीय अन्तर पाया जाता है किन्तु कुछ सांस्कृतिक क्षेत्रों में मकानों की बनावट में एकरूपता नही पायी जाती है। इस के प्रमुख कारण उन क्षेत्रों के निवासियों की आर्थिक दशा, सामाजिक परम्परायें, रीति-रिवाज जाति, वर्ग एवं धार्मिक रूढ़िवादिता है। धारचूला एवं मुनस्यारी तहसील की भोटिया जनजाति के दोनों प्रकार के आवास पक्के एवं स्थायी होते हैं। सम्पन्न भोटिया व्यापारियों के भवन वड़े आकार के एवं तिब्बती कलाकृतियों से युक्त होते हैं जबकि निम्न आय वर्ग के भोटियों के मकान छोटे होते हैं।

भवन प्रकार एवं उनका क्षेत्रीय वितरण

मकानों का वर्गीकरण आकार, बनावट, निर्माण सामग्री, स्वामित्व मकानों का घनत्व आवासीय दशायें इत्यादि कई आधारों पर किया जा सकता है। कुमाऊँ हिमालय में भवनों के निर्माण में क्षेत्रीय अन्तर उत्पन्न करने वाले मुख्य कारक भवन निर्माण सामग्री की उपलब्धता है। भवन निर्माण सामग्री के आधार पर भोटिया जनजाति के दोनों क्षेत्रों में भवनों के मुख्य प्रकार (तालिका 3.2) से प्रदर्शित हैं। ये भवन प्रकार इस क्षेत्र के दोनों तहसील/विकास खण्ड क्षेत्रों की 15 न्याय पंचायत क्षेत्रों के एक एक गाँव का यादृच्छिक प्रतिचयन करके उनकी सम्यक विवेचना के आधार पर वर्गीकृत किये गये हैं।

तालिका 3.2

भवन निर्माण सामग्री के आधार पर भवनों के प्रकार

(प्रतिशत में)

विकास खण्ड का नाम	गाँव का नाम	पत्थर की दीवारों तथा ढालू स्लेट की छतों वाले मकान	पत्थर की दीवारों तथा समतल स्लेट की छतों वाले मकान	पत्थर की दीवारों तथा घास की छतों वाले मकान	लकड़ी की दीवारों तथा घास की छतों वाले मकान	पत्थर की दीवारों तथा सीमेन्ट की समतल छतों वाले मकान	पत्थर की दीवारों तथा सीमेन्ट की समतल छतों वाले मकान	कुल मकान
		1	2	3	4	5	6	7
मुनस्यारी	मिलम	9 (42.86)	7 (33.33)	–	–	3 (14.28)	2 (9.52)	21 (100)
	तोमिक	35 (49.30)	11 (15.49)	–	–	5 (7.04)	20 (28.17)	71 (100)
	मदकोट	27 (39.71)	9 (13.24)	–	–	7 (10.29)	25 (36.76)	68 (100)
	जलथ	25 (46.43)	–	3 (5.56)	1 (1.85)	3 (5.56)	22 (40.74)	54 (100)
	मप्वालवाड़ा	13 (46.43)	3 (10.71)	1 (3.58)	–	2 (7.14)	9 (32.14)	28 (100)
	गिरगॉव	9 (39.13)	4 (17.39)	1 (4.35)	2 (8.69)	1 (4.35)	6 (26.09)	23 (100)
	तेजम	16 (34.04)	12 (25.53)	1 (2.13)	–	2 (4.26)	15 (31.91)	47 (100)
	तल्लाभैंसकोट	5 (38.46)	2 (15.38)	1 (7.69)	–	1 (7.69)	4 (30.78)	13 (100)
	खेतभराड	1 14.29	1 (14.29)	–	–	1 (14.29)	4 (57.13)	7 (100)
धारचूला	सीपू	20 (86.95)	2 (8.70)	–	–		1 (4.70)	23 (100)
	कुटी	37 (78.72)	7 (14.89)	–	–	1 (2.13)	2 (4.26)	47 (100)
	सोसा	23 (43.40)	10 (18.87)	1 (1.89)	2 (3.77)	3 (5.66)	14 (26.41)	53 (100)
	सोवला	15 (57.70)	6 (23.07)	1 (3.85)	–	1 (3.85)	3 (11.53)	26 (100)
	बरम	6 (46.16)	3 (23.08)	1 (7.69)	–	1 (7.69)	2 (15.38)	13 (100)
	गलांती	3 (50.00)	1 (16.67)	–	–		2 (33.33)	6 (100)

स्रोत- 2004 में किये गये क्षेत्र सर्वेक्षण पर आधारित।

उक्त तालिका के अनुसार इस क्षेत्र के भवन प्रकारों को निम्नलिखित छः वर्गों में बाँटा जा सकता है।

1. पत्थर की दीवारों तथा ढालू स्लेट की छतों वाले मकान

समस्त भोटिया जनजाति क्षेत्र में इस प्रकार के मकान पाये जाते हैं। इनकी दीवारें दो फुट चौड़ी पत्थर की होती हैं जो मकानों को पूर्णतः सुरक्षित रखती हैं। छतों में स्थानीय मुलायम स्लेट पत्थर का प्रयोग किया जाता है। ट्राँस हिमालय क्षेत्र में इस प्रकार के मकानों की सर्वाधिक संख्या सीपू तथा कुटी में क्रमशः 86.95% तथा 78.72% हैं।

2. पत्थर की दीवारों तथा समतल स्लेट की छतों वाले मकान

इस प्रकार के मकान महान हिमालय एवं ट्रान्स हिमालय क्षेत्र में अधिक पाये जाते हैं। इनकी संख्या मिलम में 33.33%, तेजम में 25.53% एवं वरम में 23.08% है। शीत ऋतु में बर्फ के अतिरिक्त भार को सहन करने के लिए इस प्रकार की छतों को सुदृढ आधार दिया जाता है। इन मकानों की छतें लगभग समतल होती हैं, जिनमें ढाल बहुत कम पाया जाता है। स्लेट से आच्छादित छतों में जमा बर्फ को हंटाने के लिए मिट्टी अथवा रेत बिछा दी जाती है। जिससे मकानों की छतों के टूटने का भय नही रहता है।

3. पत्थर की दीवारों तथा घास की छतों वाले मकान

ये मकान मुख्य रूप से बृहद् हिमालय क्षेत्र में पाये जाते हैं। वरम, तल्ला भैंसकोट एवं जलथ में इनकी संख्या क्रमशः 7.69%, 7.69% तथा 5.56% है।

4. लकड़ी की दीवारों तथा घास की छतों वाले मकान

ये मकान सामान्यतः निम्नवर्गीय भोटिया लोगों द्वारा बनाये जाते हैं। इनकी संख्या इस क्षेत्र में प्रायः कम देखने को मिलती है। गिरगाँव में इनकी संख्या 8.69% एवं सोसा में 3.77% है।

5. पत्थर की दीवारों तथा टीन की छतों वाले मकान

इस प्रकार के मकानों की स्थिति प्रायः ग्रामीण बाजार केन्द्रों में देखने को मिलती है। मिलम में इनकी संख्या 14.28% एवं खेत भराड़ में 14.29% है।

6. पत्थर की दीवारों तथा सीमेण्ट की समतल छतों वाले मकान

इस प्रकार के मकान समृद्ध या सरकारी सेवाओं में लगे भोटिया लोगों के होते हैं। जिनमें शहरी प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है आधुनिक समय में यहाँ पत्थरों के स्थान पर ईटों का प्रयोग अधिक होने लगा है। इस क्षेत्र के प्रायः सभी ग्रामों में इस प्रकार के मकानों का प्रचलन निरन्तर बढ रहा है।

LOCATION OF SAMPLE VILLAGES
CHAMOLI
TIBET (CHINA)
BAGESHWAR
NEPAL
DIDIHAT TAHSIL
MILAM
KUTI
SIPU
JALATH
MADKOT
MAPWAL BADA
GIRGAON
QUEETI
TOMIK
KHET BHARAD
TALLA BHAINSKOT
TEJAM
SOSA
BARAM
GALANTI
N
INDEX
SAMPLE VILLAGE
KM 5 0 5 10 KM
45′
30′
15′
30⁰
45′
30′
29⁰15′ N
80⁰ E
15′
30′
45′
81⁰E
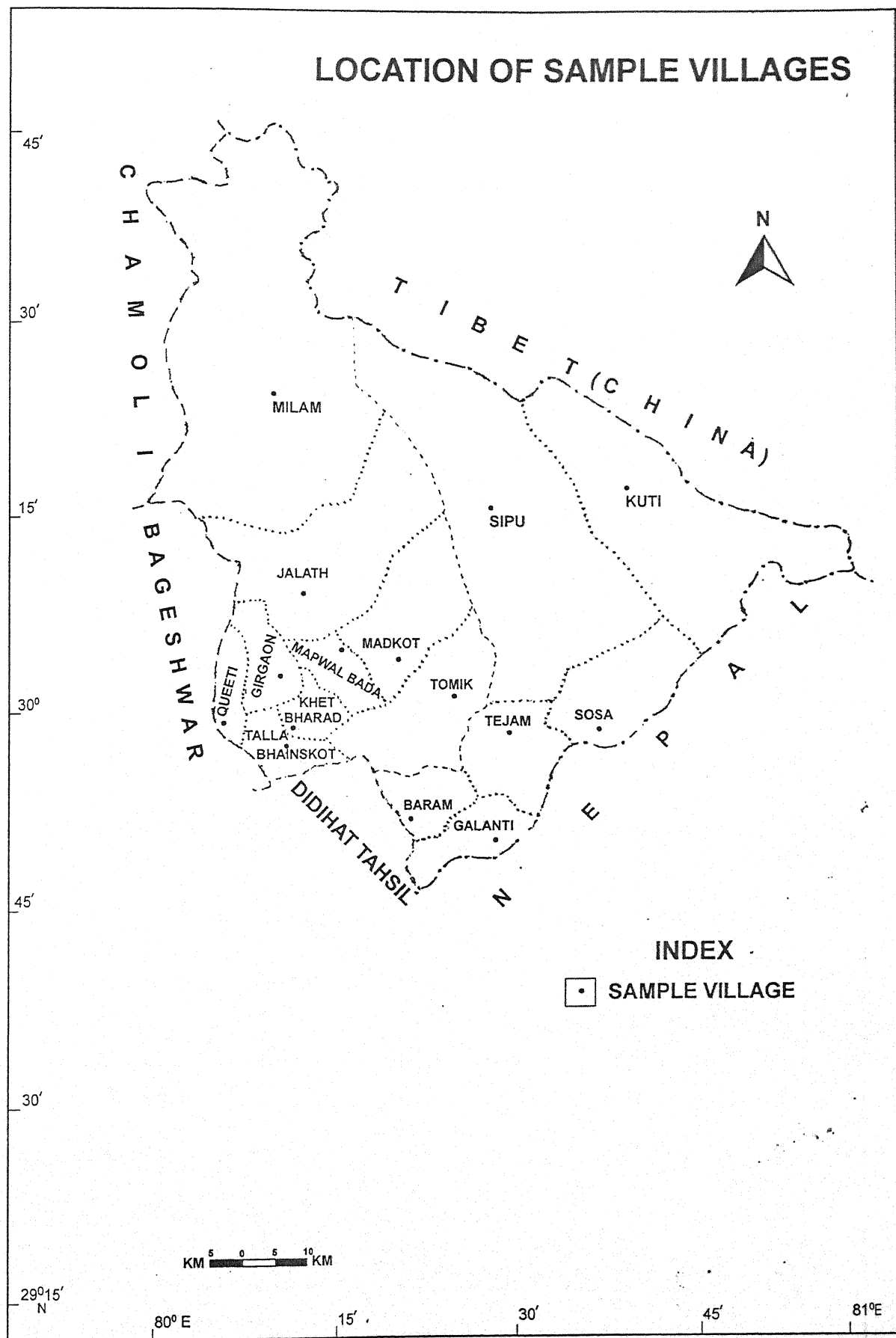
Fig. 20

चयनित ग्रामों के परिवारों के आवासीय क्षेत्रफल

परिवारों के आवासीय क्षेत्रफल को ज्ञात करने के उद्देश्य से मुनस्यारी एवं धारचूला विकास खण्ड क्षेत्रों की 15 न्याय पंचायतों से 15 ग्रामों का यादृच्छिक प्रतिचयन करके उनकी सूचनाओं को प्रश्नावली एवं साक्षात्कार विधि द्वारा संकलित किया गया है। इस अध्ययन के अन्तर्गत पन्द्रह ग्रामों के मात्र 10% अर्थात् कुल 150 परिवारों को चयनित किया गया है (चित्र-20)। प्रत्येक परिवार के मुखिया से साक्षात्कार द्वारा आंकड़ों को प्राप्त कर उन्हें सारणीबद्ध किया गया है।

भोटिया परिवारों में वर्ष में दो बार मौसमी स्थानान्तरण होता है। शीत ऋतु में निम्न धाटियों के शीतकालीन आवासों में एवं ग्रीष्म ऋतु में उच्च भागों के ग्रीष्मकालीन आवासों में। इन दशाओं में इन दोनों प्रकार के आवासों में इनकी सही जानकारी प्राप्त करना बहुत कठिन है। अतः इस कठिनाई के निवारणार्थ इन ग्रामों का दोनों ऋतुओं की समयावधि में चयन करके प्रत्येक परिवार के प्रधान सदस्य से सूचनाओं को प्राप्त किया गया है।

सामान्यतः भोटिया लोग प्राचीन समय से ही कुशल व्यापारी रहे हैं। अतः इनके आवासों की स्थिति इस क्षेत्र के अन्य लोगों की अपेक्षा बहुत अच्छी है। इनके आवास पक्के, बहुमंजिलें एवं तिब्बती कलाकृतियों से युक्त होते हैं। किन्तु प्रत्येक गाँव में सभी भोटिया लोगों का आवासीय स्तर एक समान नही है, क्योकि इनके प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक व्यवसायों में पर्याप्त अन्तर है। अतः इनके आवासीय स्तर एवं आवासीय दशाओं में भी अन्तर देखने को मिलता है। दोनों भोटिया क्षेत्रों के चयनित ग्रामों के परिवारों के आवासीय क्षेत्रफल को तालिका 3.3 से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 3.3

मुनस्यारी एवं धारचूला विकास खण्ड क्षेत्रों में भोटिया परिवारों के आवासीय क्षेत्रफल

आवासीय क्षेत्रफल (वर्ग मीटर में)	कुल परिवारों का प्रतिशत
30 से कम	10.35
30 से 45	26.21
45 से 60	16.43
60 से 75	32.56
75 व अधिक	14.45
योग	100.00

उक्त तालिका के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि सर्वेक्षित परिवारों में से 32.56 प्रतिशत परिवारों के पास 60 से 75 वर्ग मीटर आवासीय क्षेत्र उपलब्ध है। 26.21 प्रतिशत परिवारों के पास 30 से 45 वर्ग मी० आवासीय क्षेत्र पाया जाता है। जबकि मात्र 10.35 प्रतिशत परिवारों के पास 30 वर्गमीटर से कम भूमि उपलब्ध है। अधिकांश भोटिया लोगों के भवन दो या तीन मंजिलों वाले होते हैं। तथा मकान के सामने विस्तृत आंगन भी उपलब्ध रहता है। अतः इन ग्रामों में आवासीय क्षेत्रफल का प्रतिशत अधिक है। अध्ययन की सघनता के लिए परिवारों का प्रति व्यक्ति आवासीय क्षेत्रफल भी ज्ञात किया गया है जो तालिका 3.4 द्वारा प्रदर्शित है।

तालिका 3.4

प्रति व्यक्ति आवासीय क्षेत्रफल

प्रति व्यक्ति आवासीय क्षेत्रफल (वर्ग मी० में)	परिवारों का प्रतिशत
10 से कम	9.44
10 से 15	32.52
15 से 20	33.32
20 से 25	10.65
25 से 30	5.26
30 से 35	3.54
35 से 40	1.67
40 से 45	1.63
45 से 50	1.20
50 व अधिक	0.77
योग	100.00

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि भोटिया लोगों में प्रति व्यक्ति आवासीय क्षेत्रफल अधिक है। इसका प्रमुख कारण इनकी सीमित जनसंख्या एवं अधिकांश परिवारों के सदस्यों का रोजगार की प्राप्ति हेतु अन्यत्र प्रवास एवं वहीं स्थाई रूप से बस जाना है। परिवार में केवल वही लोग

रहते हैं जो कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं गृह उद्योगों में संलग्न हैं। सरकारी सेवाओं में लगे लोग प्रायः मूल गाँवों में यदा-कदा वर्ष में केवल एक बार पारिवारिक पूजा अनुष्ठानों में ही भाग लेते हैं।

आवासीय स्तर एवं आवासन दशाएँ

मकानों का आकार, कमरों की संख्या एवं उनका कार्मिक उपयोग, प्रकाश की व्यवस्था तथा अन्य स्वास्थ्य दशाओं की स्थिति के अनुसार ग्रामीण आवासीय दशाओं का अध्ययन किया जा सकता है। रघुबीर चन्द एवं अन्य (1986, 18) के अनुसार पिथौरागढ़ के विभिन्न भागों में अधिकांश मकान दो मंजिले बनाये जाते हैं। सामान्यतया दो मंजिले मकानों में ऊपरी मंजिल को सोने, खाना बनाने, फसल जमा करने एवं अन्य घरेलू उपयोग में लाया जाता है तथा निचली मंजिल का प्रयोग गौशालों (गोठ) के रूप में किया जाता है। स्थान के अभाव की पूर्ति कुछ मकानों में तीनो ओर से घिरे बरामदे के द्वारा भी की जाती है। रघुवीर चन्द (1981, 403) के अनुसार यहाँ मकानों का आकार सामान्यतः आयताकार होता है। कहीं-कहीं वर्गाकार मकान भी पाये जाते हैं। प्रत्येक ग्राम में जल आपूर्ति का मुख्य साधन प्राकृतिक जलस्रोत होते हैं, जिन्हें नौला कहा जाता है। वर्तमान समय में अधिकांश ग्रामों में पेय जल योजनाओं का विकास किया जा रहा है।

ग्रामीण आवासीय स्थिति का पूर्णतः अनुमान कमरों की संख्या के आधार पर लगाया जाता है। भोटिया लोग अत्यन्त कर्मठ एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं। अतः इनके मकान तीन मंजिलों तक तथा 2 से 10 कमरों वाले होते हैं। कमरों की संख्या के आधार पर चयनित ग्रामों के मकानों को 6 वर्गों में बांटा गया है। जिनका विवरण तालिका 3.5 से प्रदर्शित है।

तालिका 3.5
भवनों का विविध आकार क्रम के अनुसार प्रतिशत वितरण

ग्राम का नाम	मंजिल			कुल घरों की संख्या (100%)	कमरों की संख्या					
	प्रथम	द्वितीय	तृतीय		2 से कम	2-4	4-6	6-8	8-10	10 व अधिक
निलम	15.62	54.85	29.53	21	16.53	36.42	22.56	18.87	2.34	3.28
तोमिक	35.66	64.34	-	71	15.86	32.45	31.42	13.56	3.42	3.29
मदकोट	39.42	60.58	-	68	41.85	16.3	10.32	21.42	3.56	6.55
जलथ	31.45	68.55	-	54	34.75	20.32	7.63	27.42	9.88	-
मप्वालवाडा	36.75	63.25	-	28	13.46	28.51	25.62	15.84	12.56	4.01
गिरगाँव	21.35	74.64	4.01	23	18.41	25.32	28.45	16.36	7.63	3.83
तेजम	24.01	65.53	10.46	47	22.31	19.02	35.52	14.76	5.83	2.56
तल्ला भैंसकोट	15.64	65.66	18.70	13	20.52	35.63	25.45	15.42	2.98	-
खेतभराड़	10.85	89.15	-	7	2.56	30.54	45.63	20.52	0.75	-
सीपू	15.75	84.25	-	23	22.75	28.86	5.32	41.46	1.81	-
कुटी	18.85	53.32	27.83	47	15.54	35.52	23.46	17.82	3.53	4.13
सोसा	25.43	62.11	12.46	53	21.52	40.23	22.46	8.53	6.24	1.02
सोबला	14.11	75.64	10.25	26	18.42	35.51	25.32	15.82	2.32	2.61
बरम	15.71	63.86	20.43	13	40.54	16.35	11.32	22.43	3.42	5.94
गलांती	7.01	84.46	8.53	6	25.43	35.46	28.52	8.43	2.01	0.15

स्त्रोत-2004 में किये गये क्षेत्र सर्वेक्षण पर आधारित।

उक्त तालिका के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मदकोट (41.85%) एवं बरम (40.54%) में सर्वाधिक मकान 2 से कम कमरों वाले हैं। 2 से 4 कमरों वाले मकानों की सर्वाधिक संख्या सोसा (40.23%), मीलम (36.42%), तल्ला भैंसकोट (35.63%) में एवं 4 से 6 कमरों वाले सबसे अधिक मकान खेत भराड़ (45.63%) एवं तेजम (35.52%) में पाये जाते हैं। 6 से 8 कमरों वाले मकानों की सर्वाधिक संख्या सीपू (41.46%) एवं जलथ (27.42%) में हैं, जबकि 8 से 10 कमरों वाले सबसे अधिक मकानों की संख्या मप्वालबाडा (12.56%) एवं जलथ (9.88%) में है। दस से अधिक कमरों वाले मकान केवल आर्थिक रूप से सम्पन्न लोगों द्वारा ही बनाये जाते हैं। अतः इनकी संख्या न्यून है। जो सर्वाधिक मदकोट (6.55%) एवं बरम (5.94%) में पाये जाते हैं।

आवासीय स्थिति का एक मुख्य पक्ष कमरों का कार्मिक उपयोग होता है। सामान्यतः इन मकानों में पृथक् रसोईघर नहीं होता है। दो कमरो वाले मकानों में एक कमरें में समस्त पारिवारिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। बरसात में छतों के टपकने तथा टूटने का भय बना रहता है। आंगन (प्रांगण), दैनिक कार्यों, सांस्कृतिक एवं धार्मिक उत्सवों के लिए अति महत्वपूर्ण भाग होता है। यहां के समस्त भवनों के सामने अधिक क्षेत्रफल वाले आंगन पाये जाते हैं। दो कमरों वाले मकान में पृथक् रसोईघर नहीं पाया जाता, जबकि चार से अधिक कमरों वाले मकानों में रसोईघर, बैठक कक्ष, शयनकक्ष एवं भण्डारघर पृथक्-पृथक् पाये जाते हैं। वर्तमान समय में इन क्षेत्रों में बनाये जा रहे मकानों में आधुनिक सुविधाओं के अनुसार पृथक्-पृथक् उपयोग हेतु कक्षों के निर्माण का प्रचलन तीव्रता से बढ़ रहा है।

आवासन समस्यायें

भारत में आवास ग्रामीण विकास कार्यक्रम की एक निर्बल कड़ी है जो अद्यतन उपेक्षित है। आवासन समस्या के लिए कई कारण संयुक्त रूप से उत्तरदायी हैं। यथा जनसंख्या में वृद्धि, संयुक्त परिवारों का विघटन, निर्धनता, बेरोजगारी, आवास स्थल की कमी आदि। इस क्षेत्र के अधिवासों के सर्वेक्षण से यह विदित हुआ है कि चयनित परिवारों में से मात्र 40 प्रतिशत परिवार आवास समस्या से ग्रसित नहीं हैं, शेष 60 प्रतिशत परिवार ऐसे आवासों में निवास कर रहे हैं जो असंतोषजनक, अनुपयुक्त पर्यावरणीय दशाओं, अवैज्ञानिक संरचना, गवाक्षों एवं वातायनों से रहित, स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुपयुक्त, प्रारम्भिक सुविधाओं, यथा-स्नानगृह, शौचालय, शुद्ध पेयजल आदि से रहित हैं।

भोटिया जनजाति के अधिकांश परिवार विविध प्रकार की आवासन समस्याओं से ग्रसित है जिसका विवरण निम्नलिखित है।

1. अधिकांश घरों में सूर्य के प्रकाश व शुद्ध प्राण वायु की समुचित व्यवस्था नहीं है अर्थात् निर्धारित मापदण्ड की खिडकियों एवं बातायनों का अभाव है।

2. घरों की ऊँचाई कम है।

3. पृथक् गोठों के अभाव से आवासीय मकानों में ही पशुओं को रखने से मल-मूत्र के विसर्जन से पर्यावरण प्रदूषित रहता है।

4. गंदे जल के निकास की उचित व्यवस्था न होने के कारण लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

5. भवनों के मध्य की गलियाँ संकीर्ण है एवं उनके दोनों तरफ जल निकासी हेतु नालियों की समुचित व्यवस्था नहीं है।

6. अधिकांश परिवारों के पास पर्याप्त आवासीय भूमि नहीं है। जो भूमि उपलब्ध हैं वह आवासीय मकानों से अधिक दूर है।

7. इन आवासों में सघनता के कारण एकान्तता का अभाव है।

8. मकानों का निर्माण सुनियोजित ढंग से नहीं किया गया है अतः गृह विन्यास अव्यवस्थित है।

9. मकान निर्माण हेतु इन लोगों को किसी भी प्रकार का सरकारी अनुदान या ऋण प्राप्त नहीं हुआ है।

10. ग्राम समाज द्वारा इस जनजाति के लोगों के लिए पृथक् रूप मे भूमि आवंटन की सुविधा नहीं है।

11. शुद्ध पेयजल एवं प्रकाश हेतु विद्युत की समुचित व्यवस्था नहीं है।

12. ग्रामीण बस्तियाँ परिवहन मार्गो से दूर है। अतः आवागमन हेतु अत्यधिक कठिनाई होती है।

13. अधिकांश ग्रामीण बस्तियों में चिकित्सा सुविधाओं का अभाव है।

उक्त आवासीय समस्यायें देश के प्रायः सभी अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों में देखने को मिलती है। जिनका विवरण चुन्ना सिंह एवं आर0के0 शुक्ल (1995, 123) तथा आर0एस0 त्रिपाठी के अध्ययनों से प्राप्त होता है। शासन द्वारा संचालित विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं से इनके कुछ सीमित परिवार ही लाभान्वित हो सके है। अतः राज्य एवं केन्द्रीय सरकारों का यह कर्तव्य है कि इनकी समस्याओं पर सम्यक् ध्यान देकर इनके आवासीय विकास हेतु समुचित कार्यक्रमों का संचालन किया जाय।

संदर्भ

कौशिक, एस0डी0 (1959) : टाइप्स ऑफ ह्यूमन सेटिलमेण्ट इन जौनसार हिमालय, ज्योग्राफिकल रिव्यू ऑफ इण्डिया, खण्ड XXI, संख्या 2, पृष्ठ-2

कौशिक, एस0डी0, (1976) : मानव भूगोल, पृष्ठ-339.

खर्कवाल, एस0सी0एवं नित्यानन्द(1971) : यू0पी0 हिमालय, इण्डिया : ए रीजनल ज्योग्राफी, एन0जी0 एस0आई0, पृष्ठ-459.

चन्द, रघुवीर (1981) : रूरल सेटिलमेण्ट इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, पृष्ठ-403

चन्द, रघुवीर एवं भट्टाचार्य, जी0 (1984) : एन एप्रोच टू डेटरमाइन टाइपोलॉजी ऑफ रूरल सेटिलमेण्ट्स इन द हिमालय-ए केस स्टडी ऑफ डिस्ट्रिक्ट पिथौरागढ़, ट्रान्सेक्सन्स, आई0आई0जी0 खण्ड-6, संख्या-एक, पृष्ठ 51-57.

चन्द, रघुबीर, जोशी, शरद चन्द, एवं मनराल जयपाल सिंह (1986) : कुमाऊँ हिमालय में आवासीय दशायें एवं ग्रामीण मकानों के प्रकार : एक प्रतीकात्मक अध्ययन, पृष्ठ-18.

जोशी, शरदचन्द्र (1977) : कुमाऊँ : मानव भूगोल के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष, कुमाऊँनी संस्कृति, सम्पादक-बटरोही, पृष्ठ 108.

त्रिपाठी, आर0एस0 (1989) : हाउसिंग प्रोबलम ऑफ द कोल्स इन मानिकपुर ब्लाक, उत्तर प्रदेश, ज्योग्राफिकल रिव्यू ऑफ इण्डिया, अंक-51 संख्या-1 पृष्ठ-36,

नीफिन, एफ0 (1965) : फोक हाउिसिंग : की टू डिस्ट्रीब्यूसन, एनाल्स एसोसियेसन अमेरिकन ज्योग्राफर्स, खण्ड 55-4, पृष्ठ-549

ब्रून्ज, जे0 (1920) : ह्यूमन ज्योग्राफी, पृष्ठ--74

बोस, एस0सी0 (1972) : ज्योग्राफी ऑफ द हिमालय, पृष्ठ-83-84.

सिंह, चुन्ना एवं शुक्ल आर0के0 (1995) : अनुसूचित जातियों की आवास समस्यायें : प्रतीकात्मक अध्ययन, महाराष्ट्र भूगोल शास्त्र संशोधन पत्रिका, खण्ड-IX, अंक : 2, पृष्ठ-123.

सिंह ए.के. तिवारी, एम0एम0, एवं बिष्ट एच0एस0, (1984) : 'एनाटोमी एण्ड फंक्सनल आरर्गेनाइजेशन ऑफ रूरल ड्वेलिंग्स इन कुमाऊँ हिमालय : इन इकोलाजिकल परसेप्सन, द दकन जियोग्राफर खण्ड XXII, संख्या एक एवं दो, पृष्ठ-470-472.

अध्याय चतुर्थ

भोटिया जनजाति का आर्थिक जीवन

किसी क्षेत्र के जनजीवन के सर्वांगीण अध्ययन हेतु उनके आर्थिक परिवेश का सम्यक विवेचन अधिक महत्वपूर्ण होता है। वास्तव में किसी भी समाज की अर्थव्यवस्था के अनुरूप ही उस समाज की मान्यतायें, सामाजिक संगठन, आध्यात्मिक चिंतन एवं अन्य सांस्कृतिक क्रियाकलाप संचालित होते हैं। आर्थिक जीवन को प्रभावित करने वाले कारकों में प्राकृतिक संसाधनों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इन्ही के तद्नुरूप ही किसी क्षेत्र का मानव जीवन अपनी आजीविका का चयन एवं विभिन्न प्रकार के आर्थिक क्रियाकलाप सम्पादित करता है।

भोटिया जनजाति के आर्थिक जीवन को इस क्षेत्र की विषम भौगोलिक दशाओं ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। कृषि योग्य भूमि का अभाव एवं उच्च पर्वतीय भागों में शीताधिक्य के कारण कृषि इनके आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार नही बन सकी। जलवायु की विशिष्टता ने इनके जीवन में ग्रीष्म एवं शीतकालीन निष्क्रमण की अनिवार्यता कायम रखी। उच्च भागों में स्थित हरी एवं मुलायम घास से समृद्ध बुग्याल चारागाहों की प्रचुरता, इनके भेडपालन व्यवसाय एवं ऊन उद्योग में सहायक सिद्ध हुई। उत्तरी सीमान्त भागों में हिमालय की उच्च पर्वत श्रंखलाओं के मध्य स्थित अनेक गिरिद्वारों ने भोटिया लोगों को तिब्बत के साथ व्यापार के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार इनके आर्थिक जीवन के सम्पूर्ण ताने-बाने को यहाँ की प्राकृतिक परिस्थितियों ने पूर्णतः प्रभावित किया है। प्रस्तुत अध्याय में भोटिया जनजाति के आर्थिक जीवन के विभिन्न पक्षों का सम्यक विवेचन किया गया है।

पिथौरागढ़ जनपद का भूमि उपयोग

मानवीय अस्तित्व के लिए प्राकृतिक संसाधनों की विशेष अनिवार्यता होती है। प्राकृतिक संसाधनों के प्रमुख तत्वों में भूमि एक आवश्यक तत्व है। बारलो, आर० (1963,1)के मतानुसार भूमि तत्व के माध्यम से मानव निश्चित रूप से प्राकृतिक पर्यावरण के रूपान्तरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। जिम्मर मैन, इ०डब्लू० (1951,86) के अनुसार किसी निश्चित क्षेत्र में भूमि उपयोग प्रतिरूप की सीमाओं का निर्धारण दो प्रकार के तत्वों द्वारा होता है। भूमि उपयोग की बाह्य या निरपेक्ष सीमा प्राकृतिक तत्वों द्वारा निर्धारित होती है जबकि सापेक्षिक सीमा का निर्धारण संस्कृति, मानवीय दृष्टिकोण एवं क्रियाकलापों द्वारा होता है। चौहान, डी०एस० (1966,3) के अनुसार मानव के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति के निर्धारण में भूमि संसाधन की स्त्रातजिक भूमिका होती है।

धरातलीय संरचना, मिट्टी, अपवाह तन्त्र, जलवायुविक दशायें एवं अनेक सामाजिक आर्थिक तत्व, समान रूप से किसी प्रदेश के भूमि उपयोग के निर्धारण हेतु उत्तरदायी होते हैं। चूंकि इन विभिन्न तत्वों की प्रकृति में विभिन्नता पाई जाती है अतः किसी क्षेत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप में भी विभिन्नता परिलक्षित होती है। पिथौरागढ़ जनपद के भूमि उपयोग प्रतिरूप में इन सभी भौगोलिक तत्वों का सम्मिलित प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जनपद के भूमि उपयोग का विवरण तालिका 4.1 से किया गया है।

तालिका 4.1

पिथौरागढ़ जनपद में भूमि उपयोग (2001)

क्रम सं०	भूमि उपयोग श्रेणी	कुल क्षेत्रफल (हेक्टेअर)	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
1.	वन	264385	55.45
2.	कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि		
(i)	बंजर एवं कृषि के अयोग्य भूमि	17579	3.69
(ii)	कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि	10274	2.15
3.	अन्य कृषि योग्य भूमि		
(i)	चारागाह	55275	11.59
(ii)	उद्यानों, बागों, वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र	29928	6.28
(iii)	कृषि योग्य बंजर भूमि	36547	7.67
4.	कृषि भूमि		
(i)	वर्तमान परती	763	0.16
(ii)	अन्य परती	8530	1.79
(iii)	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	53500	11.22
	कुल प्रतिवेदित क्षेत्र	476781	100.00

स्रोत- साँख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ, वर्ष 2001

उक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जनपद के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का आधे से अधिक भाग (55.45%) वनों से आवृत्त है एवं 11.59% क्षेत्रफल में चारागाह पाये जाते है।

जनपद में शुद्ध बोया गया क्षेत्र मात्र 11.22 प्रतिशत है। जनपद में कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि का प्रतिशत न्यून (5.84%) है जबकि अन्य कृषि योग्य भूमि का प्रतिशत अधिक (25.54 प्रतिशत) है। जनपद का लगभग 25 प्रतिशत भाग स्थाई रूप से हिमाच्छादित है जो कृषि हेतु सर्वथा अनुपयुक्त है।

भोटिया जनजाति क्षेत्र का कृषि भूमि उपयोग

पिथौरागढ़ जनपद का भोटिया जनजाति क्षेत्र (मुनस्यारी एवं धारचूला) धरातलीय दृष्टि से अत्यन्त विषम एवं कठोर जलवायुविक दशाओं से युक्त है। इस क्षेत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप पर भौगोलिक दशाओं का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। उक्त दोनों क्षेत्रों की 15 न्याय पंचायतों में भूमि उपयोग में अन्यन्त विभिन्नता दिखाई देती है। जो तालिका 4.2 से स्पष्ट है।

तालिका 4.2

भोटिया जनजाति क्षेत्र में भूमि उपयोग (2001)

क्रम सं०	न्याय पंचायत का नाम	भूमि उपयोग (कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत)			
		वन क्षेत्र	कृषि योग्य बंजर भूमि	कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि	कृषि क्षेत्र
1.	लीलम	4.03	51.90	27.54	16.53
2.	सिर्तोला	14.21	47.01	19.17	19.61
3.	मदकोट	24.48	33.87	13.79	27.86
4.	दरकोट	17.56	43.01	10.84	28.59
5.	सेविला	16.18	18.97	23.07	41.78
6.	मडलकिया	15.67	36.28	25.27	22.78
7.	क्वीटी	33.74	28.40	22.21	15.65
8.	नाचनी	22.40	44.21	15.59	17.80
9.	बाँसबगड़	42.48	29.04	11.71	16.77
	मुनस्यारी विकास खण्ड	24.06	37.03	17.98	20.93
1.	दुग्तू	9.74	58.59	8.07	23.60
2.	गुंजी	6.26	54.82	17.08	21.84
3.	सोसा	9.36	37.15	17.75	35.74

LAND UTILIZATION
NYAY PANCHAYAT LEVEL
2001
N
CHAMOLI
BAGESWAR
TIBET(CHINA)
NEPAL
DIDIHAT TAHSIL
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
80° E
15′
30′
45′
81°E
INDEX
FOREST AREA
CULTURABLE WASTE
AREA NOT AVAILABLE FOR CULTIVATION
CULTIVATED LAND
KM 5 0 5 10 KM
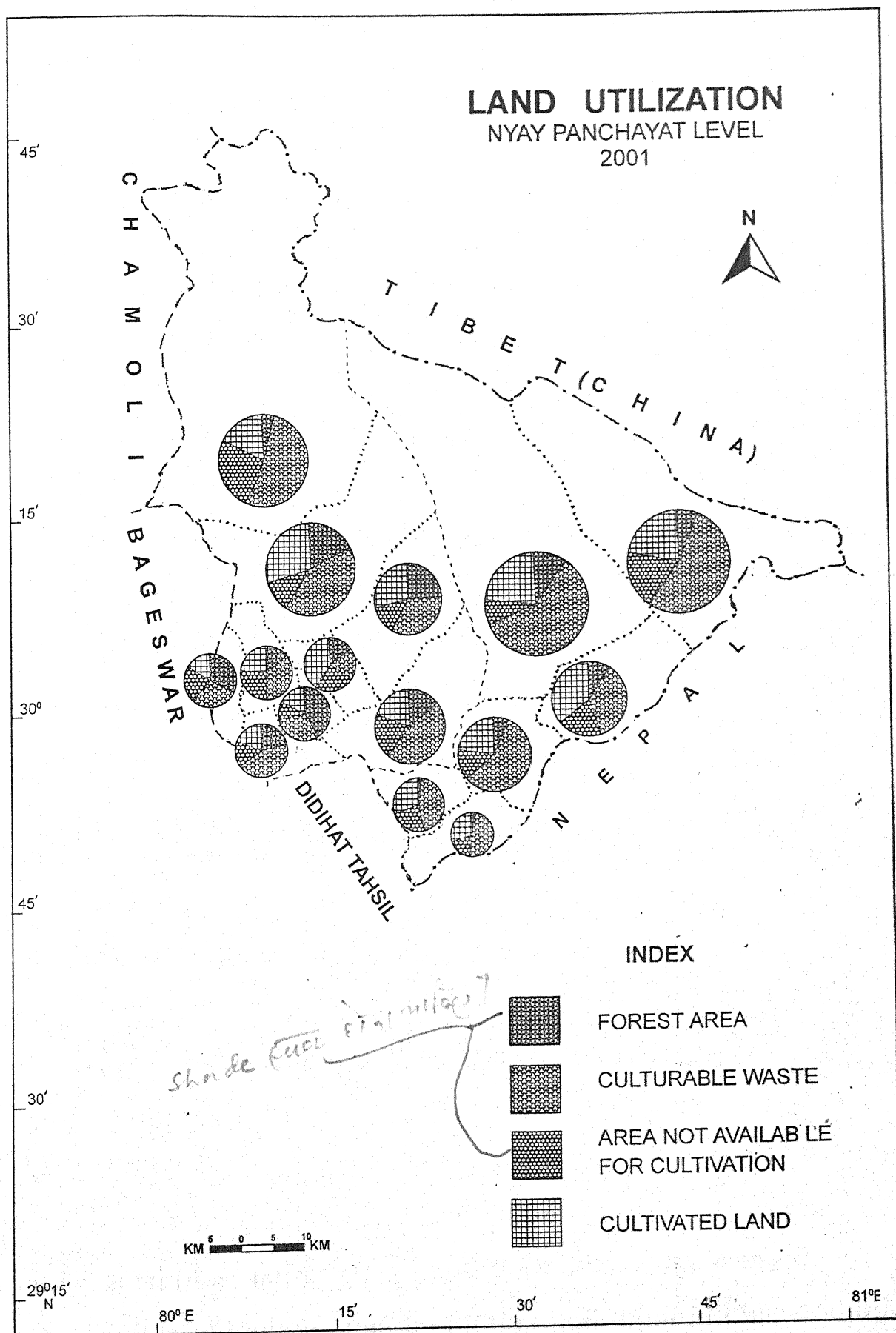
Fig. 21

4.	खेत	7.03	57.18	13.43	22.36
5.	बरम	1.18	46.46	22.49	29.87
6.	धारचूला देहात एवं नगर	2.04	50.40	17.62	29.94
	धारचूला विकास खण्ड	5.44	51.03	15.97	27.56

स्रोत- जिला जनगणना हस्त पुस्तिका, पिथौरागढ़, वर्ष 2001

उक्त तालिका को देखने ये यह स्पष्ट होता है कि भोटिया जनजाति क्षेत्र की विभिन्न न्याय पंचायतों के भूमि उपयोग प्रतिरूप में अत्यधिक भिन्नता पाई जाती है। मुनस्यारी विकास खण्ड की बाँसबगड़, क्वीटी एवं मदकोट न्याय पंचायतों में वन क्षेत्र का सर्वाधिक विस्तार पाया जाता है जबकि लीलम न्याय पंचायत में हिमनदों की अधिकता के कारण वन क्षेत्र की अत्यधिक न्यूनता है। कृषि योग्य बंजर भूमि एवं कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि का प्रतिशत सभी न्याय पंचायतों में अधिक है। कृषि क्षेत्र की दृष्टि से इस विकास खण्ड की सेविला, दरकोट एवं मदकोट न्याय पंचायतें आगे हैं।

इसी प्रकार धारचूला विकास खण्ड की विभिन्न न्याय पंचायतों के भूमि उपयोग में भी पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है। इस विकास खण्ड का अधिकांश भाग स्थाई रूप से हिमाच्छादित है और निम्न ऊँचाईयों में वन क्षेत्र सीमित है इसलिए यहाँ की सभी न्याय पंचायतों में वन क्षेत्र अत्यधिक न्यून है। इस क्षेत्र में कृषि योग्य बंजर भूमि का भी प्रतिशत अधिक है जबकि कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि का का क्षेत्रफल कम है। यहाँ की सभी न्याय पंचायतों में कृषि क्षेत्र का विस्तार सोसा एवं सेविला के अतिरिक्त लगभग सर्वत्र समान है (चित्र-21)।

कृषि

कुमाऊँ क्षेत्र में कृषि जनसंख्या की आजीविका का मुख्य साधन है और इस क्षेत्र के आर्थिक विकास में इसकी निर्णायक भूमिका भी हो सकती है किन्तु प्रादेशिक अर्थव्ययवस्था में इसका महत्वूपर्ण स्थान नही है अतः यह यहाँ के अर्थतन्त्र की धुरी बनने में सक्षम नही है। वास्तव में पर्वतीय क्षेत्रों में विशिष्ट प्राकृतिक संरचना के कारण उच्चस्तरीय विकसित कृषि की संकल्पना करना नितान्त कठिन है। एस0एस0 खनका (1990, 441) के मतानुसार इस क्षेत्र की कृषि अनेक समस्याओं से ग्रसित है, जैसे- छोटे एवं बिखरे हुए खेतों का होना, अनुपजाऊ एवं छिद्रयुक्त मिट्टी जीवाश्म रहित भूमि की परतें,

सिंचाई सुविधाओं का अभाव, कठोर धरातल इत्यादि। ये विभिन्न तत्व यहाँ की कृषि के प्रसार एवं विकास में रूकावटें डालते हैं।

डॉ०जे०सी० गडकोटी (1988, 130) के अनुसार कृषि पिथौरागढ़ जनपद के अर्थतन्त्र की धुरी एवं यहाँ के लोगों की जीविका का मुख्य आधार है। यहाँ की अधिसंख्य ग्रामीण जनसंख्या की मुख्य आर्थिक क्रियायें कृषि पर ही निर्भर हैं और यहाँ की कुल जनसंख्या का लगभग ८० प्रतिशत भाग कृषि कार्य में संलग्न है। यहाँ की ग्रामीण जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व पर कृषि भूमि की उपलब्धता का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्न फसलों एवं अन्य कृषि उत्पादों की बढती माँग के कारण यहाँ भूमि उपयोग पर निरन्तर दबाव बढ रहा है। किन्तु कृषि भूमि मात्र जनसंख्या के दबाव पर ही परिचालित नही होती है बल्कि कृषि योग्य भूमि की विभिन्नता के लिए अनेक तत्व उत्तरदाई होते हैं। डी०एस० चौहान (1966, 25) के अनुसार इन तत्वों को सामान्यतः तीन वर्गों में रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग में प्राकृतिक तत्व आते हैं, इनके अन्तर्गत स्थिति, धरातल, जलवायु एवं मिट्‌टी इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। द्वितीय वर्ग में आर्थिक तत्व आते हैं, इसमें धन, साख एवं पूंजी प्रमुख हैं एवं तृतीय वर्ग में संस्थागत तत्व आते हैं, इनके अन्तर्गत सांस्कृतिक वातावरण, सामाजिक एवं सामूहिक क्रियायें, रीतिरिवाज एवं परम्परायें, अभिरूचियाँ, मूल्य एवं वैधानिक तंत्र इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। एल० डडले स्टाम्प (1961,51) ने इन सम्बद्ध तत्वों को तीन वर्गों में विभक्त किया है, प्रथम-प्राकृतिक तत्व, द्वितीय ऐतिहासिक तत्व एवं तृतीय सामाजिक एवं आर्थिक तत्व।

एस०सी०जोशी एवं अन्य (1983, 217) के अनुसार कुमाऊँ के पर्वतीय भागों में ऊँचें एवं नीचे भागों में स्थित कृषि क्षेत्रों को सापेक्षिक स्थिति के अनुसार अपरौन एवं तालौन दो भागों में विभाजित किया जाता है। जो कृषि क्षेत्र अधिक ऊँचाई वाले भागों में स्थित हैं उन्हें अपरौन, तथा जो कृषि क्षेत्र निम्न ऊँचाई वाले भागों में स्थित हैं, उन्हें तालौन कहते हैं। यह वर्गीकरण तर्कसंगत है, क्योंकि यह ऊँचें एवं नीचे भू भागों की सापेक्षिक स्थिति है जो कृषि के लिए आवश्यक भौगोलिक तत्वों द्वारा प्रभावित होती है। जैसे फसल उगने की ऋतु की लम्बाई, तापमान, मिट्‌टी की संरचना एवं गहराई, सिंचाई एवं धरातलीय बनावट इत्यादि। इन्ही तत्वों की विभिन्नता के कारण उक्त दोनों क्षेत्रों में कृषि के तरीके, शस्य प्रतिरूप एवं अन्य पहलुवों में भिन्नता पाई जाती है।

स्थानान्तरणशील कृषि -

भोटिया जनजाति क्षेत्र की कृषि का सम्यक विवेचन करने से यह स्पष्ट होता है कि सन्

1962 से पूर्व इस क्षेत्र की कृषि को पूर्णतः स्थानान्तरणशील कृषि कहना अधिक युक्तिसंगत होगा। आजकल भी मल्ला जोहार, दारमा एवं व्याँस क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के अनुसार प्रवजन की पूर्ववत परम्परा है। इस जनजाति के लोग वर्ष का शीतकाल और ग्रीष्मकाल अलग-अलग स्थानों पर व्यतीत करते हैं। ग्रीष्मकाल ऊँचे भागों में स्थित अपने मूल ग्रामों में एवं शीतकाल निचली घाटियों में स्थित ग्रामों में बिताते हैं। इन दोनों प्रकार के निवास क्षेत्रों में इनकी कृषि भूमि होती है जहाँ भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न फसलें उगाई जाती हैं। ऊँचें भागों की भूमि पथरीली तथा शुष्क है। अतः वहाँ पैदावार कम होती है। इन क्षेत्रों में अत्यधिक शीत के कारण वर्ष में केवल एक फसल ही उगाना सम्भव है। निचली घाटियों की भूमि कृषि हेतु अच्छी है एवं सिंचाई की सुविधायें भी उपलब्ध हैं अतः इन क्षेत्रों में अधिक उपज होती है। आजकल भोटिये अधिकतर निचली उपजाऊ घाटियों में ही स्थाई रूप से रहने लगे हैं। तिब्बत का व्यापार बन्द होने के बाद कृषि भोटियों की जीविका का प्रधान आधार बन गयी है और कृषि उपज भी तेजी से बढी है। अतएव इस क्षेत्र की कृषि को स्थाई कृषि कहना अधिक न्याय संगत होगा किन्तु दारमा, ब्याँस एवं मल्ला जोहार क्षेत्र के प्रवास वाले ग्रामों की कृषि को स्थानान्तरणशील कृषि कहा जा सकता है।

पन्त (1935, 95) तथा जोशी व अन्य (1983, 217) ने भोटिया जनजाति क्षेत्रों के ऊँचें एवं नीचे भू भागों की कृषि को सापेक्षिक स्थिति के अनुसार निम्नलिखित तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया है।

1. अपरौन या शुष्क कृषि

उच्च पर्वतीय भागों एवं मध्यम ढालों के सहारे और सामान्यतः बिना सिंचाई के की जाने वाली कृषि को 'अपरौन कृषि' कहा जाता है। वास्तव में अपरौन (Upraun) शब्द ऊँचें भागों में स्थित अनुपजाऊ भूमि के लिए प्रयुक्त होता है। इस भूमि में उत्पन्न की जाने वाली मुख्य फसलें मडुवा, झिगौरा, उवा (Tibetan barley), नपल (Himalayan Wheat), फाँफर, ओगल या पल्ती (Buch Wheat),चुआ जौ, गेहूँ एवं दालें हैं। अधिकांश अपरौन कृषि ढालों के आरपार सीढीदार खेतों में की जाती है। अपरौन कृषि के अन्तर्गत दो वर्षो की अवधि में तीन फसलें (दो खरीफ एवं एक रबी) उत्पन्न की जाती हैं। इसमें मानक आवर्तन के अनुसार निम्नलिखित फसलें बोई जाती हैं।

(अ) धान एवं झिगौरा अप्रैल में बोया जाता है।

(ब) गेहूँ एवं जौ अक्टूबर में बोया जाता है।

(स) मडुवा मई में बोया जाता है।

(द) अलगे छः महीनों के लिए कृषि भूमि को परती छोड़ा जाता है।

उक्त फसल क्रम पुनः खरीफ काल में दोहराया जाता है। गाँव की सम्पूर्ण कृषि भूमि को इस उद्देश्य से दो भागों में बाँटा जाता है जिसे 'सार' (Saar) कहते हैं। जिसमें वर्ष के अन्तराल में इसी प्रकार फसलों का क्रम दोहराया जाता है। इस प्रकार प्रतिवर्ष खरीफ के मौसम में अपरौन भूमि हमेशा कृषि के अन्तर्गत संलग्न रहती है, जबकि इसका आधा भाग रबी के मौसम में परती पड़ा रहता है और अन्य आधे भाग में गेहूँ एवं जौ की कृषि की जाती है।

2. तालौन या सिंचित कृषि

नदियों की तलहटी एवं अपरौन भूमि से निम्न ऊँचाई वाले भागों में की जाने वाली कृषि को तालौन (Talaun) कृषि कहते हैं। अच्छी एवं गहरी कांप मिट्टी, सिंचाई हेतु नियमित जलप्राप्ति एवं मध्यम तापमान वाले भागों में तालौन कृषि के अन्तर्गत अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इस भूमि में सीढीदार कृषि न करके सामान्य विधि से कृषि की जाती है। उपजाऊ भूमि होने के कारण इसमें विभिन्न किस्म की फसलें बोई जाती हैं। तालौन भूमि दो प्रकार की होती है- सेरा (Sera), एवं सामान्य तालौन (ordinary Talaun)। इस भूमि का विभाजन गुणवत्ता की दृष्टि से मिट्टी की उत्पादकता एवं जलपूर्ति के आधार पर किया गया है। सेरा सर्वोत्तम किस्म की निम्न भूमि होती है, जिसमें उत्तम कांप मिट्टी एवं नियमित जल प्रवाह होता है। तालौन खरीफ एवं रबी की दोहरी फसल के लिए उपयुक्त होती है। खरीफ की फसल के अन्तर्गत इसमें धान, दालें एवं मिर्च तथा रबी के मौसम में गेहूँ, जौ एवं सरसों बोया जाता है। यह धान की कृषि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है।

3. विरामी कृषि (Inter mittent Cultivation)

यहाँ के अधिकांशतः समतल या असमतल ढालों में विरामी कृषि की जाती है जो एक या दो फसल लेने के बाद परती छोड़ दी जाती है। इसमें फसलों का मानक क्रम पांच वर्षो में तीन फसलों का होता है। कुछ वर्षो तक विराम देने के बाद यह अन्ततः नियमित कृषि हेतु उपयुक्त हो जाती है। यह कृषि जब समतल खेतों में की जाती है तो उसे 'कातिल' (Katil) कहते हैं। मडुवा या सांवा इस कृषि की सर्वाधिक उपयुक्त फसल है। अन्य उगाई जाने वाली फसलें झिंगोरा एवं चुआ हैं।

कृषि तकनीक

भूमि के सघन उपयोग एवं भूमि की उत्पादकता बढाने हेतु विभिन्न प्रकार की कृषि तकनीकियों

का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होता हैं। इन कृषि तकनीकियों में विभिन्न प्रकार के सिंचाई के साधन, उन्नतशील बीजों का प्रयोग, कीटनाशक दवाओं रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग एवं उन्नत किस्म के कृषि उपकरणों का प्रयोग सम्मिलित है। भोटिया जनजाति क्षेत्र में खेत छोटे एवं बिखरे हुए पाये जाते हैं। इनकी स्थिति भी विभिन्न प्रकार की है। ऊँचें भागों में स्थित कृषि-भूमि सिंचाई की सुविधाओं से वंचित है, जिसमें फसलों की पैदावार केवल वर्षा एवं हिमपात से प्राप्त नमी पर ही निर्भर है। निचली घाटियों की भूमि उपजाऊ समतल एवं सिंचाई की सुविधाओं से युक्त है। ऊँचें भागों की कृषि भूमि में शीताधिक्य के कारण केवल ग्रीष्मऋतु में कुछ सीमित फसलें ही उगाई जा सकती हैं। यहाँ की कृषि मात्र मानव श्रम पर ही केन्द्रित है क्योंकि छोटे, बिखरे एवं असमतल खेतों में उन्नत किस्म के कृषि उपकरणों का प्रयोग करना असम्भव है अतः यहाँ परम्परागत कृषि उपकरणों का प्रयोग ही किया जा सकता है। यहाँ उर्वरकों के स्थान पर जैविक खादों का प्रयोग सर्वाधिक होता है।

वर्तमान समय में हरित क्रान्ति के प्रभाव एवं सरकारी प्रयास से इस क्षेत्र में उन्नतशील बीजों, कीटनाशक दवाओं एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाने लगा है जिससे कृषि उपज में तीव्र वृद्धि हुई है। कृषि तकनीक से सम्बन्धित इस क्षेत्र के न्याय पंचायत स्तर पर आंकड़े उपलव्ध नहीं हैं अतः इनका विवरण विकास खण्ड स्तर पर प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

सिंचाई के साधन

कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था करना बहुत आवश्यक है। इसके अन्तर्गत छोटी नहरें, नलकूप, हौज निर्माण, गूल निर्माण आदि स्रोत आते हैं। इस क्षेत्र में सिंचाई के साधनों की अत्यन्त कमी है। जिसका विवरण तालिका 4.3 से स्पष्ट है।

तालिका 4.3

विकास खण्ड स्तर पर सिंचाई के साधन एवं स्रोतों की संख्या

विकास खण्ड	नहरों की लम्बाई (किमी०)	गूल निर्माण (किमी०)	हौज निर्माण (संख्या)	हाईडम (संख्या)	विभिन्न साधनों से सिंचित क्षेत्रफल (हेक्टेयर)
मुनस्यारी	67	119	163	10	735
धारचूला	47	231	109	–	435

स्रोत- सांख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ़, वर्ष 2001

रायायनिक उर्वरक

इस क्षेत्र में फसलों के उत्पादन में अधिकांशतः पशुओं के गोबर, मलमूत्र एवं वनस्पति आदि से निर्मित जैविक खादों का प्रयोग अधिक होता है किन्तु वर्तमान समय में हरित क्रान्ति के प्रसार एवं प्रचार से रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अधिक किया जाने लगा है, जिससे फसलों के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस क्षेत्र में विकास खण्डवार उर्वरक वितरण तालिका 4.4 से प्रदर्शित है।

तालिका 4.4

विकास खण्ड स्तर पर उर्वरक वितरण (मी०टन०)

विकास खण्ड का नाम	नाइट्रोजन (N)	फास्फोरस (P_2O_5)	पोटाश (K_2O)	योग
मुनस्यारी	16	17	01	34
धारचूला	45	10	01	56

स्रोत- सांख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ़, वर्ष 2001

कृषि से सम्बन्धित अन्य तकनीकी सुविधायें

हरित क्रान्ति की सफलता उन्नतशील बीजों के प्रयोग एवं पौध सरंक्षण कार्यक्रमों पर निर्भर करती है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि हेतु बीज गोदाम, उर्वरक डिपो, कीटनाशक डिपो, बी वृद्धि के फार्म एवं बायो गैस संयत्र स्थापित किये गये हैं, जिससे इस क्षेत्र के कृषक लाभान्वित हो रहें हैं। इन मुख्य तकनीकी सुविधाओं का विवरण तालिका 4.5 से प्रदर्शित है।

तालिका 4.5

विकास खण्ड स्तर पर कृषि से सम्बन्धित तकनीकी सुविधाओं का उपभोग

विकास खण्ड	बीज गोदाम (संख्या)	उर्वरक डिपो क्षमता (किग्रा०)	ग्रामीण गोदाम		कीटनाशक डिपो		वायो गैस संयन्त्र
			संख्या	क्षमता	संख्या	क्षमता	संख्या
मुनस्यारी	9	225	13	535	1	43	21
धारचूला	9	225	10	270	1	35	50

स्रोत- सांख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ़, वर्ष 2001

कृषि उपकरण

कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु आधुनिक एवं समुन्नत कृषि उपकरणों का प्रयोग अति आवश्यक होता है। किसी क्षेत्र के कृषि उपकरणों के अवलोकन से वहाँ की कृषि के प्रकार एवं कृषि उत्पादकता का पूर्णतः अनुमान लगाया जा सकता है। भोटिया जनजाति क्षेत्र के कृषि उपकरण प्राचीन, परम्परागत एवं मानव श्रम पर आधारित हैं। यहाँ आधुनिक कृषि उपकरणों का प्रयोग करना दुष्कर है क्योंकि यहाँ के खेत अत्यन्त छोटे, बिखरे एवं असमान तथा मिट्टी की परतें बहुत पतली हैं। सिंचाई की सुविधाओं का अभाव एवं धरातल पथरीला, कठोर एवं असमान है। एस०एस० खनका (1990, 449) के अनुसार सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र कृषि में यांत्रिक प्रसार एवं विकास की दृष्टि से निर्धन है। यहाँ की कृषि तकनीक परम्परागत है, जो अधिकतम मानव श्रम के उपयोग एवं न्यूनतम उत्पादकता को सूचित करती है।

इस क्षेत्र के कृषि उपकरण विशेषकर उपयुक्तता की दृष्टि से निर्मित किये गये हैं। रतन सिंह रायपा (1974, 248) के अनुसार यहाँ के हल छोटे, हल्के एवं लकड़ी से निर्मित होते हैं, जिसे संकीर्ण ढालू भूमि पर छोटे नस्ल के बैल खीचने में समक्ष होते हैं। खेत खोदनें के लिए 'भौंसी या बौंसिया' (कुदालनुमा उपकरण) एवं गोडने के लिए 'तोकचा' प्रयुक्त होते हैं। फसल काटने के लिए 'अँसिया' (अखन) का प्रयोग होता हैं। गेहूँ तथा जौ की फसल कटाई का यहाँ एक विशेष स्थानीय तरीका प्रचलित है। बाँस या मजबूत लकड़ी की पतली दो साखाओं वाली टहनी को 1.5 फीट की लम्बाई में काट लेते हैं। दो टहनियों के मध्य गेहूँ या जौ की 4-6 वालों को फंसाकर खींचा जाता है, जिससे खडी फसल से मात्र बालें ही कटकर अलग हो जाती हैं। स्त्रियाँ इन दण्डों (रबस्यिन) से बालों को काटकर पीठ पर रखी टोकरी (ढल्वू) में शीघ्रता से रखती जाती हैं। फसल को चूटने या बालों से दाने अलग करने का भी विशेष तरीका है। पतले डन्डे या चमडे से निर्मित रैकेटनुमा उपकरण, जिसका चौड़ा भाग घूमकर बालों पर वार करता है एवं पाँच कि०ग्रा० बजन का लकड़ी से निर्मित क्रिकेट के बल्ला जैसा उपकरण (तब्वू), गेहूँ तथा जौ की कुटाई में प्रयोग किया जाता है। नपल तथा उवा कूटने के लिए मजबूत लकड़ी की टहनियों (च्यंमा) का प्रयोग होता है। फाँफर पल्ती एवं चीना आदि फसलों को काटने के बाद उन्हें निगाल की बनी चटाई (फ्वू या पका) में रखकर दोनों पैरों के पंजों से रगड़कर, उनसे दाने अलग किये जाते हैं। मैदानी भागों की तरह फसल या बालों के ऊपर जानवरों को घुमाने की प्रथा यहाँ नही है। भूसे को अलग करने के लिए स्थानीय सूपा (टिस्यिप) का प्रयोग होता है। अनाज को रखने के लिए भरवार या मोटे ऊन से

निर्मित बडे थैले (तंजी) या चमडा निर्मित थैले (खाल्चू) एवं भांग के रेशे से निर्मित थैले (कोथल्चू) प्रयुक्त होते हैं।

ऊँचाइयों पर स्थित गाँवों में घोड़े, तथा झुप्पू और अन्यन्त्र छोटे वैलों से खेतों की जुताई की जाती है। जुताई कार्य मात्र पुरुष वर्ग के लोग करते हैं शेष अधिकांश कृषि कार्य स्त्रियों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। अतएव यह स्पष्ट होता कि यहाँ के कृषि उपकरण प्राचीन, परम्परागत एवं स्थान विशेष की दृष्टि से उपयुक्त है। यहाँ की भौगोलिक दशाओं के कारण यहाँ आधुनिक एवं वृहद् कृषि उपकरणों का प्रयोग असम्भव है।

भोटिया जनजाति क्षेत्र में विकास खण्डवार कृषि यंत्रों एवं उपकरणों का विवरण तालिका 4.6 से प्रदर्शित है।

तालिका 4.6

भोटिया जनजाति क्षेत्र में कृषि यंत्रों एवं उपकरणों का उपयोग

कृषि यन्त्र एवं उपकरण		मुनस्यारी विकास खण्ड	धारचूला विकास खण्ड
हल	लकडी	7797	7054
	लोहा	806	732
उन्नत हैरो तथा कल्टीवेटर		-	-
उन्नत थ्रेसिंग मशीन		-	-
उन्नत स्प्रेयर		05	03
उन्नत बोआई यन्त्र		-	-
टैक्टर		-	-

स्रोत- सांख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ, वर्ष 2001

शस्य प्रतिरूप

भारत-तिब्बत व्यापार की समाप्ति के बाद कृषि भोटियों की जीविका का प्रमुख आधार बन गई है। इस क्षेत्र की लगभग तीन चौथाई कार्यशील जनसंख्या कृषि पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्भर है। यहाँ की कृषि मात्र जीविका प्रधान है, जिसमें खाद्यान्न फसलों की प्रमुखता है। यहाँ के कृषि क्षेत्रों की स्थिति निर्धारण में ढाल का महत्वपूर्ण स्थान है। उच्चतम मानव-भूमि अनुपात, कृषि कार्य में स्त्रियों की अधिक सहभागिता, छोटे एवं बिखरे खेतों का होना, ऊँचे भागों में सिंचाई की कमी, उर्वरकों का अल्प

AREA UNDER CULTIVATION
2001
N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
DIDIHAT TAHSIL
NEPAL
INDEX
BELOW 20
20 - 30
30 - 40
ABOVE 40
PERCENTAGE OF GROSS AREA
KM 5 0 5 10 KM
45′
30′
15′
30⁰
45′
30′
29⁰15′ N
80⁰ E
15′
30′
45′
81⁰E
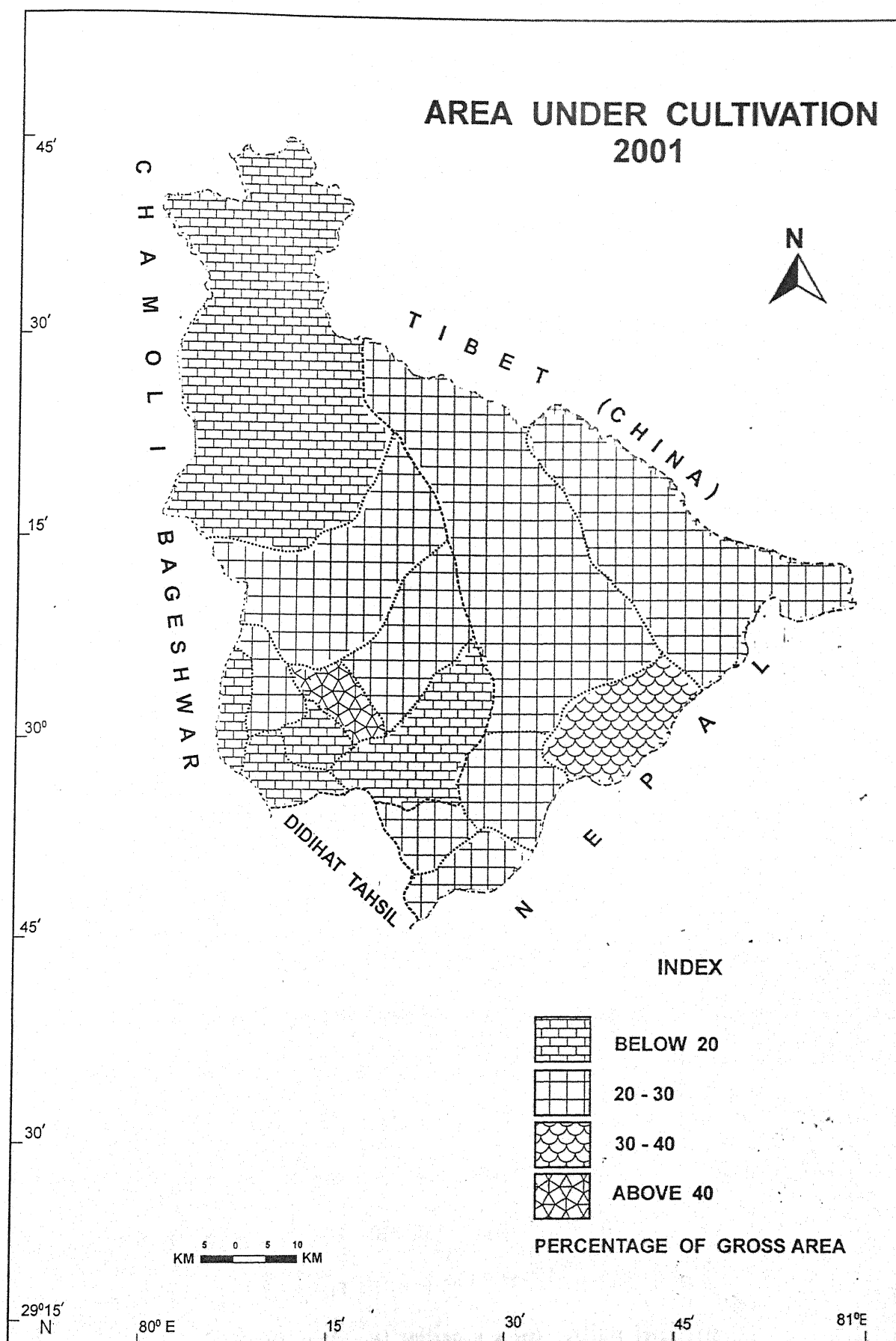
Fig. 22

उपयोग एवं भूमि अपरदन की समस्या, इस क्षेत्र की कृषि की कुछ विशिष्ट विशेषतायें हैं।

इस क्षेत्र के दोनों विकास खण्ड क्षेत्रों में शुद्ध बोया गया क्षेत्र में अत्यधिक न्यून है, जो मुनस्यारी विकास खण्ड में 18.55 प्रतिशत एवं धारचूला विकास खण्ड में 7.94 प्रतिशत है। इन दोनों क्षेत्रों के कुल फसली क्षेत्र का न्याय पंचायत स्तर पर विवरण उपलब्ध नही है अतः विकास खण्ड स्तर पर इसका विवरण तालिका 4.7 से स्पष्ट है।

तालिका 4.7

रबी एवं खरीफ फसलों के अन्तर्गत कुल फसली क्षेत्र

क्रम सं०	विकास खण्ड	शुद्ध बोया गया क्षेत्र(हे०)	एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र(हे०)	कुल फसली क्षेत्र (हेक्टेयर)	कुल फसली क्षेत्र का प्रतिशत	
					रबी	खरीफ
1.	मुनस्यारी	9927	3716	13643	5556 (40.72)	8087 (59.28)
2.	धारचूला	4246	3098	7344	2990 (40.71)	4354 (59.29)

स्रोत- साँख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ़, वर्ष 2001

उक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र का शुद्ध बोया गया क्षेत्र जनपद के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का मात्र 2.76 प्रतिशत है। इन दोनों भोटिया जनजाति क्षेत्रों का अधिकांश भाग स्थाई रूप से हिमाच्छादित है, जो कृषि कार्य हेतु उपयुक्त नही है। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ा भाग वनों से आच्छादित है (चित्र-22)।

रबी और खरीफ यहाँ की प्रमुख फसलें हैं, जिनके अन्तर्गत इस क्षेत्र का 99 प्रतिशत से अधिक शुद्ध बोया गया क्षेत्र आवृत्त है। इन दोनों फसल क्रम के अन्तर्गत मुख्यतः खाद्यान्न फसलों का अधिक उत्पादन होता है। रबी एवं खरीफ फसल काल में मुनस्यारी विकास खण्ड क्षेत्र की 13643 हेक्टेअर भूमि कृषि के अन्तर्गत रहती है जिसमें रबी फसली क्षेत्र का प्रतिशत 40.72 एवं खरीफ फसली क्षेत्र का प्रतिशत 59.28 है। इसी प्रकार धारचूला विकास खण्ड क्षेत्र की 7344 हेक्टेअर भूमि कृषि के अन्तर्गत संलग्न है, जिसमें रबी के अन्तर्गत 40.71 प्रतिशत एवं खरीफ फसल के अन्तर्गत 59.29 प्रतिशत है। इस क्षेत्र में न्याय पंचायत स्तर पर कृषि क्षेत्र में पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है।

उक्त दोनों क्षेत्रों के शस्य प्रतिरुप को तालिका 4.8 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

CROPPING PATTERN
(AREA UNDER PRINCIPAL CROPS)
2000-2001
N
CHAMOLI
BAGESWAR
TIBET (CHINA)
NEPAL
DIDIHAT TAHSIL
BHOTIA REGION
NOT TO SCALE
WHEAT
BARLEY
PADDY
MAIZE
MADUA
OGAL-PALTI
PULSES
OIL SEEDS
POTATO
OTHER CROPS
KM 5 0 5 10 KM
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
80° E
15′
30′
45′
81°E
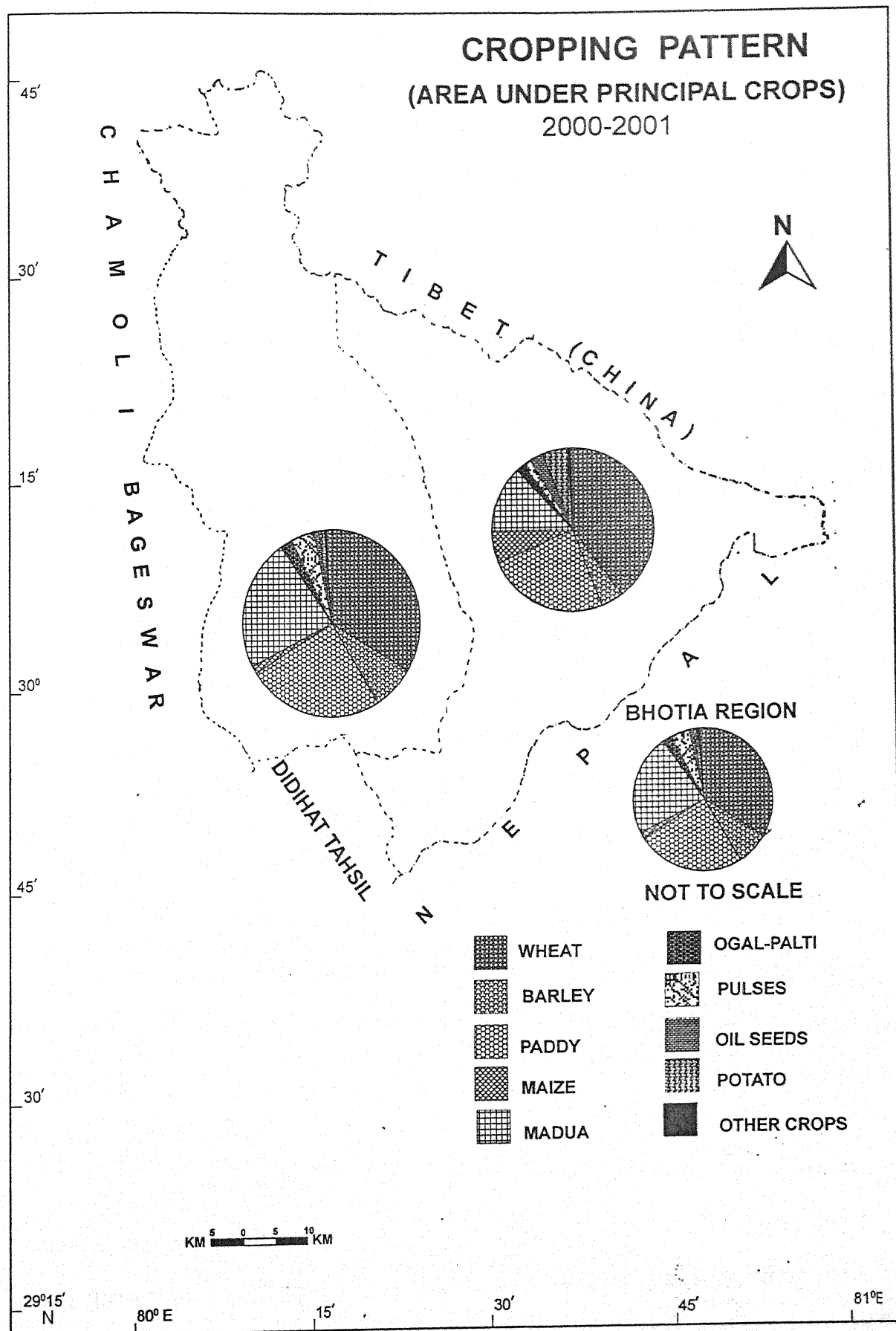
Fig. 23

तालिका 4.8

विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल का वितरण (2000-2001)

(कुल फसली क्षेत्र का प्रतिशत)

क्रम सं०	फसल	मुनस्यारी विकास खण्ड क्षेत्र	धारचूला विकास खण्ड क्षेत्र
1.	गेहूँ	34.88	40.43
2.	जौ (उवा, नपल)	7.59	4.10
3.	चावल	25.45	24.45
4.	मक्का	0.96	6.67
5.	मडुवा	22.81	13.10
6.	सावां	2.15	1.24
7.	दाल	4.16	1.42
8.	तिलहन	0.95	2.70
9.	आलू	0.96	5.80
10.	गन्ना	0.008	0.028
11	अन्य	0.090	0.070

स्रोत- साँख्यकीय पत्रिका जनपद पिथौरागढ़ वर्ष-2001

उक्त तालिका के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र का शस्य प्रतिरूप यहाँ के भौगोलिक वातावरण की विभिन्नता का प्रतिफल है। यहाँ के कृषि भूमि उपयोग को यहाँ की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था भी प्रभावित करती है। सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र में खाद्यान्न फसलों की प्रधानता है, जिसमें चावल, गेहूँ, ऊवा, फाँफर, पल्ती एवं दालें प्रमुख हैं। व्यावसायिक फसलों में तिलहन, गन्ना, एवं नकदी फसलों में आलू एवं फल प्रमुख हैं (चित्र-23)।

रबी एवं खरीफ की फसलें

इस क्षेत्र में जनपद के अन्य भागों की अपेक्षा ऋतुवार एवं क्षेत्रवार फसल बोने के समय में भिन्नता पाई जाती है। यहाँ की मुख्य फसलें रबी एवं खरीफ हैं। खरीफ वर्षा ऋतु की फसल है जो वर्षा काल के प्रारम्भ में बोकर शरद ऋतु में काट ली जाती है। खरीफ की मुख्य उपजें चावल, बाजरा, मडुवा झिंगौरा, चुआ, गहत एवं भट हैं। रबी की फसल शीत ऋतु के प्रारम्भ में बोकर ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ

PRODUCTION OF CROPS
2000 - 2001
N
TIBET (CHINA)
CHAMOLI
BAGESHWAR
NEPAL
DIDIHAT TAHSIL
PRODUCTION IN METRIC TONS
6000
5000
4000
3000
2000
1000
0
MUNSYARI
PRODUCTION IN METRIC TONS
5000
4000
3000
2000
1000
0
DHARCHULA
INDEX
CEREALS
PULSES
OIL SEEDS
OTHER CROPS
45′
30′
15′
30⁰
45′
30′
29⁰15′ N
80⁰ E
15′
30′
45′
81⁰E
KM 5 0 5 10 KM
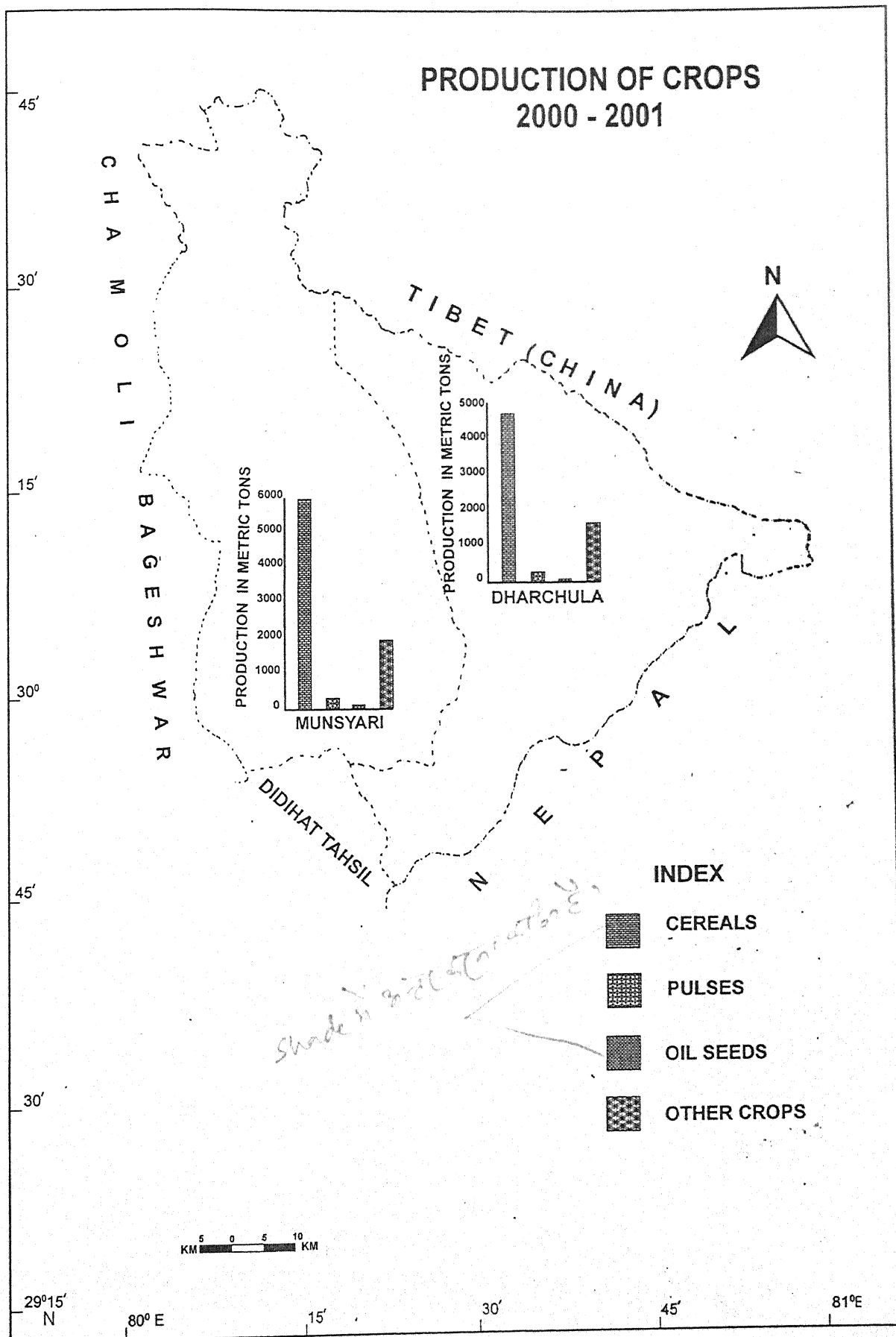
Fig -24

में काटी जाती है। गेहूँ, जौ, दाले (चना, मसूर मलका) एवं तिलहन इस फसल की प्रमुख उपजे हैं। इन फसलों के उगानें का समय ऊँचाई बढने के साथ-साथ बढता जाता है।

तिब्बत की सीमा से संलग्न मल्ला जोहार, ब्याँस एवं दारमा क्षेत्र के गाँवों के भोटिया लोग अक्टूबर-नवम्बर में फसल काटने के बाद निचली गर्म घाटियों में प्रवास करतें हैं। इस समय इस क्षेत्र में भारी हिमपात होने लगता है। अक्टूबर माह से यह प्रवास का क्रम प्रारम्भ होने लगता है तथा नवम्बर माह की समाप्ति तक सीमांत क्षेत्र के सम्पूर्ण गाँव रिक्त हो जाते हैं। शीत ऋतु में इन निचली घाटियों में फैले बुग्यालों में अपने पशुओं को चराने के बाद इनकी ऊँचे भागों में स्थित मूल गाँवों में वापसी का समय अप्रैल से प्रारम्भ हो जाता है। यह क्रम जून तक चलता है। वापसी के बाद ये लोग अपने मूल गॉवों में हिमपात के कारण मुलायम हो चुकी कृषि भूमि में फांफर, सरसों आलू ऊवा, नपल, मसूर और जडी बूटियाँ बोते हैं। अत्यधिक शीत के कारण यह फसल छः माह में पककर तैयार होती है। शीत ऋतु में निचली घाटियों में गेहूँ, जौ इत्यादि बोये जाते हैं। उच्च हिमालयी क्षेत्रों में ठंडे मौसम में बोई गई फसलें बहुत स्वादिष्ट होती हैं। ये लोग घाटियों में स्थित गाँवों में अक्टूबर माह तक रहते है। इस प्रकार इनका कृषि कार्य दो भिन्न-भिन्न ऋतुओं में दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सम्पन्न होता हैं।

शस्योत्पादन

इस क्षेत्र की प्रमुख कृषि फसलें खाद्यान्न, तिलहन एवं नकदी फसलें है। खाद्यान्न फसलों में धान्य एवं दालें आती है। धान्य फसलों के अन्तर्गत चावल, गेहूँ, जौ, मक्का, मडुवा, सावां एवं दालों के अन्तर्गत उर्द, मसूर, चना, मटर, एवं अरहर आते हैं। धान्य फसलों में सर्वाधिक उत्पादन गेहूँ चावल, एवं मडुवा का होता है। दालों में उत्पादन की दृष्टि से मसूर का प्रथम स्थान है। तिलहनों के अन्तर्गत इस क्षेत्र में लाही/सरसों, तिल, सूरजमुखी एवं सोयाबीन की फसलें उत्पन्न की जाती हैं। जिनमें सर्वाधिक उत्पादन सोयाबीन का होता है। अन्य फसलों में गन्ना, आलू एवं तम्बाकू आदि नकदी फसलें पैदा की जाती हैं (चित्र-24)।

उक्त सभी फसलों का उत्पादन न्याय पंचायत स्तर पर उपलब्ध नहीं है अतः इनके उत्पादन का विवरण विकास खण्ड क्षेत्र स्तर पर तालिका 4.9 से प्रदर्शित है।

तालिका 4.9

विकास खण्ड स्तर पर मुख्य फसलों का उत्पादन (मी0टन) - 2000-2001

क्रम सं0	फसल	मुनस्यारी विकास खण्ड क्षेत्र	धारचूला विकास खण्ड क्षेत्र
1.	गेहूँ	2215.00	1821.00
2.	जौ	275.00	185.00
3.	चावल	1836.00	1309.00
4.	मक्का	210.00	180.00
5.	मडुवा	1220.00	1160.00
6.	सावां	125.00	105.00
7.	दालें	290.00	220.00
8.	तिलहन	100.00	80.00
9.	आलू	1930.00	1680.00
10.	गन्ना	20.00	14.00
11	अन्य	25.00	15.00

स्रोत- साँख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ, वर्ष 2001

जैसा कि पूर्व उल्लेख किया जा चुका है कि इस क्षेत्र की कृषि श्रमप्रधान एवं जीविका प्रधान है। इस क्षेत्र में कृषि फसलों का उत्पादन इतना पर्याप्त नही होता है कि उनसे वर्ष पर्यन्त परिवार के लोगों का भरण पोषण सम्भव हो सके। किन्तु लोगों की ऐसी धारणा है कि यदि कृषि भूमि को खाली छोड़ दिया जायेगा तो वह एक दिन बंजर भूमि बन जायेगी। अतः वर्ष भर यहाँ के स्त्री पुरुष कृषि कार्य में संलग्न रहते है। यदि यहाँ की कृषि में लागत धन का आंकलन किया जाय, तो वह ऋणात्मक ही होगी। यहाँ की कृषि में महिलाओं का विशेष योगदान रहता है।

कृषि में नव प्रवर्तन

भोटियों का परम्परागत मुख्य व्यवसाय व्यापार है। तिब्बत से व्यापार की समाप्ति के पश्चात अब इनका प्रधान व्यवसाय कृषि तथा बागवानी होता जा रहा है। भोटांचल में अब लगभग सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि का उपयोग किया जाने लगा है। निचली घाटियों में जहाँ पहले परम्परागत ढंग से कृषि होती थी,

वहाँ कृषि के उन्नत तरीकों का भी प्रयोग प्रारम्भ हो गया है। भोटाचंल में अब शनैः शनैः बागवानी का भी विकास होने लगा है।

तेज सिंह गुंज्याल (अमर उजाला 2004) के विवरण के अनुसार भोटिया जनजाति क्षेत्रों में अब कृषि के परम्परागत तरीके बदलनें लगे हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में प्राचीन समय की परम्परागत कृषि किसानों की उदरपूर्ति तो कर देती थी किन्तु उनको इस कृषि से स्वाभिमान से जीने का अवसर नही मिल पाता था। इस कृषि से किसानों को नगद आय भी नही मिल पाती थी। किन्तु समय के साथ साथ यहाँ कृषि के तरीके भी बदल चुके हैं। धारचूला तहसील की ग्राम पंचायत सोसा के अस्सी प्रतिशत परिवार अब वर्ष में एक बार तैयार होने वाली आलू एवं राजमा की कृषि करने लगे हैं। इस आलू एवं राजमा को वे स्थानीय बाजारों के अतिरिक्त कृषि मंडियों तक पहुंचाने लगे हैं, जिससे इन्हें नगद धन की प्राप्ति होने लगी है। इससे इस गॉव में कुछ मात्रा में बेरोजगारी भी कम हुई है। इस गाँव के कुछ प्रगतिशील किसानों ने सेव के बगीचे भी लगाये हैं। सोसा गाँव के कृषकों की इस प्रगति को देखकर चौदांस क्षेत्र के अन्य गांवों के कृषक भी इस व्यावसायिक कृषि की ओर आकर्षित हो रहे हैं। मुनस्यारी तहसील के विभिन्न सीमान्त गाँवों में भी इसी प्रकार आलू एवं राजमा की व्यावसायिक कृषि की जाती है। इस क्षेत्र का आलू एवं राजमा बहुत स्वादिष्ट माना जाता है।

हिमालय का पर्वतीय भू-भाग प्राचीन काल से प्राणरक्षक औषधीय वनस्पतियों का उत्पादक स्थल रहा है। शेर सिंह पांगती (1992, 73) के अनुसार जोहार घाटी (मुनस्यारी तहसील) में जडी बूटी के विकास के लिए व्यक्तिगत तथा सहकारिता के आधार पर जडी-बूटियों के कृषिकरण का प्रयास किया जा रहा है। भेषज विकास के लिए यदि शोध संसाधनों द्वारा वैज्ञानिक विधि से इस क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली औषधीय वनस्पतियों का प्रजनन एवं परिवर्द्धन किया जाय तो यह व्यवसाय यहाँ की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार स्तम्भ बन सकता है। जिम्बू एक प्रकार की जंगली घास है जिसका 1970 के पश्चात जोहार क्षेत्र में कृषिकरण किया गया जो पूर्णतया सफल रहा वर्तमान समय में यहाँ के कुछ लोग प्रतिवर्ष लाखों रुपये का जिम्बू उत्पादित कर रहे हैं। जिम्बू के अतिरिक्त इस क्षेत्र में कुटकी, गन्द्रायन, रतनजोत, एवं अतीस की कृषि भी की जाती है।

पशुपालन

भोटान्तिक अर्थ-व्यवस्था में मनुष्य एवं पशुओं की अन्योन्य निर्भरता का विशेष महत्व है। पशुओं में भेड़, बकरियाँ, जिबू एवं तिब्बती कुत्ते आदि इनके अभिन्न सहायक एवं उपयोगी अंग रहे हैं। इस क्षेत्र

में यातायात के साधनों की कमी, दुर्गम पर्वतीय मार्गो, व्यापार में आयात निर्यात की वस्तुओं का परिवहन, अल्पाइन घास के मैदानों (बुग्याल चारागाहों) की प्रचुरता एवं मौसमी स्थानान्तरण इत्यादि कारकों ने पशुपालन व्यवसाय को अत्यधिक बढावा दिया है। अतीत में भेड-बकरियां ही पर्वतीय क्षेत्र के दुर्गम मार्गो के लिए यातायात का मुख्य साधन थीं। तिब्वत से लेकर कुमाऊँ, गढवाल तथा नेपाल के दूरस्थ दुर्गम पर्वतीय अंचलों तक नमक, ऊन, गुड एवं तेल इत्यादि उपयोगी वस्तुओं को पहुंचाने का कार्य इन्हीं भेड-बकरियों द्वारा ही होता था। भेडों का इस समाज में वही स्थान है जो तिब्वत में याक, रेगिस्तान में ऊँट तथा टुन्ड्रा प्रदेश में रेंडियर पशु का है। दुर्गम पहाडी क्षेत्रों में जहाँ घोडे, खच्चर एवं जिबू नही जा सकते , वहाँ प्रत्येक भेंड करबच (भेंड के ऊन से निर्मित थैला) में 15 से 20 किलो ग्राम तक वजन आसानी से ले जा सकती है।

डा0 एस0एस0पांगती (1992,41) का कथन है कि अतीत में जोहार मुनस्यारी का आवागमन मार्ग बहुत कठिन था। नौ बकरियों के साथ दस ढकरिया (बकरी पालक) चलकर दुर्गम मार्ग पार कर पाते थे। धीरे-धीरे यहाँ के मार्गो में सुधार हो जाने के पश्चात यहाँ के लोग भेड-बकरियों के अतिरिक्त गाय, बैल, घोडा और जिबू भी पालने लगे। बैल एवं जिबू से कृषि कार्य के साथ ही बोझा ढोने का काम भी लिया जाता था। तिब्बती पशु याक एवं भारतीय गाय से उत्पन्न नई प्रजाति को जिबू कहते हैं। जिबू पर्वतीय मार्गो में एक कुन्तल तक बोझा आसानी से ले जाता है। यहाँ तिब्बती एवं नेपाली नस्ल के घोडे एवं खच्चर भी पाले जाते हैं। नेपाल का जुमली घोडा भारवाहन तथा तिब्बती का हुमर्ती घोडा घुडसवारी के लिए अधिक उपयोगी होता है। जोहार वासी भोटियों की कृषि की अपेक्षा भेडपालन तथा व्यापार से अधिक आर्थिक लाभ को देखते हुए ब्रिटिश शासन काल में यहाँ का भू राजस्व घटाकर पशु कर लगाया गया। दूध के लिए यहाँ गाय एवं हल जोतने के लिए भारतीय नस्ल के बैल भी पाले जाते हैं।

भोटियों का परम्परागत मुख्य व्यवसाय व्यापार है। इस व्यापार को संचालित करने के लिए भेड-बकरियों, घोडो एवं जिब्बुओं का होना बहुत जरुरी है। इसीलिए व्यापार के अतिरिक्त इनका प्रमुख दूसरा व्यवसाय पशुपालन या भेड पालन माना जाता है। इन भेडों से न केवल व्यापार संचालित होता है बल्कि इनसे ऊन एवं माँस भी प्राप्त किया जाता है। भोटियों के आर्थिक जीवन में भेडपालन के महत्व को देखते हुए रमेश चन्द्र तिवारी (1977, 266) ने इनकी अर्थव्यवस्था को पशुपालन एवं कृषि पर आधारित अर्थव्यस्थाओं के बीच की अर्थव्यवस्था माना है। यद्यपि तिब्बत से व्यापार की समाप्ति के पश्चात यद्यपि इनके पशुपालन व्यवसाय को बहुत छति पहुंची है तथापि इनके प्राचीन परम्परागत ऊन

विशिष्ट कला 'पंखी', 'चुटका' के निर्माण में व्यस्त शौका नारियाँ

उद्योग में आज भी भेडपालन का महत्व पूर्ववत है।

पशुपालन के संदर्भ में भोटिया जनजाति क्षेत्रों के न्याय पंचायत स्तर पर आंकडे उपलब्ध नहीं हैं, अतः इस क्षेत्र के पशु धन का विवरण विकास खण्ड स्तर पर तालिका से प्रदर्शित है।

तालिका 4.10

विकास खण्ड स्तर पर पशुधन का विवरण

पशुधन का नाम	पशुधन की कुल संख्या	
	मुनस्यारी	धारचूला
कुल गोजातीय (देशी एवं क्रास ब्रीड)	28299	27818
कुल महिष जातीय	7120	7354
भेडें	12883	24139
बकरे एवं बकरियां	15794	19513
घोडे एवं खच्चर	493	846
सुअर	--	27
अन्य पशु	354	335
कुल पशु	64943	80032

स्रोत- साँख्यकीय पत्रिका, जनपद पिथौरागढ, वर्ष-2001

उद्योग धन्धे

भोटिया लोगों का प्रमुख परम्परागत व्यवसाय तिब्बत के साथ व्यापार था। उनके मुख्य घरेलू उद्योग या सहायक उद्योग ऊनी वस्त्र उद्योग, पशुपालन उद्योग, जडी-बूटी उद्योग एंव पर्यटन उद्योग इत्यादि इसी तिब्बत व्यापार पर आधारित थे। 1962 में भारत-तिब्बत व्यापार बन्द हो जाने के पश्चात इनका प्राचीन परम्परागत व्यवसाय समाप्त हो गया, साथ ही इनके सभी सहायक उद्योग भी मृतप्राय हो गये। इसके बाद इस कर्मठ, साहसी एवं व्यापारिक जनजाति ने अपने विघटित आर्थिक ढाँचे को पुनः व्यवस्थित करने के लिए अपने पैतृक व्यवसायों को सुदृढ करने का पूर्ण प्रयास किया। इन जनजाति के प्रमुख उद्योग धन्धों का विवरण निम्नलिखित है।
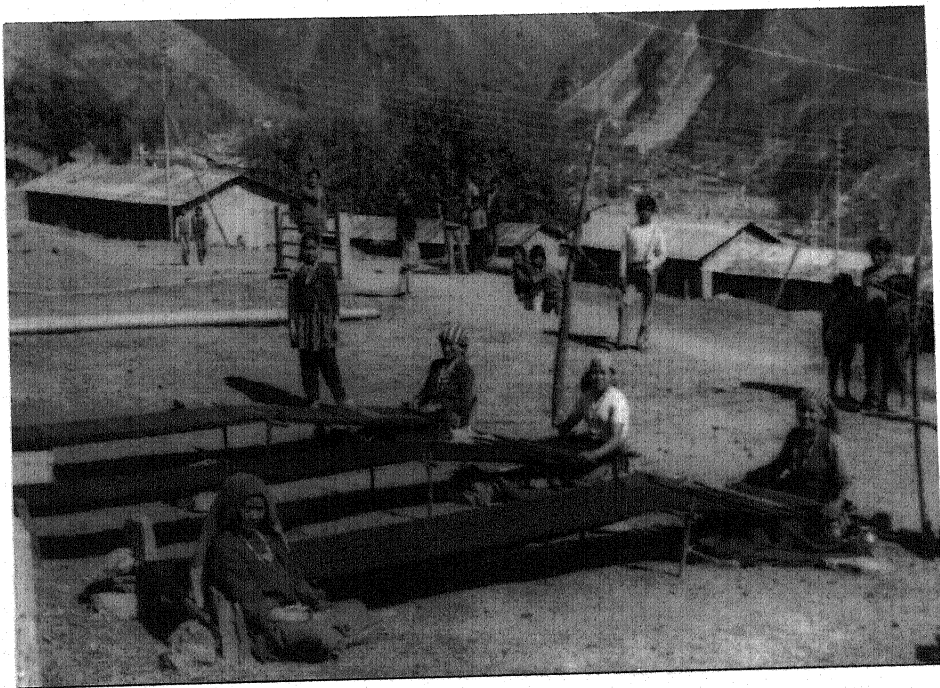
कालीन निर्माण में व्यस्त शौका नारियाँ

ऊन उद्योग

तिब्बत से ऊन का आयात होने तक ऊनी वस्त्र व्यवसाय दारमा एवं जोहार के भोटियों का प्रमुख पैतृक घरेलू उद्योग था। ऊन कातने एवं ऊनी वस्त्र तैयार करने का कार्य केवल महिलाओं तक ही सीमित था क्योंकि पुरुष वर्ग के लोगों को व्यापार के एवं पशुपालन हेतु भेड बकरियों के साथ वर्ष के अधिकांश समय तक प्रायः घर से बाहर रहना पड़ता था। इस उद्योग की प्रमुख उत्पादक वस्तुएं स्त्री पुरुषों के परम्परागत ऊनी वस्त्र, थुलमा, चुटका, दन एवं पट्टू हैं। इन सभी वस्तुओं का बाजार क्षेत्र सम्पूर्ण कुमाऊँ तथा नेपाल के पश्चिमी जिले है। जौलजीवी, बागेश्वर तथा थल मेले और नेपाल का गोकुल्या मेला विशेषतया भोटियों के द्वारा निर्मित ऊनी वस्त्रों के लिए विशेष प्रसिद्ध रहे है।

भोटिया लोग विभिन्न प्रकार की ऊनी वस्तुओं के निर्माण में बहुत दक्ष होते है। इस सम्बन्ध में रतन सिंह रायपा (1974, 244) का कथन है- " जोहार व्यांस दारमा, चौदांस के लोग ठण्डे स्थानों में रहने के कारण अन्नोत्पादन नही कर पाते। इस लिए तिब्बती ऊन से थुलमा, पंखी, कम्बल, पशमीना एवं पट्टू आदि बनाकर उदरपूर्ति करते हैं। इनकी यह कला भारत भर में प्रसिद्ध है।" रायपा का उक्त कथन ऊन उद्योग की महत्ता को प्रदर्शित करता है।

तिब्बत से व्यापार अवरुद्ध हो जाने का प्रत्यक्ष प्रभाव इनके ऊन उद्योग में प्रयुक्त होने वाले तिब्बती ऊन की आपूर्ति पर पड़ा है। नेपाल से प्राप्त होने वाला ऊन अधिक मंहगा एवं साधारण स्तर का होता है। जिससे निर्मित ऊनी वस्तुएं मशीनों से निर्मित ऊनी वस्तुओं से अधिक मंहगी पड़ती है। फिर भी अनेक समस्याओं के बावजूद आज भी इन्होनें अपने प्राचीन परम्परागत पैतृक व्यवसाय को जीवन्त बनाये रखने का सराहनीय प्रयास किया है।

भोटिया लोगों के इस प्रमुख कुटीर उद्योग की वर्तमान दयनीय स्थिति पर खेद व्यक्त करते हुए प्रताप सिंह (1970,7) का इस संदर्भ में निम्न कथन है।

"The Bhotias Prosparities Suffered a Severe Setback on account of Stopage of Trade with Tibet, Now Their main Problem is Scarcity of raw Wool, which They need to manufacture Their Famous Fabrics- The Carpets, Thulmas and blankets, specimens of exquisite work manship."

विगत कुछ वर्षो से कुमाऊँ अनुसूचित जनजाति विकास निगम ऊनी उद्योग को प्रोत्साहन देने हेतु कच्चा माल उपलब्ध कराकर, उससे निर्मित ऊनी वस्त्रों के विपणन की व्यवस्था कर रहा है। इसके

अतिरिक्त उद्योग विभाग, गाँधी आश्रम, खादी ग्रामोद्योग आदि संस्थाओं द्वारा यहाँ के लोगों को रोजगार उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

जडी-बूटी उद्योग

हिमालय का पर्वतीय भू-भाग प्राचीन काल से प्राणरक्षक औषधीय वनस्पतियों का उत्पाद स्थल रहा है। यहाँ उत्पन्न होने वाली जडी बूटियों की सैकडों प्रजातियों के औषधीय गुणों का वर्णन विभिन्न आयुर्वेदिक ग्रंथों में मिलता है। दस हजार से पन्द्रह हजार फीट की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतु के आगमन के साथ ही वर्फ पिघलने पर घास औषधीय वनस्पतियां पल्लवित होने लगती है। जुलाई माह में समस्त बुग्याल रंग- बिरंगे फूलों से युक्त हो जाते हैं और अगस्त माह के अन्त तक इनके बीज तथा कन्द परिपक्व हो जाते हैं।

उमेशचन्द्र शाह (1988,83) ने जोहार की हिमालयी ढालों एवं घाटियों में उत्पन्न होने वाली प्रमुख भेषज प्रजातियों के नाम एवं गुणों का उल्लेख किया है जो तालिका 4.11 से स्पष्ट है।

तालिका 4.11

जोहार क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली प्रमुख भेषज प्रजातियों के नाम तथा गुण

भेषज का नाम	वानस्पतिक नाम	उपयोगी अंग	गुण
अतीस	एकोनिटम हेट्रोफिलम	कन्द वत्सनाभ	ज्वर तथा उदर रोगो में उपयोगी
जिम्बू	ऐलियम स्ट्रैची	पत्ती	सूखी पत्ती का चूर्ण दाल छौंकने तथा चोट में प्रयुक्त
गन्द्रायण	एंजेलिका ग्लौफा	जड़	गरम मसाले के रूप में प्रयुक्त, उदर पीडा में उपयोगी
थोया (जंगली जीरा)	कैरम फार्वी	बीज	मसाले के रूप में प्रयुक्त, अजीर्ण व अपच में लाभप्रद
लाल जडी (रतनजोत)	मैक्रोटोनिया बेंथमाई	जड	चर्म रोग, बाल गिरने से रोकना एवं बाल काले होना
रुकी	मेगाकापिया पाली ऐण्ड्रा	पत्ती	शब्जी बनाने एवं कीटनाशक के रुप में प्रयुक्त

मासी (जटामासी)	नाइडो स्टैकिस	जड़	वायु विकार एवं मिर्गी की चिकित्सा में उपयोगी
हत्ताजडी (सालमपंजा)	अर्किस लैटिफोलिया	कन्द	मधुमेह तथा धातुरोगों के उपचार में उपयोगी
कुटकी	पिक्रोराइजा करुवा	जड़	पीलिया, दमा, ज्वर एवं उदर पीडा में लाभप्रद
जर्क	पोर्टलेका ओली - रेसिया	पत्ती	पीलिया दमा आदि रोगों में प्रयुक्त
डोलू	रियम इमोडी	जड़	आंतरिक घावों को भरने, चोट एवं मोच में उपयोगी
कूट	सासुरिया लापा	जड़	उदरशूल एवं आंतीय पीडा के लिए अचूक औषधि
चिरैता	स्वेसिया चिराता	पत्ती	उदरशूल एवं ज्वर में उपयोगी
तिमूर	जैन्थोलाइजम रलेटस	बीज का छिलका	कफ,वात खाँसी तथा वायु विकारों में लाभप्रद
निर्बिसी	डेल्फिनियम डेनुडेटम	मूल वत्सनाभ	सर्प एवं बिच्छू दंश, रक्त विकार एवं नेत्र पीड़ा में उपयोगी
भोजपत्र	बेटुला मूटिलिस	छाल	कर्णशूल व स्राव, विष विकार एवं प्रेमह में उपयोगी
मीठा विष	इकोनाइटस	मूल	सिरसूल, सन्निपात, ज्वर, खांसी, श्वांस तथा यकृत शूल में लाभप्रद
टंखझाड़	माल्वा वर्टिसिलेटा	जड़	मूत्र विकार में उपयोगी
ब्रह्मकमल	ससुरिया ओमालाटा	बीज	मानसिक विकृति एवं कटे अंग में उपयोगी
हडविष वराहीकन्द	डिस्कोरिया कन्द	कन्द	शूल, कृमि, कोष्ठबद्धता, रक्त विकार एवं प्रमेह में उपयोगी
गोकुलधूप	जूरिनेआ मेक्रो-सेफाला	मूल एवं तन्तु	अस्थि भंग, आमवात, जीर्ण ज्वर में उपयोगी
बाँख (स्नेकलिली)	एरिसेमना	कन्द	सर्प, बिच्छू, बर्रा दंश में लाभप्रद
गजनेरी	स्टेफानिया इलेगन्स	जड़	फेफड़ों के रोगों में उपयुक्त
कस्तूरी कमल	डेल्फिनियम बुनोनियम	पत्ती	जले, कटे और फोड़े-फुन्सी में उपयोगी
वनमडुवा	पोलीगोनम थिभिपेरम	बीज	आँव और पेचिस में उपयोग

वर्तमान समय में जोहार क्षेत्र के लोग उक्त वनौषधियों में से अधिकांश का उत्पादन व्यापारिक दृष्टि से करने लगे हैं। इस क्षेत्र में कार्यरत सहकारी संस्था 'पर्वतीय भेषज संघ' एवं 'कुमाऊँ मण्डल विकास निगम' द्वारा इन व्यापारिक महत्व की औषधीय वनस्पतियों का संकलन कर बिक्री की समुचित व्यवस्था की गई है।

पर्यटन उद्योग

पौराणिक कथाओं के आधार पर आदिकाल में हिमालय की उत्तुंग श्रृंखलाएं, गहरी घाटियां, विस्तीर्ण बुग्याल, घने जंगल और यहां की नैसर्गिक सुषमा ऋषि मुनियों, तपस्वियों और ज्ञान तथा शान्ति के पिपासुओं के लिए एक कर्मस्थली रहे हैं। हिमालय की गोद में स्थित जोहार घाटी की प्राकृतिक सुषमा भी अतीत से ही ज्ञानी, तपस्वियों तथा प्रकृति प्रेमियों को सदैव अपनी ओर आकर्षित करती रही है। मरतोली के शलांग ग्वार, पांछू के भदेली ग्वार तथा मिलम के धौरलाङर में कुछ तपस्वी साधुओं के खण्डहर उनकी तप साधना के परिचायक हैं। मिलम ग्लेशियर के किनारे स्थित सरोवर का नाम शांडिल्य कुंड होना एक किम्बदन्ती के अनुसार शांडिल्य ऋषि की तपस्थली बताई जाती है।

भारत में यूरोपीय लोगों के आगमन के साथ ही हिमालय के उच्च्य शिखरों पर विजय पताका फहराने के लिए अनेक विदेशी लोगों में एक प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो गई। जार्ज विलियम ट्रेल के पश्चात ऐडोल्फ, लौंगस्ट्राफ, कुर्टबुच, गैन्सीर, रटलेज आदि अनेक यूरोपियों को नन्दादेवी, नन्दाकोट, हरदेवल, और त्रिशूली आदि हिमशिखरों ने अपनी ओर आकर्षित करना आरम्भ किया। इन पर्वत प्रमियों के अनेक साहसिक कार्यो के कारण जोहार घाटी विश्व के पर्यटकों के लिए आकर्षण का एक केन्द्र बन गयी। वर्तमान समय में जोहार क्षेत्र पर्वतारोहण एवं पथारोहण की दृष्टि से उत्तरांचल में प्रमुख स्थान रखता है।

डॉ० एस०एस० पांगती (1992, 78) ने मुनस्यारी तहसील के पथारोहण स्थलों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। जो तालिका 4.12 एवं चित्र-18 से स्पष्ट है।

तालिका 4.12

पथारोहण विवरण, मुनस्यारी तहसील (अनुमानित दूरी)

क्र० सं०	अभियान	दूरी किमी०	पड़ाव	पड़ाव स्थल	मार्ग	अभियान का समय	विशेष
1.	मुनस्यारी मिलम	54	4	लीलम, बोगड्यार रिलकोट, मिलम	अश्वपथ	मई से अक्टूबर	
2.	मुनस्यारी-मलारी	142	8	मिलम से दुङ, टोपी ढुङ्न, लपथेल,मलारी	,,	जून से सितम्बर	
3.	मिलम ग्लेशियर	74	2	मिलम से दारबगड़, नित्वाल थौड़	,,	मई से अक्टूबर	हरदेवल और त्रिशूली का आधार
4.	मिलम-रालम-सीपू	50	5	मिलम से टोला, रालम याङजली, चौधारा, सीपू	ब्रिजिगाङ तक अश्व पथ	जून से सितम्बर	शिविर नित्वाल थौड़
5.	मुनस्यारी-खलिया बोगड्यार	50	5	खलिया, खनुवा बगड़ दाबली ढुङ, पोटिंग बोगड्यार	अजपथ	जून से सितम्बर	
6.	मुनस्यारी-भदेली ग्वार	60	5	बोगड्यार से मरतोली लाङर, भदेली ग्वार	अश्वपथ	जून से सितम्बर	नन्दादेवी और नन्दा कोट का आधार शिविर नाशपनपती
7.	मुनस्यारी-रालम	37	4	लीलम, पिल्थी, सापा रालम	पिल्थी तक अश्वपथ	मई, जून सितम्बर	राजरम्भा का आधार शिविर सापा
8.	मदकोट-सोबला	65	5	बोना, जिम्बा, सुमदू, सोबला	बोना तक अश्वपथ	जून से सितम्बर	

जोहार घाटी के समान दारमा, व्यास एवं चौदांस (धारचूला तहसील) क्षेत्र भी पर्यटन स्थलों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। यहां के प्रमुख पर्यटन स्थल नारायण आश्रम, कुटी, लिथलाकोट, पंचाचूली, ज्योलिंकं, छियालेख, मनेला, जौलजीवी, मौत की गुफा एवं छंगरू राखू इत्यादि है। कैलाश मानसरोवर तीर्थ यात्रा मार्ग दारमा क्षेत्र से ही होकर जाता है। यह यात्रा भारत सरकार के विदेश मन्त्रालय के निर्देशन में कुमाऊँ मण्डल विकास निगम द्वारा वर्ष 1981 ई० से प्रतिवर्ष संचालित की जा रही है। यात्रा का प्रारम्भ मई माह में होता है। प्रथम पडाव में तीर्थ यात्री काठगोदाम या अल्मोडा में विश्राम करते हैं। तत्पश्चात द्वितीय पड़ाव में बागेश्वर में एक रात्रि विश्राम करके डीडीहाट होते हुए धारचूला, तृतीय पडाव में पहुंचते है। यहाँ से आगे 17 कि०मी० तवाघाट एवं 21 कि०मी० आगे सिरखा तक यात्रीगण बस द्वारा जाते है। तवाघाट या पांगू से 100 कि०मी० की पैदल यात्रा प्रारम्भ होती है, जो कठिन संकीर्ण मार्गो, वेगवती नदी के किनारों, उच्च पर्वत श्रृंखलाओं एवं हिमाच्छादित क्षेत्रों से कैलाश-मानसरोवर की ओर प्रारम्भ होती है (चित्र-18)।

मनोज सिंह अधिकारी (2002, 57-59) द्वारा वर्णित कुमाऊँ मडंल विकास निगम द्वारा निर्धारित यात्रा पडाव एवं सम्बन्धित यात्रा मार्ग दर्शिका विवरण तालिका 4.13 से प्रदर्शित है।

तालिका 4.13

कैलाश-मानसरोवर यात्रा हेतु निर्धारित मार्गदर्शिका

क्रम सं०	स्थान	कुल दूरी किमी०	यात्रा का माध्यम	समुद्र तल से ऊँचाइ(फीट में)	विवरण
1.	तवाघाट से पांगू	91	पैदल	7260	रात्रि विश्राम
2.	पांगू से सिरखा	12	,,	8450	मार्ग में नारायण आश्रम
3.	सिरखा से माला	14	,,	8050	रात्रि विश्राम
4.	माला से मालपा	12	,,	6765	,,
5.	मालपा से बूंदी	9	,,	8845	,,
6.	बूंदी से गुंजी	18	,,	10625	,,
7.	गुंजी से काला पानी	10	,,	11880	रात्रि विश्राम (काला पानी से काली नदी निकलती है)।
8.	काला पानी से नाबीढांग	9	,,	13980	नाबीढांग पर्वत शिखर पर हिम द्वारा 'ऊँ' अंकित रहता है

9.	नाबीढांग से लिपूलेख	7	,,	16750	लिपूलेख दर्रे को पार करने पर चीन के द्वारा यात्रा का संचालन होता है।
10.	लिपूलेख से तकला-कोट	14	बस	15500	यह चीन की प्रसिद्ध व्यापारिक मंडी है। यहाँ दो दिन पूर्ण विश्राम होता है।
11.	तकलाकोट से मानसरोवर	150	बस	15000	धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करते हुए बस द्वारा मानसरोवर की यात्रा करने पर तीन दिन तथा पैदल परिक्रमा में 24 से 26 दिन लगते हैं।
12.	जयदी (मानसरोवर) से तारचिन (कैलाश)	30	टैम्पो	16200	जयदी में एक दिन का विश्राम, तारचिन से कैलाश परिक्रमा का प्रारम्भ, आगे की यात्रा पैदल या याक पशु द्वारा की जाती है।
13.	तारचिन से डेरबू	16	पैदल या याक	16500	रात्रि विश्राम, यहाँ से एक मार्ग लोगडेपु की ओर जाता है, जहाँ से सिन्धु नदी का उद्गम होता है।
14.	डेरबू से डोल मला	6	पैदल या याक	18600	डोलमा ला कैलाश परिक्रमा में सबसे ऊँचाई वाला मार्ग है।
15.	डोलमाला से जैग-जैरापुक	12	पैदल या याक	16500	इस स्थान से कैलाश पर्वत अत्यन्त निकट है।
16.	जैग जैरापुक से से जोन्यारी	9	पैदल या याक	16300	-
17.	जोन्यारी से तारचिन	10	पैदल या याक	16400	यह परिक्रमा का अन्तिम पडाव है।
18.	तारचिन से तकलाकोट	199	बस द्वारा	15500	रात्रि विश्राम, यहाँ से वापसी का क्रम प्रारम्भ होता है।
19.	तकलाकोट से लिपूलेख	19	बस	16750	-

कैलाश मानसरोवर यात्रा के दौरान इस क्षेत्र के स्थानीय लोगों का उपयोग भारवाहक (पोर्टर) एवं पथ प्रदर्शक के रुप में किया जाता है। क्योंकि इस मार्ग के प्रत्येक स्थलों की शूक्ष्म एवं पूर्ण जानकारी इन लोगों को सर्वाधिक है।

व्यापार

पिथौरागढ़ जनपद के उत्तरी सीमान्त क्षेत्र में स्थित गिरिद्वारों से संलग्न ऊपरी अधिवासों में निवास करने वाले भोटिया जनजाति के लोग यहाँ की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कृषि को कभी भी मुख्य व्यवसाय के रूप में नही अपना सके। इन्होने पशुपालन के बाद व्यापार को मुख्य व्यवसाय के रूप में चयन किया और तिब्बत व्यापार पर इनका लगभग एकाधिकार रहा। शौका समुदाय द्वारा किया जाने वाला यह व्यापार आकार की दृष्टि से भले ही बहुत वड़ा न रहा हो, किन्तु यह इनके जीवन का पर्याय था। जिन यात्राओं व प्रक्रियाओं के अन्तर्गत इनका व्यापार सम्पन्न होता था, वह शौकाओं की चरम विकसित वाणिकवृत्ति की ओर संकेत करता है। ललित पंत (1989,30) के अनुसार इस परम्परागत तिब्बत व्यापार से जुडी लम्बी हिमानी प्रान्त की यात्रायें, करार पर आधारित 'गमग्या' व्यापार प्रणाली, मित्री हक, व्यापार कर, आयात निर्यात, वस्तु संरचना व व्यापार की समृद्धि से जन्मी समान्ती प्रथा आकर्षण का विषय है।

तिब्बत व्यापार के प्रमुख व्यापारिक मार्ग

ग्रीष्मकाल आरम्भ होने पर भोटिया व्यापारी अपने पशु धन तथा व्यापारिक सामग्री सहित अपने ग्रीष्मकालीन आवासों की ओर निष्क्रमण करते थे और वहाँ से तिब्बती व्यापार की प्रमुख वस्तुओं को थैलों (करवचों) में भरकर भेड-बकरियों की पीठ पर लादकर तिब्बत की ओर जाते थे। अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983,84) के अनुसार भोटान्तिक अंचल में व्यापारियों द्वारा तिब्बत से व्यापार हेतु विभिन्न मार्ग अपनाये जाते रहे हैं। दारमा के भोटान्तिक, दारमा गिरिद्वार का मार्ग अपनाते थे और ज्ञानिमा मंडी से व्यापार करते थे। इस मार्ग के प्रमुख पडाव धारचूला, खेला, न्यू, दर, नागलिंग, गों, बिदांग, दारमाघाट, लामा छोरतेन, छकरा मन्डी एवं ज्ञानिमा मन्डी थे। इस मार्ग की दूरी लगभग 96 मील थी। व्याँस तथा चौदांस के भोटान्तिकों द्वारा अपनाये जाने वाले व्यापारिक मार्ग की लम्बाई 93 मील थी। यह मार्ग लिपूलेख दर्रे से होकर जाता था, जिसमें गरब्यांग, कालापानी, सङ्बुङ, लिपूलेख, पाला, तकलाकोट, यांचा, गोरीउड्यार, राकसताल, मानसरोवर ज्यूगोम्पा बागट, बरखा एवं दरच्येन मंडी प्रमुख पडाव थे। गोरी घाटी के जोहारी भोटांतिक ऊँटाधुरा दर्रे का मार्ग अपनाते थे। यह मार्ग लीलम से प्रारम्भ होकर

बगउडयार, रिलकोट, जयन्तीधुरा, छिरचिन, ठाजंङ, गुनेयंङ्ती तथा ज्ञानिमा मंडी पहुंचने वाला 86 मील लम्बा मार्ग था। भोटियों के तिब्बत व्यापार के प्रमुख मार्गो का विवरण तालिका 4.14 एवं चित्र 18 से प्रदर्शित है।

तालिका 4.14

भोटान्तिकों के तिब्बत व्यापार के प्रमुख मार्ग

1. लिपूलेख मार्ग (व्यास एवं चौदांस के भोटिया)

गरब्यांग 12, कालापानी 6, राङवुङ 3, लिपूलेख 5, पाला 5, तकलाकोट 12, यांचा 12, गोरीउड्यार 12, राकसताल-6, मानसरोवर-8, ज्यूगोम्पा-4, बागट-4, बरखा-4, दरछेन मण्डी (दूरी 93 मील)

2. दारमा मार्ग (दारमा के भोटिया)

धारचूला-10.5, खेला-9.5, न्यू-2, दर-14, नागलिङ-12, गो-6-विदाङ 11 डाबे 5.5, दारमाधाटी 4, गडयूल-4.25, लामा छोरतेन-12, छकरामण्डी 5, ज्ञानिमा मण्डी (दूरी 95.75 मील)

3. ऊँटाधुरा मार्ग (जोहार के भोटिया)

लीलम-7.5, बगउड्यार-7, रिलकोट-2.25, मरतोली-2.25, बुर्फू-2.5, बिल्जू-3, मिलम 2.25, दुन्ग-6.5, बोमलास 3.5, ऊँटाधुरा-3.75, जयन्ती धुरा 5, कुङरीबिङरी धुरा 12, छिरचिन 2.25, ठाजङ 9, गुनेयङ्ती-2.5, दारमायङ्ती-13.75, ज्ञानिमा मण्डी (दूरी 86 मील)

तिब्बत व्यापार की प्रमुख व्यापारिक मण्डियां

भोटान्तिकों के तिब्बत व्यापार की प्रमुख मण्डियां पश्चिमी तिब्बत में कैलाश मानसरोवर के समीपवर्ती क्षेत्र में स्थित थीं। ये मण्डियां तिब्बती अधिकारी जोङपन के अधीन होती थी। भारत सरकार की ओर से तिब्बत व्यापार हेतु भारतीय व्यापार एजेन्ट की नियुक्ति होती थी। भारत तिब्बत व्यापार सन्धि के अनुसार भोटिया व्यापारी इन व्यापारिक केन्द्रों में स्वतन्त्र रूप से व्यापार करते थे। मई से नवम्बर तक इन व्यापारिक केन्द्रों में, वस्तु विनिमय एवं क्रय विक्रय के आधार पर व्यापार होता था। तिब्बत से ऊन, सुहागा, बकरियां एवं ऊनी वस्त्र लाकर भोटिया व्यापारी नवम्बर या दिसम्बर तक भारत लौट आते थे। एस०एस० पांगती (1992, 48) के अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशक तक दारमा-ब्यॉंस तथा नीती एवं माना के व्यापारियों को अपनी निर्धारित मण्डियों में व्यापार करना पड़ता था और इसके लिए प्रतिवर्ष औपचारिक अनुमति लेनी पड़ती थी, जबकि जोहार के व्यापारी इस प्रतिबन्ध से मुक्त थे। वे सम्पूर्ण पश्चिमी तिब्बत में व्यापार कर सकते थे। पांगती के अनुसार पश्चिमी तिब्बत में

अनेक व्यापारिक मण्डियाँ थी। जिनका विवरण तालिका 4.15 में किया गया है।

तालिका 4.15

पश्चिमी तिब्बत में भारतीय व्यापारिक मण्डियाँ

1.	ब्यांस के व्यापारी	तकलाकोट मण्डी	पुराङ्जोङ्पन के अधीन
2.	दारमा के व्यापारी	छकरा मण्डी	बरखा तर्जम के अधीन
3.	जोहार के व्यापारी	ज्ञानिमा मण्डी	दाबा जोङ्पन के अधीन

व्यापार पद्धति

प्रत्येक शौका व्यापारी हुणदेश (तिब्बत) में एक हुणिया व्यापारी से मैत्री पूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करता था जो पीढी-दर-पीढी 'मुश्ये' (मित्र) कहलाते थे। इस मित्रता को प्रगाढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित व्यापारिक पद्धतियां प्रचलित थी।

सरद्दू-मलद्दू :- इसके अन्तर्गत दोनो मित्र एक ही प्याले में एक दूसरे की जूठी शराब पीते हैं। सरद्दू मलद्दू पर शौकों तथा तिब्बतियों की गहरी आस्था है। ऐसी मान्यता है कि मित्रता स्थापित करते समय जिस स्थानीय शराब (जांण) को दोनो व्यापारी पीते हैं उसमें सर- सोना, छू पानी (सोने का पानी) तथा मल-चाँदीं, छू -पानी (चाँदी के पानी) को मिलाया जाता है। यह सोने व चांदी से मिश्रित शराब दोनो मित्रों के लिए गंगाजल के समान पवित्र है।

सिंगच्याद एवं कुंडाखार :- शिवप्रसाद डबराल (1964, 104) के अनुसार प्राचीन काल में जब भोटान्तिक व हुण देश में शिक्षित व्याक्तियों का मिलना कठिन था तब 'सिंगच्याद' प्रथा से व्यापार होता था। जो व्यक्ति व्यापारिक मित्रता जोडना चाहते थे वे किसी छोटी लकडी के दो टुकडों को अपने अपने पास रख लेते थे। छल-कपट या संशय की स्थिति में लकड़ी के दो टुकडे साक्षी या प्रमाण माने जाते थे। एक अन्य 'कुंडाखार' प्रथा के अन्तर्गत कोई देवमूर्ति या धार्मिक पुस्तक सिर में रखकर व्यापारिक मित्रता की प्रतिज्ञा की जाती थी।

गमग्या व्यापार पद्धति

कालान्तर में शौका एवं हुणिया मित्रों द्वारा व्यापार प्रारम्भ करने से पूर्व लिखित इकरारनामें तैयार किये जाने लगे जिसे 'गमगिया' या 'वार्तू गमग्या' (वर्त =हमारा, गमग्या =करार) कहा जाता था। इस गमग्या व्यापार करारनामें में स्थानीय भाषा का प्रयोग होता था। जिसमें हुणिया मित्र की थिच्या (मुहर)

ली जाती थी। आगामी वर्षो में व्यापार करने के लिए भी 'गमगिया' पक्का किया जाता था। बद्रीदत्त पाण्डेय (1990, 74) के अनुसार इस प्रथा के अन्तर्गत एक पत्थर को बराबर तोडकर दोनों टुकड़ों को शौका एवं तिब्बती व्यापारी कपडे व ऊन से पृथक पृथक लपेट लेते थे और उस पर अपनी अपनी मुहर लगाकर अपने पास सुरक्षित रख लेते थे। शर्त तोडने वाले को पत्थर के टुकडे के बराबर सोना जुर्माने के रूप में देना पडता था। कालान्तर में गमग्या का महत्व बढ़ता ही चला गया और परम्परागत तिब्बत व्यापार 'गमग्या पत्रों' से होने लगा। शनैः-शनै शौका व्यापारियों की आर्थिक स्थिति खराब होने के समय गमग्या पत्रों का क्रय विक्रय भी होने लगा। सन् 1901 की 'ल्हासा सन्धि' के बाद इस परम्परागत व्यापार की जड़ें हिल गईं और स्वतन्त्र व्यापार होने लगा।

व्यापारिक कर

तिब्बत में छयौनपा (हुणिया) समुदाय से व्यापार बनाये रखने के लिए भोटियों को तिब्बती प्रशासन को अनेक कर देने पडते थे। भिन्न भिन्न उपत्यका के शौका व्यापारी अलग अलग कर दिया करते थे। राहुल सांकृत्यायन (1958, 141) के अनुसार जोहार के शौका व्यापारी गिरिद्वार खुलने का कर 'लायल' के रूप में 90 भेली गुड या 45 रुपया जोनपेंन को देते थे। इसी प्रकार, व्यॉंस चौदांस के शौका व्यापारियों को तकलाकोट मण्डी में पहुंचनें पर जोंगपेन को 45 बाक्स (11 21 कुन्तल) अनाज देना पडता था। तिब्बती व्यापार मण्डियों में शौका व्यापारियों को छोगठल (व्यापार कर), लगोठल (मेषकर), रौंगठल (शौका बस्ती पर कर), साठल (भूमि व मिट्टी पर कर), पाठल (धूप पर कर), प्यूगर (दबाव कर), थपकाठल (चूल्हे जलाने का कर), चेरिंग-चारिंग (चारागाह कर) आदि कर देने पड़ते थे। इसके अतिरिक्त जिन वस्तुओं का व्यापार होता था, उन पर भी कर लगाकर तिब्बती प्रशासन आय अर्जित करता था। तिब्बती कर के अतिरिक्त शौका व्यापारियों को भारत में भी व्यापार कर देना पडता था।

तिब्बत के साथ व्यापार (1962 से पूर्व)

ललित पन्त (1989, 35) के अनुसार तिब्बत व्यापार का प्रथम विवरण 1843 की बेटन की बन्दोबस्त रिपोर्ट में मिलता है। 1840 41 में जोहार, दारमा, व्यांस के शौका व्यापारियों द्वारा 1,55700 रुपये के माल का आयात तथा 79,375 रुपये के माल का निर्यात हुआ। यह व्यापार कुल 2,35,075 रुपये का हुआ। 1880-82 के व्यापार अभिलेखों से विदित होता है कि इन चालीस वर्षों में व्यापार क्रमशः ढाई गुना बढ़कर 5,81,061 रुपये का हो गया। जिसमें जोहार के गिरिद्वारों से अधिकतम्

36.25 प्रतिशत एवं दारमा ब्यॉस से 34.55 प्रतिशत व्यापार हुआ। बीसवीं सदी के प्रारम्भ के व्यापार आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि 1901-02 में उत्तराखण्ड के गिरिद्वारों से कुल व्यापार 10,77,000 रुपये का हुआ, जिसमें व्यांस-दारमा की हिस्सेदारी अधिकतम 53.48 प्रतिशत तथा जोहार की 28.3 प्रतिशत थी। इस समय लगभग चार लाख रुपये का व्यापार लीपूलेख गिरिद्वार (व्यांस) से हो रहा था जो 1840 के 35,900 रुपये व्यापार से ग्यारह गुना अधिक था जबकि इसी अवधि में जोहार के गिरिद्वार से व्यापार वृद्धि मात्र सवा दो गुनी अधिक हो सकी।

आयात एवं निर्यात होने वाली वस्तुएं

1936 के ज्ञानिमा व गढतोक व्यापारिक मण्डियों के व्यापार अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि तिब्बत से आयात होने वाली वस्तुओं में नमक, सुहागा, तिब्बती ऊन, खालें, चंबर, कस्तूरी, स्वर्णचूर्ण, ऊनी वस्त्र, गलीचे, पंखियां, बकरे तथा झिप्पू (याक की एक प्रजाति) आदि प्रमुख थीं। भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं में अनाज, जौ, चावल, ऊआ, गेहूँ, सूती वस्त्र, मिल के बने ऊनी वस्त्र, ऊनी धागा, दरी, देशी कपड़ा, सूखे फल, विसातखाने का सामान, चाय, गुड, तेल एवं बर्तन आदि मुख्य थे। धीरे ध ीरे आयात निर्यात में क्रमिक परिवर्तन आते गये। 1954 में चीन के व्यापारियों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद ब्यांस के शौका कमीशन पर कार्य करने लगे। ये लोग दस से पन्द्रह प्रतिशत भारतीय तथा बीस से पच्चीस प्रतिशत चीनी व्यापारियों से कमीशन लेकर भारतीय बाजारों से कीमती वस्तुएं तिब्बत पहुंचाने लगे। 1959-60 में व्यापार में अनेक अनियमिततायें उत्पन्न हो गई और 1962 में चीनी आक्रमण से तिब्बत व्यापार पूर्णरूप से समाप्त हो गया।

लीपूलेख से सीमा व्यापार पुनः आरम्भ (15 जुलाई 1992)

विगत तीस वर्षो के अन्तराल के बाद ली पूलेख दर्रे (16780 फीट) से सीमा व्यापार पुनः शुरु हुआ। द्विदेशीय व्यापार को विधिवत आरम्भ करने सम्बन्धी समस्त औपचारिकतायें 1 जुलाई 1992 को भारत-चीन व्यापार संधि में हस्ताक्षरों के साथ पूर्ण हुई। 15 जुलाई 1992 से गुंजी (धारचूला) और तकलाकोट (तिब्बत) मंडियों में सीमा व्यापार आरम्भ कर दिये जाने की घोषणा की गई। यह घोषणा एक ओर जहाँ भारत व चीन के पुराने सम्बन्धों में पड़ी दरार को पाटने की दिशा में एक अच्छी राजनैतिक पहल समझी गई वही दूसरी ओर क्षेत्रीय स्तर पर हिमालय के आर पार, भारत तिब्बत सीमा में निवास करने वाले उन अनेक आदिम समाजों के बीच व्यापार एवं सांस्कृतिक मूल्यों के आदान प्रदान की समृद्ध

परम्परा को पुनः स्थापित करने की दिशा में एक ठोस कदम व बंद पड़े गिरिद्वारों के खुलने की सुखद शुरुआत के रूप में भी लिया गया। इस व्यापार के पुनः आरम्भ होने से ऐसा लगने लगा है कि ब्यॉंस घाटी में विकास का क्रम पुनः गतिमान हो गया है और लीपूलेख दर्रे के इस ओर व्यांस घाटी के अनेक ग्रामों बूंदी, गूंजी, नपल्च्यू, नाबी, रौंगकौंग, व कूटी में विगत अनेक वर्षो से बंद पड़े मकानों में पुनः चहल-पहल बढ़ी हैं इस व्यापारिक पहल से यह आशा बंधती है कि सीमा व्यापार के लिए कुछ नये क्षेत्रों की पहचान अब तेजी से होगी और ब्यॉंस घाटी की भांति ही जोहार एवं दारमा की हिमालयी घाटियों में जीविका के पुरातन व्यापार से जुडे जीवन्त स्रोत पुनः खुलेंगे और वहां के निवासियों की थमी जिंदगी को नयी गति तथा दिशा मिल सकेगी।

डा0 ललित पंत (1995, 37) के अनुसार वर्णित लीपूलेख गिरिद्वार से सीमा व्यापार 1992 का विवरण तालिका 4.16 से प्रदर्शित है।

तालिका 4.16
लीपूलेख गिरिद्वार से सीमा व्यापार-1992

आयात			
क्र0 सं0	वस्तु का नाम	मात्रा	मूल्य (रु0 में)
	सशुल्क आयात		
1.	तिब्बती ऊन	4854 किग्रा0	130380.00
2.	पराश ऊन (गोट कश्मीरा)	2404 किग्रा0	192360.00
3.	जूते	10 जोडी	800.00
			323540.00
	स्वतन्त्र आयात		
1.	नमक	230 किग्रा0	850.00
2.	सुहागा	6225 किग्रा0	49800.00
3.	चंबर पूंछ	430 किग्रा0	43000.00
4.	भेड-बकरियां	3634 किग्रा0	685200.00
			778850.00
कुल आयात मूल्य रु0			**1102390.00**

निर्यात			
क्र0 सं0	वस्तु का नाम	मात्रा	मूल्य (रु0 में)
	सशुल्क निर्यात		
1.	तम्बाकू	5479 किग्रा0	84938.00
2.	कॉफी	627 किग्रा0	170880.00
3.	वनस्पति तेल	1908 किग्रा0	66300.00
			322118.00
	स्वतन्त्र निर्यात		
1.	सूती वस्त्र	44166 मीटर	453398.00
2.	गुड़	18470 किग्रा0	224700.00
3.	मिश्री	8095 किग्रा0	161900.00
4.	फांफर का आटा	8793 किग्रा0	43925.00
5.	सिगरेट	2 पैकेट (बड़ा)	1600.00
6.	कम्बल	6 नग	720.00
7.	घोड़ों की घंटियाँ	90 नग	2700.00
8.	विसातखाता	30 पैकेट	35100.00
9.	मोम	760 किग्रा0	7600.00
10.	सूखे फल	30 किग्रा0	6500.00
11.	एल्यूमिनियम के वर्तन	32 किग्रा0	3500.00
12.	लहसुन	300 किग्रा0	2700.00
13.	माचिस	900 पैकेट बडे	10100.00
14.	सूखी मूली	400 किग्रा0	2010.00
15.	चावल	70 किग्रा0	700.00
16.	मादिरा आटा	270 किग्रा0	540.00
कुल निर्यात मूल्य रु0			**1279811.00**

भारत-चीन व्यापार की वर्तमान स्थिति

वर्ष 1962 से पूर्व वस्तु विनिमय के आधार पर संचालित होने वाले भारत तिब्बत व्यापार को भारत-चीन सम्बन्ध बिगड़ जाने के बाद 1962 में बन्द कर दिया गया था। भारत चीन सम्बन्धों में सुधार होने के वाद वर्ष 1992 में इस व्यापार को पुनः प्रारम्भ किया गया। भारतीय व्यापारी जहां तकलाकोट (चीन) की मंडी में मिश्री, गुड, तम्बाकू आदि वस्तुओं का निर्यात करते हैं, वहीं तकलाकोट से रेशम, ऊन, खाल, छिरपी, याक की पूंछ आदि वस्तुओं का आयात करते हैं। भारत-चीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रतिवर्ष जून से सितम्बर माह तक चलता है। भारतीय क्षेत्र में गुंजी (धारचूला पिथौरागढ़) में व्यापारिक मंड़ी एवं तिब्बत (चीन) में तकलाकोट में व्यापारिक मंडी स्थापित की गई हैं भारतीय क्षेत्र में यह व्यापार लीपूलेख गिरिद्वार से संचालित होता है।

वर्ष 1992 से 2005 तक के विगत 15 वर्षों के भारत-चीन व्यापार का विवरण तालिका 4.17 से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 4.17

भारत-चीन व्यापार (1992-2005)

वर्ष	आयात (रुपयों में)	निर्यात (रुपयों में)
1992	1102390.00	1279811.00
1993	2180000.00	-
1994	16800000.00	-
1995	32700000.00	
1996	51500000.00	-
1997	46800000.00	
1998	33000000.00	-
1999	29000000.00	-
2000	29500000.00	-
2001	48000000.00	-
2002	72000000.00	
2003	56100000.00	-
2004	148700000.00	-
2005	12140225.00	391238.00

स्रोत- अमर उजाला नैनीताल संस्करण 2 जून 2005, एवं दैनिक जागरण नैनीताल संस्करण 3 नवम्बर 2005

तेजसिंह गुन्ज्याल, धारचूला पिथौरागढ (दैनिक जागरण 3 नवम्बर 2005) के अनुसार भारत-चीन व्यापार इस वर्ष (2005) में भारत सरकार की गलत नीतियों के कारण फीका रहा। और यह व्यापार एक क़रोड के अन्दर ही सिमट गया। भारत सरकार के नवीनतम व्यापारिक आदेश, व्यापार अवधि समाप्त होने तक नही प्राप्त होने से कस्टम विभाग ने भोटिया व्यापारियों से चीन द्वारा आयातित करोडों रुपये की लागत का चीनी रेशम जब्त कर लिया। इसके अतिरिक्त भेड़ बकरियों पर प्रतिबन्ध लग जाने के कारण इस वर्ष चीन से एक भी भेड का आयात नही हो सका। इस प्रकार सरकार की अदूरदर्शिता के चलते चीन से रेशम एवं भेड-बकरियों का आयात न हो पाने से भारतीय व्यापारियों को इस वर्ष भारी निराशा हुई है।

भारत-चीन व्यापार में प्रतिवर्ष भारत के सैकड़ों व्यापारी चीन की व्यापारिक मंडी तकलाकोट पहुंचते है किन्तु चीन से भारतीय मंडी गुंजी आने वाले व्यापारियों की संख्या नाममात्र ही रहती है। इससे भी चीन के साथ भारतीय व्यापार को प्रतिवर्ष काफी छति पहुंचती है। वर्ष 1992 से 2005 तक चीन एवं भारत की व्यापारिक मंडी तकलाकोट एवं गुंजी में पहुचनें वाले व्यापारियों का विवरण तालिका 4.18 से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 4.18

चीन एवं भारत की व्यापारिक मंडियों में व्यापारियों की संख्या

वर्ष	तकलाकोट (चीन) पहुंचने वाले भारतीय व्यापारियों की संख्या	गुंजी (भारत) आने वाले चीनी व्यापारियों की संख्या
1992	281	08
1993	374	12
1994	313	
1995	336	43
1996	366	12
1997	339	
1998	346	
1999	260	06
2000	322	04
2001	283	
2002	449	02
2003	384	
2004	457	
2005	311	

स्रोत- अमर उजाला, नैनीताल संस्करण- 1 जून एवं 2 जून 2005

संदर्भ

अधिकारी मनोज सिंह (2002)	:	युग प्रवर्तित कैलाश मानसरोवर की सार्थकता एवं सम्बद्ध पक्ष : एक ऐतिहासिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्धक, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, पृष्ठ 57 59
अमर उजाला,	:	नैनीताल संस्करण 1 एवं 2 जूंन 2005
खनका, एस०एस० (1990)	:	एक्सटेन्ट एण्ड पासीबिलिटीज ऑफ मैन पावर यूटीलाइजेशन इन एग्रीकल्चर इन कुमाऊँ हिमालयाज, हिमालय : इन वायरोनमेन्ट रिसोसर्स एण्उ डेवेलपमेन्ट, पृष्ठ 441
गडकोटी, जे०सी० (1988)	:	रिसोर्स एप्रेसल एण्ड एरिया डेवेलपमेण्ट इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर, पृष्ठ 130
चौहान, डी०एस० (1966)	:	स्ट्डीज इन यूटीलाइजेशन ऑफ एग्रीकल्चरल लैण्ड, पृष्ठ 3
जोशी, अवनीन्द्र कुमार (1983)	:	भोटान्तिक जनजाति : ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ-78.
जोशी, एस०सी० एवं अन्य (1983)	:	कुमाऊँ हिमालय : ए ज्योग्रिफिकल पर्सपोक्टिव आन रिसोर्स डेवेलपमेन्ट, पृष्ठ 217 218.
जिम्मरमैन, ई०डब्लू० (1951)	:	वर्ल्ड रिसोर्सेस एण्ड इन्डस्ट्रीज, पृष्ठ 86.
डबराल, शिवप्रसाद (1966)	:	उत्तराखण्ड के भोटान्तिक, पृष्ठ, 104
तिवारी, रमेशचन्द्र (1977)	:	हिमानी सीमान्त के प्रकृति पुत्र, कुमाऊँनी संस्कृति, सम्पादक-बटरोही, पृष्ठ-266
पन्त, एस०डी० (1995)	:	द सोसियो इकोनामी ऑफ द हिमालयन्स, पृष्ठ 95
पन्त, ललित (1989)	:	हिमालयी व्यापार : सिमटती हुई समृद्धि, पहाड़, अंक 3-4, परिक्रमा तल्ला डांडा, नैनीताल, पृष्ठ 30
पन्त, ललित (1995)	:	लीपूलेख से सीमा व्यापार, पहाड, अंक 8, पृष्ठ 37
पांगती, शेर सिंह (1992)	:	मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति : जोहार के शौका पृष्ठ-73

पाण्डेय, बद्रीदत्त (1937) : कुमाऊ का इतिहास, पृष्ठ 74

बारलो, आर० (1963) : लैण्ड रिसोर्स इकोनामिक्स, पृष्ठ 1

रायपा, रतन सिंह (1974) : शौका सीमावर्ती जनजाति, पृष्ठ 248

शाह, उमेश चन्द्र (1988) : उत्तराखण्ड की प्रचलित वनौषधियाँ, उत्तराखण्ड, पृष्ठ, 83 91

स्टाम्प, डडले (1970) : प्रोवलम्स ऑफ प्रिमिटिव पीपुल्स ऑफ यू०पी०, ए० पायनियर फीचर, 2 फरवरी पृष्ठ, 7

सांस्कृत्यायन, राहुल (1958) : कुमाऊँ, पृष्ठ-141.

सांख्यिकीय पत्रिका (2002) : कार्यालय अर्थ एवं संख्याधिकारी जनपद पिथौरागढ़

अध्याय पंचम्

सामाजिक जीवन एवं परम्परागत सामाजिक नियम

भोटिया जनजाति के सामाजिक जीवन एवं परम्परागत सामाजिक नियमों के अध्ययन के बिना उनके सांस्कृतिक परिवेश की सम्यक् जानकारी प्राप्त करना असम्भव है। सामाजिक जीवन के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था, पारिवारिक संरचना, पारिवारिक शिष्टाचार, परिधान, आभूषण एवं खान पान की जानकारी प्राप्त की जाती है। इन्हीं तत्वों के परिप्रेक्ष्य में परम्परागत सामाजिक नियमों की पृष्ठभूमि तैयार होती है। प्रस्तुत अध्याय में भोटिया जनजाति के सांस्कृतिक आधार स्तम्भ, सामाजिक जीवन एवं परम्परागत सामाजिक नियमों का वर्णन किया गया है।

सामाजिक व्यवस्था

पिथारौगढ़ जनपद की भोटिया जनजाति को दो मुख्य सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। इन दोनों क्षेत्रों की सामाजिक व्यवस्था में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है। जिसका विवरण निम्नलिखित है -

जोहार (मुनस्यारी) के भोटिया

इ०टी० एटकिन्सन (1981, 114) के अनुसार जोहार के भोटिया राजपूत एवं ब्राह्मण दो जातियों में विभक्त हैं। वे अपनी उपजातियों जैसे गोत्र, शाखा एवं प्रवर के विषय में अनभिज्ञ हैं। कुछ लोग अपनी उत्पत्ति गढवाल के रावतों से मानते हैं और स्वयं को कौंशिल गोत्र का मानते हैं जबकि अन्य बनारस के भट्टों से सम्बन्धित मानते हैं और कौशिक गोत्र बतलाते हैं। ये पवित्र धागा (जनेऊ) नही पहनते हैं किन्तु अन्य हिन्दुओं की तरह शिखा रखते हैं। जोहार में भोटिया ब्राह्मणों के प्रमुख वंश द्विवेदी, पाठक, काराखेती, नौरागी, पोल्वाल, उपाध्याय, दरमोला एवं नगीला हैं। राजपूतों में जंगपांगी एवं टोलिया स्वयं को नेपाल के जुमला क्षेत्र से आये हुए मानते हैं। मरतोलिया अपने को बनारस के भट्टों से सम्बन्धित मानते हैं। इन राजपूत वर्गों के नाम बिर्जू, बुर्फू, मीलम, नमजल, सेन, रिलकोट, चुलकोट, रिंगू, लास्पा, ल्वाल, धामीगाँव, सेनाथी, खिलांच, मानी, घोरपाटा, धापा, रालम, हरकोट, एवं पपाडा इत्यादि गॉवों के नाम पर पडे हैं। इसके अतिरिक्त पाँक्ती, नित्वाल, महतास अस्पवाल, कुनकिया, शुमत्याल, तमक्याल, जोश्याल एवं भोट्याल लोगों के नाम भी गाँवों के नाम पर आधारित है।

जोहार के प्रमुख इतिहासविद् डा०एस०एस० पांगती (1992, 29 36) ने जोहार की भोटिया

जनजाति को दो सामाजिक वर्गों में विभक्त किया है। ये वर्ग हैं शौका वर्ग एवं नित्वाल वर्ग।

शौका वर्ग :- कुमाऊँ में चन्द शासन काल के उत्तरार्द्ध में जोहार में केवल ल्वांल, बुर्फाल एवं रहलम्बालों का प्रभुत्व था। इस समय कुछ बाहरी लोग भी यहाँ आकर निवास करने लगे थे। इनमें मिलम के मिलम्वाल एवं मरतोली के मरतोलिया प्रमुख थे। ये लोग परस्पर लडते झगडते रहते थे। अतः प्रत्येक गाँव वाले अपनी जनशक्ति बढाने के लिए बाहरी व्यक्तियों को बुलाकर उसे अपनी जाति बिरादरी में सम्मिलित कर लेते थे। यही कारण है कि जोहार के भोटियों की प्रत्येक गर्खा (उपजाति) में अलग अलग राठें (वर्ग) हैं और एक बिरादरी के होते हुए भी प्रायः उन राठों के मूल पुरुष एक नही हैं। सत्रहवीं शताब्दी में जोहार के बारह गांवों में बाईस उपजातियों के शौका निवास करते थे जो बारह गर्खा कहलाते थे। कालान्तर में इन बारह गर्खाओं की भी पृथक्-पृथक् उपजातियाँ बन गई।

नित्वाल वर्ग :- जोहार के शौका समाज द्वारा वैदिक संस्कृति अपनाने से पूर्व धार्मिक अनुष्ठान तिब्बती लामा गुरुओं से न कराकर प्रत्येक गाँव में शौका समाज के ही एक वर्ग द्वारा सम्पन्न कराये जाते थे। यह वर्ग नित्वाल वर्ग कहा जाता था। ये नित्वाल वर्ग के लोग गढवाल के विभिन्न भागों से आकर यहाँ के विभिन्न गांवों में बस गये थे। ये लोग देवी-देवताओं के धामीं (पुजारी) होते थे। इस कार्य हेतु पूजा के अवसर पर गांव की ओर से उन्हे कुछ उपहार दिया जाता था। इन लोगों का वैवाहिक सम्बन्ध अन्य शौकाओं के साथ न होकर नित्वाल लोगों में ही होता था।

जोहार के शौका समाज में जाति व्यवस्था के अनुसार धार्मिक तथा सामाजिक कार्य विभाजन के अतिरिक्त एक सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन की भी व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक गांव में कार्य कुशलता के आधार पर बूढा, फौजदार तथा सयाना आदि पद बनाये गये थे। परिवार के सबसे बडे पुत्र या गांव के सबसे वयस्क व्यक्ति को बूढाचारी का पद दिया जाता था जो गांव का मुखिया होता था। यह पद वंशानुगत था। बूढाचारी की सहायता तथा पडोसी गांव के साथ लडाई झगडे में उनका सामना करने के लिए साहसी तथा वीर व्यक्ति को फौजदार बनाया जाता था। बूढाचारी का पद ही कालान्तर में प्रधान का पद बन गया। बूढा और फौजदार के पश्चात गांव के एक बुद्धिमान तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति को सयाना पद दिया जाता था जिसका कार्य गाँव के पारस्परिक विवादों का न्यायोचित ढंग से निपटारा करना था। बूढा और सयाना के कार्य में सहायता करने के लिए प्रत्येक गांव में रिङ्ला की नियुक्ति की जाती थी। समाज तथा क्षेत्र के सामाजिक कार्यो को सुव्यवस्थित रुप से संचालित करने हेतु बूढा तथा सयाना के अतिरिक्त जोहार के बारह गर्खाओं का एक सामूहिक संगठन भी था। गोरखा

शासनकाल में जोहार के प्रत्येक गांव में पंचायत राज व्यवस्था थी।

दारमा के भोटिया

इ०टी० एटकिन्सन (1981, 114) का कथन है कि दारमा पट्टी में ब्राह्मण नहीं हैं। दारमा मल्ला एवं तल्ला में राजपूतों के अनेक वर्ग हैं जिनका नामकरण विभिन्न गांवों के नाम से हुआ है। जैसे बौन से बौनाल, दुग्तू से दुग्ताल। इसके अतिरिक्त लामा, फीलम, चल, शीपू, शौन, दर, जुम्कू, बतन, गारछा, गो एवं दांतू इत्यादि गांवों के नाम से विभिन्न राजपूतों बंशों के नामकरण हुए हैं। ब्याँस पट्टी के राजपूत वंशों के नाम गरब्या, तिंखर, कुथी, छलमा, नाभी, नपल्च्यू, गुंजी, बूंदी इत्यादि गांवों के नाम से पडे हैं। चौदांस के लोग चौदांरी कहलाते हैं।

दारमा क्षेत्र के प्रसिद्ध शिक्षाविद् रतन सिंह रायपा (1974, 45-54) का कथन है कि दारमा ब्याँस तथा चौदांस के भोटिया स्वयं को राजपूत कहते हैं और भोटान्तिक बोली में अपनी जाति 'रं' बताते हैं। रं का शाब्दिक अर्थ भुजा होता है। ऋग्वेद (10.90.12) के पुरुष सूक्त में ब्रह्मा की भुजाओं से क्षत्रिय की उत्पत्ति मानी गई है। मनुस्मृति (1.5.1) में भी चारो वर्णो का क्रमशः मुख, वाहु, जंघा एवं पाद से उत्पन्न होने का उद्धरण मिलता है। यहाँ के शौका समाज में एक ही वर्ग या जाति के लोग पाये जाते हैं। यहाँ पाये जाने वाले अनुसूचित जाति के लोग कुमाऊँ के ही लोगों के एक वर्ग से हैं। दारमा के शौका समाज में यदि जाति वर्ग दिखाई देता है तो वह मात्र धन दौलत या विद्वता के आधार पर पाया जाता है। इसके अनुसार समाज में दो वर्ग पाये जाते हैं - स्यंमी (धनी व्यक्ति) तथा यामी (निर्धन व्यक्ति)। किन्तु यह उच्च या निम्न जाति को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त नही होता है। शौका अपने नाम के बाद सिंह लिखते हैं जो इनके क्षत्रिय वर्ग से सम्बन्धित होने का प्रमाण है।

पं०राहुल सांकृत्यायन (1958, 39-40) ने जोहार एवं दारमा की जातियों का स्पष्टीकरण करते हुए उल्लेख किया है कि जोहार में ब्राह्मणों व राजपूतों में जातिभेद है किन्तु दारमा ब्याँस व चौदांस में ब्राह्मण नही हैं केवल राजपूत ही हैं। शौका समाज में कर्म के आधार पर भी जातियां निर्धारित हैं। शौकाओं में ग्वन (मृतक संस्कार) में अमरीचा ही ब्राह्मण का कार्य करता है। डंगरिया (जिसके शरीर में देवताओं का प्रवेश माना जाता है), अपने आदर्श व उच्च कर्म के कारण समाज में पूजनीय होता है।

दारमा के भोटिया (रं) कई उपजातियों में विभक्त हैं। प्रायः गाँवों के नाम पर ही इनकी उपजातियां बनी हैं जैसे गर्ब्यांग से गर्ब्याल, नाबी से नबियाल, सिर्खा से सिर्खाल एवं गो से ग्वाल। गाँव के नाम से बनी जातियाँ पुनः कई उपजातियों में विभक्त हैं। ये उपजातियाँ सोरा (राठ) कहलाती हैं।

ये अलग-अलग गोत्रों को व्यक्त करती हैं। प्रत्येक राठ का किसी पशु, वनस्पति या प्राकृतिक वस्तु विशेष के साथ सम्बन्ध जोडा गया है जिसकी वे कुलचिन्ह या गणचिन्ह (टोटम) के रुप में पूजा करते हैं। कुलचिन्ह उस राठ विशेष का रक्षक एवं सहायक दैवी-शक्ति का प्रतीक है।

दारमा क्षेत्र में प्रत्येक ग्रामवासियों के लिए एक व्यंग्यात्मक शब्द भी प्रयुक्त किया जाता है जो उपजाति सूचक शब्द न होकर केवल आलोचना या छीटाकसी के लिए प्रयुक्त होता है। समस्त ब्यांस पट्टी में मात्र बूंदी ग्राम में ही लंगूर पाये जाते हैं अन्यत्र नहीं अतः बूंदी ग्रामवासियों को खोली (लंगूर) कहा जाता है। समस्त चौदांस पट्टी में छिपकलियां बहुत पाई जाती है। अतः चौदांस के लोगों को जंखो (छिपकली) कहा जाता है। समस्त दारमा पट्टी के शौकाओं का प्रिय भोजन दू (पल्ती का आटा व घी से बना भोजन) है। अतः उन्हें 'दू' कहा जाता है।

पारिवारिक संरचना

भोटिया बोली में परिवार के लिए 'खू' शब्द प्रयुक्त होता है। जिसका शाब्दिक अर्थ धुवाँ होता है। चूंकि भोटिया परिवार के सभी सदस्यों के लिए एक ही चूल्हे में खाना बनता है अतः परिवार के लिए खू शब्द का प्रयोग उपयुक्त है। इनमें परिवार के लिए 'मौ' शब्द भी प्रयुक्त होता है। इस समाज में पितृप्रधान परिवार पाये जाते हैं। पिता या परिवार का वरिष्ठ पुरुष ही परिवार का प्रधान या प्रबन्धकर्ता होता है। यहाँ पिता के नाम पर वंश चलता है। निःसंतान व्यक्ति द्वारा दत्तक पुत्र रखने पर वंश परंपरा उस पुत्र के गोत्र से ही चलती है। यदि कोई व्यक्ति निःसंतान है तो वह अपने भाई के द्वितीय पुत्र या किसी भी अन्य बच्चे को धर्मपुत्र बना सकता है।

परिवार के मुखिया के आदेशों का पालन करना प्रत्येक सदस्य के लिए आवश्यक है। परिवार के सभी सदस्यों के मध्य कार्य विभाजन स्पष्ट रुप से पाया जाता है। पुरुष वर्ग का प्रमुख दायित्व कृषि एवं व्यापारिक कार्यो द्वारा धनोपार्जित करके भोजन, वस्त्र एवं मकान की व्यवस्था करना है जबकि स्त्री सदस्यों के मुख्य कार्य पारिवारिक दायित्व के साथ ही साथ कृषि कार्य में सहायता करना एवं ऊन की कताई करना है। ब्यांस पट्टी में पुरुष वर्ग के लोग तिब्बत व्यापार को जाते हैं अतः यहाँ स्त्रियाँ भोजन व्यवस्था के अतिरिक्त कृषि कार्य भी करती हैं। चौदांस पट्टी के भोटियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। अतः यहाँ स्त्रियाँ कृषि कार्य में संलग्न रहती हैं और पुरुष वर्ग भोजन निर्माण में उनकी सहायता करते हैं। जोहार क्षेत्र में स्त्रियों के सम्पूर्ण कार्य घर की चाहारदीवारी के अन्दर तक ही सीमित हैं।

अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983,35-36) के अनुसार भोटिया समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली

विद्यमान है। जोहार के भोटियों में संयुक्त परिवार का कोई भी सदस्य अन्य सदस्यों की सहमति के बिना सम्पत्ति का अपना भाग अन्य किसी व्यक्ति को हस्तान्तरित नही कर सकता। पिता के जीवित रहते हुए पुत्रों का पैतृक या स्वयं अर्जित सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही होता। वे पिता के जीवन काल में सम्पत्ति के विभाजन की मांग नहीं कर सकते और न ही पिता की सम्पत्ति पुत्रों या पौत्रों द्वारा लिए गये ऋण की अदायगी के लिए प्रयुक्त हो सकती है। पिता अपनी पैतृक या स्वअर्जित सम्पत्ति को इच्छानुसार किसी को भी हस्तान्तरित कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति सम्पत्ति के विभाजन के उपरान्त निःसंतान दिवगंत हो जाता है तो उसकी सम्पत्ति का हिस्सा उसकी विधवा पत्नी को मिलता हैं। दारमा, ब्यांस एवं चौदांस के भोटिया समाज में पुत्र अपने पिता के जीवित रहते हुए भी सम्पत्ति के विभाजन की मांग कर सकते हैं। विभाजन की स्थिति में या तो सम्पन्ति का कुछ भाग पिता के लिए छोड दिया जाता है अथवा एक या अधिक पुत्र पिता के भरण- पोषण का उत्तरदायित्व वहन करते हैं। सम्पत्ति के विभाजन के बाद यदि पिता के अतिरिक्त सन्तान होती है तो पुनः विभाजन आवश्यक हो जाता है जिसमें विभाजन के बाद उत्पन्न संतान को भी समान भाग प्रदान किय जाता है। दारमी, ब्यांसी और चौदोंसी भोटियों में विधवा स्त्री अपने पति की उतराधिकारिणी होती है।

भोटिया परिवार में प्रधान सदस्य का सम्मान सर्वाधिक होता है। भोजन के समय सर्वप्रथम प्रधान सदस्य को भोजन का थाल दिया जाता है। किसी भी पारिवारिक कार्य पर उसकी पूर्व स्वीकृति अनिवार्य होती है। स्त्री वर्ग में परिवार की जेष्ठ सदस्या का उच्च स्थान होता है। वह मुलिनरानी (चूल्हे की रानी) कहलाती है। थाल परोसने का कार्य उसी के हाथ से होता है। घर के बर्तनों एवं कृषि यन्त्रों की देखरेख, घरेलू पशुओं की देखभाल एंव भोजन सामग्री की व्यवस्था उसके मुख्य कार्य है। युवकों का कार्य ईधन व्यवस्था, हल लगाना एवं पिता या जेष्ठ भ्राताओं के साथ व्यापारिक गतिबिधियों में सहायता करना है। लडकियों का कार्य पानी भरना, बर्तन साफ करना, ओखल कूटना ,घास काटना व अन्य कृषि कार्यो में सहायता करना है।

रतन सिंह रायपा (1974, 70-71) के अनुसार भोटिया परिवार की मुख्य विशेषता पारिवारिक प्रेम है। भोटिया लोगों में सदाचार, शिष्टाचार, उदार भावना एवं विश्वास के गुण पाये जाते हैं। पारिवारिक विभाजन के समय परिवार के सदस्य स्वयं निर्णयकर सम्पत्ति का विभाजन कर लेते हैं। ''तुम्हे जो घर मिला है उसके निकट के खेत तुम ले लो और अधिक कमरों वाला मकान मुझे दे दो, क्योंकि मेरे बच्चे अधिक है, इस प्रकार के सौहार्द्पूर्ण शब्द विभाजन के समय भाइयों के मुख से प्रायः सुनने को

मिलते हैं।'' जनार्दन पाण्डे (1936 1971) के अनुसार प्रत्येक शौका एवं शौका परिवार अपने श्रम पर आश्रित रहता है। शौका वस्त्रहीन होकर भी कडाके की सर्दी सहन कर सकता है। फाँफर व पल्ती की सूखी रोटी खाकर अपनी भूख मिटा सकता हैं किन्तु किसी के समक्ष हाथ फैलाना उसकी प्रकृति नही है।

इस समाज में स्त्रियों का स्थान विशेष सम्मानजनक है। वे पुरुषों के प्रत्येक कार्य में उसकी सहभागिनी होती है। सुखदेव पन्त (1935, 187) का कथन है कि भोटिया (शौका) लोगों में विशेष रूप से दारमा, ब्यांस व चौदांस में स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में पुरुष वर्ग तो सदैव व्यापार के लिए घर से बाहर रहता है। अतः समस्त घरेलू कार्य स्त्रियां ही सम्पन्न करती हैं। डा० शिवप्रसाद डबराल (1966,140), इस क्षेत्र की नारियों की प्रशंसा करते हुए कहतें है कि वे सदैव प्रसन्न रहती हैं और साधारण विपत्तियों की चिन्ता न करते हुए सदैव हंसती रहती हैं। वे स्वावलम्बी, पुरुषार्थी, कष्टसहिष्णु और अपनी सूझ बूझ से कार्य में संलग्न रहती हैं। वे सदैव भविष्य के लिए कुछ न कुछ बचाकर रखती है। परिस्थितियों ने उन्हें मितब्ययी, अग्रसोची और साहसी बना दिया है।

भोटिया समाज में एक पत्नी प्रथा का प्रचलन है। जोहारी शौका स्त्रियों में पर्दा प्रथा है किन्तु दारमा की शौका स्त्रियों में पर्दा प्रथा नही है। वे श्वसुर, देवर एवं अन्य किसी अपरिचित व्यक्ति से खुलकर बात करती हैं। इस समाज में अनमेल एवं अन्तर्जातीय विवाह भी होते हैं।

पारिवारिक शिष्टाचार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज का आदर्श सदस्य बनने के लिए उसे कुछ सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करना आवश्यक होता है। सामाजिक कर्तव्य ही कालान्तर में आचरण, व्यवहार एवं शिष्टाचार में परिवर्तित हो जाते हैं। प्रत्येक समाज की परम्परागत मान्यतायें व रीतिरिवाज भिन्न भिन्न होती है। अतः प्रत्येक समाज के व्यवहार, आचरण एवं शिष्टाचार के प्रतिमान भी पृथक् पृथक् होते हैं। भोटिया समाज में पारिवारिक शिष्टाचार के निम्नलिखित सामाजिक नियम प्रचलित हैं।

प्रणाम करने के ढंग -

शौका बोली में प्रणाम् के लिए 'ढोक' शब्द प्रयुक्त होता है। इस समाज में प्रणाम् करने के अनेक प्रचलित हैं। पूज्यनीयों या बृद्ध लोगों को प्रणाम् करते समय बच्चे अपने सिर को झुकाकर उनके घुटनों पर रख देते हैं। प्रत्युत्तर में बच्चे को 'पूदे' (दीर्घायु हो) कहकर आशीर्वाद दिया जाता है। ब्यांस और चौदांस में दोनों हाथों को मिलाकर, कमर झुकाकर जेष्ठ व्यक्ति के चरणों का स्पर्श किया जाता है। दारमा

में भी प्रणाम् करने की यही विधि प्रचलित है किन्तु यहाँ जेष्ठ व्यक्ति प्रत्युत्तर में प्रणामकर्ता के दोनों कपोलों में अपनी हथेलियां लगाता है।

आशीर्वाद देना

इस समाज में बृद्ध या पूज्यजन बच्चों के सिर पर अपना हाथ रखकर 'पूदै' या 'टंयो रीयो' (दीर्घायु, चिरंजीव) शब्द कहकर आशीर्वाद देते हैं।

शुभ कामनाएं देना

भोटिया समाज में शुभ कामनाएं विशेष शब्दों, शुभसूचक वस्तुओं एवं मंगल गीतों के माध्यम से व्यक्त की जाती है। परिवार की युवतियाँ परिवार के सदस्यों के सुखमय जीवन के लिए पात्र में मदिरा भरकर एवं उसे दूर्वा एवं पुष्पों से अलंकृत करके 'शोकनू' करती हैं। वे ईश्वर से कामना करती हैं कि इस पुष्पित पुष्प की तरह ही इनका जीवन पल्लवित एवं पुष्पित होता रहे। पुनः किशोरियां पुष्प एवं हरी घास के तिनकों को सभी के सिर में चढाती हैं। देवपूजा के शुभ अवसर पर चांदी निर्मित दिये जलाये जाते हैं। इसी प्रकार बायें हथेली में अक्षत रखकर तथा दायें हाथ से अक्षत उछालकर व्यक्ति विशेष या देवी-देवताओं के प्रति शुभ कामनाएं व्यक्त की जाती है।

बैठकों में शिष्टाचार

भोटिया समाज में साधारण बैठक या भोजन के समय कमरे के अन्दर प्रत्येक सदस्य के बैठने का स्थान निर्धारित रहता है। दरवाजे के विलोम ऊपरी भाग में परिवार का जेष्ठ पुरुष सदस्य बैठता है। इसके पश्चात् क्रमशः अन्य पुरुष सदस्य, जेष्ठ स्त्री सदस्या व घर के अन्य सदस्य बैठते हैं। अतिथियों को जेष्ठ पुरुष के बाद स्थान दिया जाता है। पुरुष पालथी लगाकर कालीन पर बैठते हैं। स्त्रियां अपने पैरों को अंग्रेजी के एक्स आकृति में मोडकर बैठती हैं। कमरे के अन्दर जूता पहनकर बैठना अशिष्टता माना जाती है। किन्तु स्त्रियों को ऊन निर्मित 'बव्वै' (जूती) पहनकर अन्दर बैठना अशिष्टता नही मानी जाती है।

सम्बोधन विधियाँ

इस समाज में अपने परिवार, मित्रों तथा सम्बन्धियों को उनका नाम लिये बिना ही सम्बन्ध सूचक शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। अज्ञात पुरुष को प्रायः 'थंमी' (मामा) व 'काकू' (चाचा), तथा बुजुर्गो को 'तेते' (दादा) व 'लला' (दादी) इत्यादि शब्दों से सम्बोधित करते हैं। अपने से छोटो का नाम लेना भी अशिष्ट समझा जाता है। छोटों को 'नुनु' (छोटा भैया), 'रिन्स्या' (छोटी बहिन), 'नमस्या' (बहू) तथा

'भन्ज' (भान्जा), शब्दों से पुकारते हैं। पति पत्नी भी एक दूसरे का नाम नही लेते। वृद्ध पति पत्नी 'ढेरा' (बुड्ढा), 'ढेरी' (बुढिया) शब्द का प्रयोग करते है।

वस्तु को ग्रहण करने के ढंग

शौका लोग किसी भी ग्राह्य वस्तु को स्वयं हाथ से नही उठाते हैं। वे उसे दोनों हाथ की हथेलियां फैलाकर ग्रहण करते हैं। किसी बैठक में थाल या प्लेट में रखी वस्तु को स्वयं उठाना शिष्टाचार के विरूद्ध है। वितरणकर्ता प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में थाल रखता है। भोजन के समय परोसी गई थाल प्रत्येक सदस्य के हाथों में दी जाती है। मदिरा के प्याले भी हाथ में ही दिये जाते हैं।

विदाई के ढंग :-

शौकाओं का जीवन वस्तुतः अस्थाई होता है। उनके समझ विदाई के क्षण प्रायः आते रहते है। जब कोई भोटिया व्यापार हेतु प्रस्थान करता है तो प्रातः काल ही सभी इष्ट देवी देवताओं के मन्दिरों में जाकर धूप दीप के साथ ध्वजा बाँधता है। परिवार के सभी सदस्य इन देवी देवताओं को पुष्प एवं अक्षत अर्पित करते हैं। लडकियां सभी के मस्तक पर पुष्प एवं दूर्वा डालती हैं। सभी सदस्य उस व्यक्ति को व्यापार की सफलता हेतु शुभ कामनाएं देते हैं। परिवार के सभी सदस्य घर से पर्याप्त दूरी तक विदा होने वाले व्यक्ति के साथ-साथ जाते हैं। जब विदा होने वाला व्यक्ति अधिक दूरी तक चला जाता है तब दो व्यक्ति ऊंचे स्थल पर खडे होकर सफेद रंग के लम्बे वस्त्र के दोनों किनारों को पकडकर हवा में लहराते हैं। विदा होने वाला उसका प्रत्युत्तर अपनी रूमाल को हिलाकर देता है। विदा लेने वाले के दृष्टि से ओझल होने तक इस सफेद वस्त्र को हिलाते रहने का तात्पर्य यह है कि विदा होने वाला व्यक्ति सदैव पूर्ववत् स्नेह करता रहे।

परिधान

भोटिया लोगों के परम्परागत परिधान उपादेयता एवं जलवायु जनित आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं। इनके परिधानों में समय-समय पर अनेक परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान समय में इनके परिधानों में नवीनता एवं आधुनिकता का समावेश भी दिखाई देता है। इनके परम्परागत परिधानों का वर्णन निम्नवत् है।

पारम्परिक परिधान में रंङ महिलायें

पुरुषों के परिधान

हिमानी प्रदेश की कठोर शीत से बचने के लिए भोटिया लोगों को ऊनी वस्त्र पहनना अति आवश्यक है। इनके अधिकांश वस्त्र ऊन निर्मित होते हैं। जोहार एवं दारमा के पुरुष वर्ग के परिधानों में कुछ अन्तर दृष्टिगत होता है।

एस0एस0 पांगती (1992, 111) के अनुसार जोहार के पुरुष वर्ग प्रायः सफेद ऊनी पायजामा एवं ऊनी 'बखुला' (चोंगा) पहनते हैं। कमर में सूती वस्त्र से बखुला को कसा जाता है। कुछ लोग कमर पर 'पंखी' (ऊनी चादर) लपेटे रहते हैं। युवक वर्ग ऊनी या सूती टोपी पहनते हैं और वृद्ध लोग पगडी बाँधते हैं। शनैः-शनैः जोहार में 'बखुला' के स्थान पर सफेद ऊनी कोट पहनने का प्रचलन होता गया। पुरुष वर्ग चमडे का जूता 'धौडी' पहनते है। बर्फ पर चलने के लिए भेडों के मोटे ऊन से निर्मित वस्त्र को घुटनों तक कसकर बाँध दिया जाता है जिसे 'सेक' कहते हैं। सेक के तले पर चमडा भी लगा होता है।

रतन सिंह रायपा (1974, 134 143) के अनुसार दारमा के पुरुष वर्ग का परम्परागत वस्त्र ऊनी 'रंगा' है। यह गाउन या लम्बे कोट के समान घुटनों से नीचे तक पहुंचता है। सिर में पगडी 'ब्येन्ठलो' पहनते हैं। यह रेशम या अण्डी का वना होता है। कमर से नीचे चूडीदार ऊनी पायजामा (खसखरी या गैजू) पहनते है। कमर में सफेद वस्त्र से रंगा को कसा जाता है। इस वस्त्र को 'ज्योज्यं' कहते है। कुछ रंगा ऊन के अतिरिक्त रेशम व सूत से निर्मित होते है, जिनमें सोना, चाँदी व काँच द्वारा जडे हुए बेलबूटे होते हैं। इन्हे 'जुगू' कहा जाता है। यहाँ के पुरुष वर्ग के पूर्ण परिधान को 'रंगा ब्येन्ठलो' कहा जाता है।

स्त्रियों के परिधान

जोहार की शौका महिलायें लंहगे के ऊपर कंधे से नीचे घुटनों तक ऊन निर्मित एक चादर (कामला) लपेटे रहती हैं और कमर पर लगभग पाँच मीटर सफेद सूती वस्त्र का कमरबन्ध (पाकडा) बाँध ाती हैं। ये सिर में दो मीटर की एक सफेद खोपी धारण करती हैं। इस खोपी के माथे वाले भाग के किनारे पर खिमराब की पट्टी लगी होती है। महिलाओं के कामला एवं आङरा (अंगिया) ऊन से बने होते हैं। उक्त सभी ऊनी परिधान महिलायें स्वयं निर्मित करती हैं।

दारमा की शौका स्त्रियों का परम्परागत परिधान 'च्युंभाला' कहलाता है। 'च्युं' कमर से ऊपर तथा 'भाला' कमर से नीचे पहना जाता है। च्युंभाला ऊन से निर्मित होता है। यह केवल दो रंगों से ही

रंगा जाता है। नीले रंग का च्युंभाला (तिनच्युं) तथा लाल गेरुवा रंग का (मंच्युं) कहलाता है। इसके किनारों में रंगबिरंगे रेशमी तागों से बेलबूटे बनाये जाते हैं। च्युं आधे आस्तीन की होती है। बांह के अगले हिस्से में रंकलपै पहना जाता है। सिर में सफेद एवं बेलबूटों से युक्त शंकु के आकार की टोपी (च्युकरी) पहनी जाती हैं जो पीछें पीठ में लटकती रहती है। पैरों में ऊनी बब्वै पहने जाते हैं जिसे घुटनों के नीचे एक फीते से बाँधा जाता है। महिलायें पुरुषों के समान सफेद लम्बे रेशमी या सूती वस्त्र ज्यूज्यं से कमर बाँधती हैं।

बच्चों के परिधान

भोटिया समाज में छोटे-छोटे बच्चे कोट तथा कमीज के साथ टोपी पहनते हैं। लड़कियां घाघरी (झुगला) पहनती है। इस परिधान को दारमा में 'झुकु' कहते हैं। यह परिधान छींट या अन्य रंगीन वस्त्रों से तैयार की जाती है। घाघरी को कमर में ज्यूज्यं से कसा जाता है।

भोटिया लोगों के परम्परागत परिधान ऐसे होते हैं जिनसे व्यक्तित्व को निखारने के अतिरिक्त आसानी से प्रत्येक कार्य करने में सुविधा एवं कठोर शीत से सुरक्षा होती है। किन्तु यह खेद का विषय है कि कुछ वर्षो से इनके परिधानों में क्रांतिकारी परिर्वतन हुए हैं। वर्तमान समय में नवीन पीढी के शिक्षित युवक-युवतियां आधुनिक फैशन के परिधान पहनने लगे हैं और इनके प्राचीन परम्परागत परिधानों का प्रचलन मात्र कुछ वृद्धजनों के अतिरिक्त नगण्य सा देखने को मिलता है।

आभूषण

भोटिया जनाजाति की महिलाओं में आभूषण पहनने की प्रथा अतीतकाल से ही प्रचलित है। यद्यपि परिधानों में परिवर्तन के साथ ही प्राचीन आभूषण भी लुप्त होते जा रहे हैं तथापि यहाँ की महिलाओं में आभूषण के प्रति मोह कम नही हुआ है। इस समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के आभूषणों का विवरण निम्नवत् है।

सिर एवं चेहरे के आभूषण

जोहार क्षेत्र की महिलायें नाक में नथ और बिड़ तथा कानों में मुनरे पहनती है। ये सभी आभूषण सोने से बने होते है। नथ दस से0मी0 ब्यास की और अन्दर से खोखली होती है। इसे केवल सुहागिन महिलायें ही पहनती है। नाक मे नथ और पूर्ण नासिका दण्ड़ पर लाल सिन्दूर (पिठाँ) लगाना सुहागिन नारी की विशिष्ट पहचान मानी जाती है। स्त्रियाँ कर्णपट पर चांदी या सोने के छोटे छोटे रिंग, मुरकी, बुजनी तथा गोखर पहनती हैं। शनैः-शनैः महिलाओं में कान में मुरकी एवं मुनरा के स्थान पर कर्णफूल

और झुमके पहनने का प्रचलन शुरु हुआ। लड़कियाँ कान में सोने की मुरकी पहनती हैं।

दारमा क्षेत्र की महिलायें सिर में बीराबाली, छौंकरो बाली, तथा पतेली बाली पहनती हैं। ये सभी आभूषण चाँदी से निर्मित होते हैं। ये नाक में वीरा, कान में बाली व लकछेप पहनती हैं जो स्वर्णनिर्मित होते हैं। पुरुष कान में लकछेप तथा हाथ में नं (कड़ा) पहनते हैं, जो कर्णवेध संस्कार के समय पहनाया जाता हैं। यह नं (कडा) मामा अपने भान्जे को पहनाता है जो चाँदी से बना होता है।

गले के आभूषण

जोहार की महिलायें गले में झुपिया पहनती है जो सोने की बनी होती है। चांदी के बने सुतुवा, त्वाड़, चन्द्रहार और सोने व मूंगे.के दानों से गुंथे त्यलड तथा मोहन माला गले के प्रमुख आभूषण हैं। दारमा क्षेत्र की महिलायें गले में कंठी, खौंगली, बलडंग, चन्द्रार (चन्द्रहार), चम्पाकली एवं च्युंग नामक आभूषण पहनती हैं। ये सभी आभूषण चाँदी से बने होते हैं। बलडंग में चाँदी के सिक्के पिरोये जाते हैं। महिलायें गले में शेर व कस्तूरी मृग के दाँतों को सोने तथा चाँदी से मढ़वाकर पहनती हैं। इनमें मिट्टी से निर्मित मालायें (साली-पुली) धारण करने का विशेष प्रचलन है। जिसे वैदिक युग की देन मानी जाती है। मालाओं में लाल रंग की मिट्टी से वनी रयेपली तथा मंसाली प्रमुख हैं। तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद महिलाओं में मंगा (ज्यूरू) तथा पिरोजा (इयू) की मालाओं का भी प्रचलन प्रारम्भ हुआ। छोटे बच्चों को सीप एवं शंख की मालायें पहनाई जाती हैं।

हाथ के आभूषण

जोहार की महिलायें हाथ में आठ सेमी० चौड़ी चाँदी की गोल पट्टी की चूड़ी तथा लगभग चालीस चाँदी के दोनों को गूंथकर कलाई पर बाँधने वाला आभूषण पौंजि और धागुला धारण करती हैं। ये तर्जनी अंगुली पर चॉदी की बनी पुलिया पहनती है। दारमा क्षेत्र की महिलायें हाथ में बहाँ, अंगूठी तथा नं (कडा) धारण करती हैं। ये सभी आभूषण चाँदी से बने होते हैं। यहाँ हाथ में सोने व चांदी से निर्मित मुन्दरी (लक्छेप) पहनी जाती है।

कमर के आभूषण

भोटिया महिलायें कमर में लगभग पाँच मीटर सफेद सूती कपड़े का पाकडा (कमरबन्ध) या ज्यूज्यं बाँधती हैं अतः कमर में आभूषण धारण करने का प्रचलन कम है। जोहार की महिलायें कमर में चालीस सेमी० लम्बा चाँदी निर्मित इत्रदान या स्यू साङ्ल धारण करती हैं जिसमें साज सज्जा की विभिन्न सामग्री रखी जाती है।

पाद आभूषण

जोहार की महिलाओं के प्रमुख पाद आभूषण पाँच सेमी० चौडी पट्टी से बना मैजाम, तार से बना झडतार एवं अमृततार आदि हैं। ये सभी आभूषण चाँदी निर्मित होते हैं। लड़कियां पैरों में चाँदी का एक खोखला गोल आभूषण 'गिनाल' पहनती हैं। दारमा क्षेत्र मे पाद आभूषणों का प्रचलन नहीं हैं, क्योंकि यहां महिलाओं के लम्बे अधोवस्त्र से उनके पैर ढके रहते हैं।

व्यक्तिगत साज सज्जा या अलंकरण

भोटिया क्षेत्र में शीताधिक्य के कारण महिलायें अपने सम्पूर्ण शरीर को ऊनी वस्त्रों से ढके रहती हैं। यहां की महिलाओं में प्रायः एकवेणी धारण करने का प्रचलन है। वेणी के ऊपरी भाग को पुष्प हार से सुसज्जित किया जाता है। यहां की महिलायें सिर में दो मीटर की सफेद खोपी या च्युक्ती पहनती हैं, जो पीछे पीठ में लटकती रहती है। अतः यहाँ बालों को सजाने-संवारने का प्रचलन बहुत कम है।

जोहार की महिलायें अपने कमर में चाँदी से निर्मित इत्रदान लटकाये रहती हैं। इस इत्रदान में इत्र रखने के लिए चांदी की छोटी डिबिया, कान साफ करने हेतु चाँदी की एक छोटी चिमटी (कनकुडी), आभूषण साफ करने हेतु सुअर के मोटे बालों से निर्मित सुङ्र्याल एवं कस्तूरी मृग की दाढ़ इत्यादि वस्तुऐं रखी रहती हैं। आँखों में जड़ी-बूटियों से निर्मित अंजन तथा मुंह में अंगराग का अनुलेप किया जाता है। वर्तमान समय में यहाँ की महिलायें अनेक सौंदर्य प्रसाधन की वस्तुओं का भी प्रयोग करने लगी हैं।

अतीत् काल में शौका महिलाओं में अधिकाधिक एवं सुन्दरतम आभूषणों को धारण करने का प्रचलन था। वे सिर से लेकर घुटनों तक प्रत्येक अंग को आभूषणों से अलंकृत करती थीं। वर्तमान समय में यहां की महिलाएं एवं युवतियाँ इन प्राचीन परम्परागत आभूषणों एवं परिधानों का परित्याग करके नवीन फैशन युक्त आभूषणों एवं परिधानों को धारण करने लगी हैं किन्तु जब किसी उत्सव या त्यौहार के समय यहाँ की महिलायें अपने मूल परम्परागत परिधानों तथा आभूषणों को धारण करती हैं, तब उन्हें देखकर शौका समाज के प्राचीन कलात्मक आभूषणों की स्मृति पुनः तरोताजा हो जाती है।

खानपान

भोटिया जनजाति के लोगों का खानपान इस क्षेत्र की भौगोलिक विशिष्टता के कारण कुमाऊँ के अन्य भागों के जनजीवन से एकदम पृथक् है। इनके खानपान में जलवायुविक दशाओं, पशुपालन एवं कृषि उपजों के क्षेत्रीय वितरण का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। इनके खानपान का विवरण निम्नवत् है :-

भोजन के प्रकार

भोटिया लोगों द्वारा भोजन में प्रयुक्त विभिन्न वस्तुओं के आधार पर उनकी भोजन व्यवस्था को अधोलिखित प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

भक्ष्य पदार्थ

शौका भोजन के मुख्य व्यंजन छाकू (भात), छम्मा (साग, दाल) तथा कुटो (रोटी) है। गेहूँ के आटे की रोटी को 'कनकू-कूटो' कहा जाता है। निर्धन शौका परिवारों का मुख्य भोजन स्याल्यि कुटो (फांपर की रोटी) या पल्ती कुटो (ओगल की रोटी) है। इस रोटी को बिना सब्जी, मिर्च के साथ भी खाया जाता है। पूरी या भक्षी (लौनी कुटो), मर कुटो, स्येल बटकू आदि घी में बनने वाले अन्य स्वादिष्ट व्यंजन हैं। तीचम्प्येन शौका लोगों का विशिष्ट भोजन है। आटे को गूंथकर रसगुल्ले की आकृति में तैयार कर उसमें विभिन्न प्रकार के मसाले डालकर उसे घी या तेल में तलकर खाया जाता है। माँस इनके भोजन का प्रमुख अंग है। ये भेड, बकरी, पक्षी एवं कुछ जंगली पशुओं (घुरड़, कस्तूरी) मृग का माँस खाते हैं। माँस को सुखाकर, बडी की तरह, दाल की जगह इसका प्रयोग होता है।

भोज्य पदार्थ

इनके द्वारा प्रयुक्त मुलायम खाद्य पदार्थो में छम्मा (साग, दाल), सिल्दू (गेहूँ व फाँपर के आटे का घोल), यी (जौं, नपल एवं उवा का बना सत्तू), मक्खन (लबू), दूध एवं तेल हैं। सब्जियों का प्रयोग साग (छम्मा) तथा टिपक्या के रूप में होता है। ये सब्जियां घरेलू खेतों के अतिरिक्त जंगलों से भी प्राप्त की जाती हैं। कुछ प्रमुख सब्जियाँ यकन, प्यकन, घमकन, मयिनकन एवं खाकन इत्यादि हैं। मूली का प्रयोग सब्जियों के अतिरिक्त और विशेष ढंग से भी होता है। गेहूँ एवं फाँपर के आटे को घोलकर उसमें नमक मसाले डालकर सिल्दू का निर्माण किया जाता है। जौं, उपल तथा उवा को पीसकर सत्तू (यी) या केक (बारी) बनाया जाता है। सत्तू व नमकीन चाय स्वल्पाहार के रूप में लिये जाते हैं। यहां देवी-देवताओं को पूजते समय सत्तू का धलं केक अर्पित किया जाता है। घी का प्रयोग यहां अधिक होता है। नमकीन चाय में मक्खन (लबू) डाला जाता है। मूंगफली की तरह डंठल्ली नामक वृक्ष के फलों से तेल निकालकर उसका प्रयोग भोजन बनाने में किया जाता है। दूघ का प्रयोग यहां प्रत्येक परिवार में होता है।

चोष्य एवं पेय पदार्थ

इस क्षेत्र के लोगों का प्रमुख पेय पदार्थ नमकीन चाय है। इसे शौका बोली में 'ज्या' या 'मरज्या'

कहा जाता है। यह यहाँ के प्रत्येक परिवार में प्रतिदिन प्रयुक्त होती है। इसको बनाने की एक विशिष्ट विधि होती है। मरज्या अर्थात नमकीन चाय बनाने के लिए काष्ठ का थरमसनुमा एक विशेष बर्तन होता है। दारमा घाटी में इसे दुग्मा या ढौंभू ब्यांस घाटी में दोगंबो एवं मुनस्यारी में इसे थुम्का कहते हैं। इस बर्तन में उबला हुआ गर्म पानी, नमक, दूध, घी, मक्खन तथा तिब्बती चाय डालकर इतना अधिक मथा जाता है कि उसमें झाग आने लगता है। जितना अधिक मथा जाय उतना ही चाय का स्वाद बढ जाता है। निर्धन शौका चाय की जगह बेलक्स्यिन वृक्ष की छाल तथा स्येपली वृक्ष की जड़ों का प्रयोग भी करते हैं। इस नमकीन चाय को एक ही व्यक्ति एक ही समय में 500 ग्राम तक आसानी से पी जाता है। इस चाय की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह शर्करा मुक्त होती है। इसके अतिरिक्त यह चाय कठोर सर्दी से बचाती है। उष्णता लाने के साथ-साथ यह गले की बीमारियों के लिए भी लाभप्रद है। शौका लोग इस चाय का प्रयोग ग्रीष्मकालीन आवास स्थानों में अधिक करते हैं। हुक्का चिलम (साज टोप) में तम्बाकू पीने का प्रचलन यहाँ बहुत पहले से ही है।

भोजन को स्वादिष्ट बनाने हेतु मसालों का प्रयोग

भोज्य पदार्थो को स्वादिष्ट बनाने के लिए यहाँ चटपटे मसालों का भी प्रयोग किया जाता है। सब्जी , सलाद एवं माँस के साथ विभिन्न प्रकार के मसाले मिलाकर उन्हे खाया जाता है। मिर्च जैसा डाह उत्पन्न करने वाला मयन पौधा यहाँ मसाले के रूप में प्रयुक्त होता है। भोज्य पदार्थो में तेजपात (दालचीनी) गंदरायण जिम्बू, थोया (जंगली जीरा) आदि का प्रयोग मसालों के रूप में होता है। ये वनस्पतियाँ एवं जडी बूटियां यहाँ पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती हैं।

मांस पकाने की विधियाँ

माँस शौका लोगों के भोजन का प्रमुख अंग है। ये भेड, बकरी, पक्षी एवं कुछ जंगली पशुओं का माँस खाते है। यहाँ खाने की कई विधियाँ है। माँस को सुखाकर उसको दाल के बदले में खाया जाता है। माँस पकाकर खाने की एक विधि 'मौंमौं' है। मांस को छोटे-छोटे टुकडों में काटकर तथा उसमें मसाले डालकर समोसे की तरह पकाकर उसे खाया जाता है। चावल का पुलाव या तहरी की तरह मांस के टुकडे मिलाकर 'धंती' तैयार करते हैं। जब इसे अधिक तरल रूप में तैयार किया जाता है तो उसे 'धंतीकलं' कहते है। कलेजी, दिल, फेफडा आदि कोमल मांस के टुकडों के साथ मसाले डालकर उसे पकाकर खाया जाता है, जो 'गेमा' कहलाता है। गेमा और मौं मौं तिब्बती देन है। शौका लोग मांस का प्रयोग शरीर में ऊष्मा लाने के लिए करते हैं।

पाक कला

शौका लोग भोजन बनाने की कला में बहुत निपुण होते हैं। तिब्बत के साथ व्यापार सम्बन्ध होने के कारण इनके भोजन में अनेक तिब्बती ब्यंजनों का समावेश है। ये मांस को अनेक विधियों से पकाकर खाते हैं। चूंकि इनका जीवन निरन्तर प्रवासी रहता है अतः ये पाक कला में अत्यधिक दक्ष होते हैं।

मदिरा का प्रयोग

जलवायु की दृष्टि से मदिरा भोटिया लोगों के लिए आवश्यक पेय है। इसके अतिरिक्त धार्मिक क्रियाकलापों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि अधिकांश शौका स्त्री पुरुष इस का प्रयोग करते हैं। प्रत्येक उत्सव, त्यौहार एवं संस्कार इससे सम्पन्न होते हैं। अतिथि, मित्र एवं सम्बन्धियों के मध्य आदान-प्रदान की यह एक आवश्यक वस्तु है। देवी-देवताओं की पूजा, बधू की मंगनी, झगडों का निर्णय, विवाह, मरण संस्कार, नृत्यगान एवं मनोरंजन के समय मदिरा का प्रयोग किया जाता है।

मदिरा का प्रयोग शौका समाज में प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। बैयु-बैसांग (फाबर पल्ती) से बनायी गई मदिरा को ही प्राचीन काल में सोमरस कहा जाता था। अनाज को पकाकर सोमरस में परिवर्तित करने के लिए एक विशेष हिमालयी घास 'बल्मा-च्यि' का प्रयोग किया जाता है। इसके साथ-साथ अन्य हिमालयी बूटियां एवं जौ का आटा मिलाकर बल्मा (सोमरस) बनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि यह सोमरस उत्साहवर्द्धक, बुद्धिवर्धक, शक्तिवर्द्धक एवं कठोर शीत से बचाने वाला होता है। अन्न के रस के भाप से दारू (च्यक्ती) एवं अनाज को सड़ाकर बियर (बछर्य) बनता है।

सोम (बल्मा) बनाने कीं विधि

डूंगरसिंह ढकरियाल (2004, 195-200) के अनुसार सोम या बल्मा बनाने के लिए सर्वप्रथम हिमालयी वनौषधियों को एकत्र कर खरल में बारीक पीस लिया जाता है। उक्त औषधियों को जौ के सत्तू में मिलाकर गूंथकर उसके छोटे-छोटे चपटे गोले बना लिये जाते हैं। तत्पश्चात् उनको एक चौडे मुंह वाले बर्तन में डाल देते हैं। उस बर्तन के मुंह को भोजपत्र से ढ़ककर बन्द कर दिया जाता है। इसके बाद उस बर्तन को गरम कपड़े से लपेटकर तीन दिन तक एक स्थान पर रखा जाता है। तीसरे दिन बाद उस पात्र से सुगन्ध फैलने लगती है। हिमालयी बूटी के प्रभाव से उस जौ के गूंथे आटे बल्मा से पात्र में मरती (तैलीय पदार्थ) भर जाता है। दारमा के शौका दारमा बोली में इस मधु के समान मीठे रस को ही 'गरती' कहते है। इसे उस पात्र से निकालकर पी लिया जाता है, दारमा क्षेत्र में, जौ एवं गेहूँ आदि अनाजों से भी सोमरस बनाया जाता है। चावल से बने सोमरस को 'लंमरती' और गेहूँ एवं जौ आदि अनाजों से

बने सोमरस को 'मरती च्याक्ति' कहते हैं। वर्तमान समय में भोटिया लोग देशी एवं विदेशी मदिरा का भी प्रयोग करने लगे हैं।

परंपरागत सामाजिक नियम

परम्परागत सामाजिक नियमों का उद्देश्य समाज को मर्यादित रखना, उसके सदस्यों को संगठित रखना और उनके पारस्परिक सम्बन्धों को सर्वमान्य दिशा प्रदान करना है। समाज द्वारा अंगीकृत इन नियमों की शक्ति भी समाज के सदस्यों की आस्थाओं पर निर्भर रहती है। इन नियमों के परिपालन के साथ ही सामाजिक संस्कार भी जुडे हुए है। भोटिया समाज में प्रचलित परंपरागत सामाजिक नियमों का विवरण निम्नवत् है।

विवाह सम्बन्धी परम्परागत सामाजिक नियम

जोहार एवं दारमा क्षेत्र की भोटिया जनजाति के विवाह सम्बन्धी सामाजिक नियमों में पर्याप्त अन्तर है। अतः इनका पृथक्-पृथक् विवेचन करना आवश्यक है।

जोहार की भोटिया के जनजाति के परम्परागत वैवाहिक नियम

जोहार के भोटिया वैदिक रीतियों से वैवाहिक कार्य सम्पन्न करते हैं किन्तु भारत के अन्य जनजातियों के समान इनमें भी कुछ परम्परागत वैवाहिक नियम प्रचलित है। इनका विवरण निम्नलिखित है।

दामतारो

जोहार के निर्धन भोटिया, जिन्हे अपने पुत्र के लिए बधू मिलने में कठिनाई होती है वे बधू के पिता या अभिभावक को कुछ धन देकर अपने पुत्र का विवाह करते हैं। दूसरे या तीसरे विवाह में भी धन दिया जाता है। इस प्रथा को दामतारो कहते हैं। दाम तारों विवाह की वैवाहिक रस्म गोठ में न होकर घर की ऊपरी मंजिल में सम्पन्न की जाती है। वर्तमान समय में लडकियों की जन्मदर में वृद्धि एवं अन्तर्जातीय विवाह को सामाजिक मान्यता मिलने के कारण यह प्रथा समाज से समाप्त होती जा रही है।

विनिमय विवाह

शौका समाज में अपने पुत्र, भाई या भतीजे के विवाह में कठिनाई होने पर अपनी पुत्री, बहिन या भतीजी को अन्य गोत्र के सजातीय लडके को देकर, वहाँ से लडकी प्राप्तकर जो विवाह सम्पन्न किया जाता है उसे जोहार में 'सांटो' अर्थात अदला-बदली विवाह कहते है। सांटो विवाह में दोनों पक्ष वालों को कुछ धन खर्च करना अनिवार्य होता है। राम सिंह पांगती (1980, 20) के अनुसार कुछ समय पूर्व

यह धन एक सौ बीस रुपये निश्चित था। जिसे 'बारकाज' कहते थे। यह प्रथा आजकल लगभग समाप्त हो गई है।

अपहरण विवाह :-

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक जोहार में अपहरण विवाह की प्रथा थी किन्तु अपहरण विवाह अविवाहित लडकियों का न होकर केवल विधवा स्त्रियों या निखनी स्त्रियों (जो महिला पति के जीवित रहते हुए भी उसके साथ नही रहना चाहती हो) का ही किया जाता था। महिला को जंगल या पनघट जाते समय, परिवार के उत्क्रमण काल में रास्ते चलते समय या सुप्तावस्था में अपहरण करके जबरन पत्नी बनने के लिए विवश किया जाता था। जिस महिला का पति जीवित हो किन्तु पति पत्नी में परस्पर सम्बन्ध बिगड़ जाने, पति द्वारा पत्नी का भरण पोषण न करने, पति का लम्बी अवधि तक लापता रहने या पति का अन्य महिला के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर उस महिला की इच्छा पर ही उसका अपहरण किया जाता था। इस प्रकार की सधवा महिला 'छनमून' कहलाती है। जब इस छनमून या विधवा महिला के पूर्व पति के घर वालों को अपहरण की सूचना मिल जाती थी तब उसके परिवार के लोग समूह बनाकर अपहरणकर्ता के घर जाते थे और उसके घर पर दरवाजा या मकान की छत तोडकर अपहृता को ढूंढते थे। अपहृता का पता लग जाने पर उससे सहमत या असहमत के सम्बन्ध में पूछा जाता था। महिला के 'सहमत हूँ' कहने पर समूह वापस लौट जाता था तथा असहमत कहने पर उस महिला को अपहरणकर्ता से छुडाकर वापस ले जाया जाता था। पन्ना लाल (1942 ,18) के अनुसार अपहृत की गई महिला का धन चुकाना भी आवश्यक समझा जाता था। बिना धन चुकाई गई महिला 'ढाटी' कहलाती थी और उस महिला पर पूर्व पति का ही अधिकार समझा जाता था। वर्तमान समय में यह प्रथा प्रायः समाप्त हो चुकी है।

सरौल विवाह

वर की अनुपस्थित में वैवाहिक संस्कार सम्पन्न किये बिना बधू को बाजे-गाजे के साथ वर के परिजनों द्वारा वारात के रुप में विदा करके अपने घर ले जाना सरौल विवाह कहलाता है। यह विवाह केवल अविवाहित लडकी (बलव्याती) का ही होता है। पति के घर पहुंच जाने पर किसी उपयुक्त समय पर विवाह का मुहूर्त निश्चित कर पति के गृह में ही सूक्ष्म रुप से वैवाहिक क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। कभी-कभी बच्चा पैदा होने के पश्चात नामकरण के दिन अथवा नये भवन में गृह प्रवेश के अवसर पर भी यह वैवाहिक संस्कार सम्पन्न किया जाता है। विवाह संस्कार होने के पूर्व ही यदि पति की मृत्यु हो

जाती है तो वह महिला विधवा मानी जाती है। वर्तमान समय में यह प्रथा जोहार में लगभग समाप्त हो गई है।

अन्तर्जातीय विवाह

यद्यपि जोहार का भोटिया समाज अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति नही देता है तथापि इस समाज में कई अन्तर्जातीय विवाह भी हुए हैं। जोहार के भोटियों के वैवाहिक सम्बन्ध जोहार से बाहर केवल गढवाल के मारछा, मड़वाल, गमस्वाल, बमप्वाल, इत्यादि गुड़ाल भोटिया लोगों से ही होता था। दारमा एवं ब्यूँस घाटी से मात्र दूसरे या तीसरे विवाह वाले या गरीब लोग ही लडकियाँ लाकर विवाह करते थे। जोहार एवं दारमा-ब्यूँस घाटी के भोटियों के सामाजिक स्तर में भिन्नता होने के कारण ही इनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नही होते थे। वर्तमान समय में यहाँ शिक्षा के प्रसार एवं नवयुवकों के सरकारी सेवाओं में जाने के कारण अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं।

पति भ्रातृ विवाह

जोहार के भोटिया लोगों में भ्रातृ एवं बहुपति विवाह की प्रथा नही है किन्तु अग्रज के निधन के पश्चात् उसका अनुज भाभी की अनुमति से उसे पत्नी के रुप में वरण कर सकता है। किन्तु उसे पत्नी बनने के लिए विवश नही किया जा सकता। इसी प्रकार पत्नी के निधन के बाद पत्नी की छोटी बहिन के साथ विवाह हो सकता है किन्तु पत्नी की बडी बहिन या पत्नी के भाई की पुत्रियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नही हो सकते हैं।

उठलिया दम्पति

जब कोई अविवाहित कन्या या कोई विवाहित नारी अपने अभिभावकों की अनुमति के बिना किसी सजातीय या विजातीय पुरुष के साथ विवाह की इच्छा से दूरस्थ स्थान को चली जाती है तो वह दपत्ति उठलिया तथा इस प्रकार से किया गया विवाह 'उठाल जाना' कहलाता है। अतीत में जोहार घाटी से उठाल जाने के विवाह कम हुए हैं किन्तु यहाँ बाहर से उठलियों दम्पति बहुत आये हैं। वर्तमान समय में युवक-युवतियों में स्वैच्छाचारिता की प्रवृत्ति बढने के कारण यहाँ भी उठाल सम्बन्ध स्थापित होने लगे हैं।

घर जवांई

विवाह के पश्चात जब पति अपने श्वसुर के घर में रहने लगे तो वह व्यक्ति घर जवांई कहलाता है। घर जवांई बनने वाले व्यक्ति का गोत्र तथा उपजाति नही बदलती है। श्वसुर अपनी सम्पत्ति का

उत्तराधिकारी दामाद को बना देता है और उस सम्पत्ति का उपभोग दामाद की सन्तान भी कर सकती है (पन्नालाल, 1942, 19)। इसके अतिरिक्त पैतृक सम्पत्ति पर भी उस व्यक्ति का अपने भाइयों के समान पूर्ण अधिकार रहता है। जोहार में इस प्रकार के घर जवांई अनेक लोग हैं।

टिकुवा

पति के निधन के पश्चात जब कोई विधवा स्त्री किसी पुरुष को अपने पूर्व पति के घर में लाकर उसे पति रुप में अपना लेती है तो वह व्यक्ति टिकुवा कहलाता है। टिकुवा द्वारा उत्पन्न सन्तान वैध मानी जाती है किन्तु पूर्व पति द्वारा उत्पन्न सन्तान टिकुवा को पिता के रुप में स्वीकार नही करते हैं। टिकुवा द्वारा उत्पन्न सन्तान का पूर्व पति की सम्पत्ति पर वैधानिक अधिकार भी नही होता है। जोहार के भोटिया समाज में विधवाओं द्वारा टिकुवा रखने के कई प्रमाण मिलते है।

दारमा की भोटिया जनजाति के परम्परागत वैवाहिक नियम

दारमा के भोटियों में हिन्दुओं की तरह ही एक विवाह की प्रथा है। इनमें बहुपत्नी एवं बहुपति विवाह प्रथा का प्रचलन नही है। इनके परम्परागत वैवाहिक नियम निम्नवत् हैं।

अपहरण विवाह

इस समाज में कुछ वर्षो पूर्व तक अपहरण विवाह की प्रथा प्रचलित थी। अपहरण रात या दिन में स्थिति के अनुसार किया जाता था। इस प्रथा में बधू पक्ष के लोग लडकी से पूंछते थे कि 'मन सै ला जोर सै' अर्थात् अपनी इच्छा से आई हो या जबरन लाई गई हो। लडकी द्वारा 'मन सै' अर्थात' (अपनी इच्छा से) कहने पर उसे पति के घर में ही छोड दिया जाता था। लड़की के द्वारा 'जोर सै' कहने पर उसे अपहरणकर्ता से अवमुक्त कर उसे पिता के घर ले आया जाता था। आजकल यह प्रथा लगभग समाप्त हो चुकी है।

गान्धर्व विवाह

इस प्रथा को यहाँ 'चाल्वू दीमो' कहा जाता है। दीमो का अर्थ है जाना। जब प्रेमी व प्रेमिका दोनो अपने माता-पिता की स्वीकृति के बिना घर छोड़कर दूरस्थ स्थान जाकर प्रेम विवाह कर लेते है और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगते है तो यह गान्धर्व विवाह कहलाता है। यह पूर्ण विवाह की प्रथा नही है। कालान्तर में माता-पिता की स्वीकृति मिलने पर जब वे पुनः घर वापस आते हैं तो उन्हें पुनः वैवाहिक रीतिरिवाज सम्पन्न करने पडते हैं।

विधवा विवाह

इस समाज में विधवा विवाह की भी प्रथा है। विधवा स्त्री यदि दूसरा विवाह करती है तो उसका धार्मिक विधि-विधानों द्वारा शुद्धिकरण कराया जाता है। यदि कोई स्त्री निःसन्तान बाल विधवा हो जाती है और दूसरी या तीसरी बार विवाह कर लेती है तो इस स्थिति में उस पर दूसरे पति का अधिकार न होकर प्रथम पति का ही अधिकार माना जाता है।

अन्तर्जातीय विवाह

दारमा के शौका (रं) लोगों में सजातीय विवाह होते हैं, किन्तु इसमें कुछ अन्तर्जातीय विवाह भी हुए हैं। कुछ समय पूर्व यहाँ कुछ शौका गोत्र के लोगों को निम्न स्तर का (शियनाकत्यी) समझा जाता था। वर्तमान समय में इस समाज में अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं।

मातृ एवं पितृपक्षीय विवाह

शौका समाज में मातुल व फूफा की पुत्री के साथ विवाह हो सकता है। इन विवाहों को यहाँ अधिक महत्व दिया जाता है। इसीलिए यहाँ श्वसुर, फूफा व मातुल के लिए एक ही शब्द 'थंमी' और श्वसुर, फूफी व मामी के लिए 'पूनी' शब्द प्रयुक्त होता है।

तलाक सम्बन्धी परम्परागत सामाजिक नियम

भोटिया समाज में भी तलाक सम्बन्धी कुछ परम्परागत सामाजिक नियम प्रचलित हैं। एस०एस० पांगती (1992, 88) के अनुसार जोहार के भोटिया समाज में छनमून महिला का मूल्य चुकाकर 'लौ दौ' (तलाक) लिखने की प्रथा आज भी विद्यमान है जिससे पूर्व पति का उस पत्नी पर किसी प्रकार का वैधानिक अधिकार न रह सके। यहाँ अनेक बार छनमून महिलाओं के अपहरण होने या दूसरे पति के घर चले जाने पर पंचायत अथवा न्यायालयों में जाने की स्थिति उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार पति पत्नी के दाम्पत्य जीवन में कटुता आने पर न्यायालय द्वारा तलाक लेकर सम्बन्ध विच्छेद होने की अनेक घटनायें भी घटित हुई हैं। किन्तु इस प्रकार की समस्याओं का प्रायः समाज द्वारा ही दोनों पक्षो की तरफ से लिखित सहमति लेकर निर्णय कर दिया जाता है, जिसे लौ-दौ कहते हैं। लौ-दौ या छुट-फिट (तलाक) हो जाने के बाद पति या पत्नी द्वारा अन्यत्र विवाह करने पर किसी को किसी प्रकार आपत्ति नही हो सकती है। बिना छुट-फिट होने तक पति द्वारा दूसरा विवाह करने पर पत्नी भरण पोषण हेतु मांग कर सकती है अथवा पत्नी के दूसरे घर जाने पर पूर्व पति को नये पति से दाम खाने (मूल्य चुकाने) का अधिकार है। सी०ए० शेरिंग (1906, 95) के अनुसार पूर्व काल में छुट-फिट वाली महिला की पूर्व पति

से उत्पन्न लडकियों के विवाह हेतु भी पूर्व पति का नये पति से धन लेने का नियम प्रचलित था।

रतन सिंह रायपा (1974, 77-78) के अनुसार दारमा के शौका समाज में तलाक की छूट होने के बावजूद भी तलाक देने की परिस्थितियाँ कम आई हैं। यहाँ पति-पत्नी के एक दूसरे से असन्तुष्ट होने पर कभी भी तलाक लिया जा सकता है। यह असन्तुष्टि किसी एक के बुरे आचरण के कारण हो सकती है। यहाँ तलाक के लिए 'धर्म' या 'कोल्ती' शब्द प्रयुक्त होता है। तलाक प्रायः पत्नी की इच्छा या माँग पर ही होती है जिसमें धर्म विच्छेद हेतु सभा बुलाई जाती है। पति की ओर से तलाक की प्रार्थना नही की जाती। पति अगर पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद करना चाहता है तो वह पत्नी से ऐसा व्यवहार करेगा जिससे कि पत्नी विवश होकर स्वयं तलाक हेतु प्रार्थना करेगी। तलाक से तात्पर्य 'धर्म देना है, लेना नही''। पत्नी धर्म देकर अपने मायके जा सकती है परन्तु पति धर्म देकर अन्यत्र नही जा सकता है। जब तक बुरे आचरण का स्पष्ट प्रमाण नही मिलता तव तक धर्म देने के लिए कदम नही उठाया जा सकता है। 'धर्म' शब्द से यह तात्पर्य है कि अपने धर्म (कर्तव्य) की रक्षा के लिए पति पत्नी दोनों को शुद्ध आचरण रखना चाहिए और एक दूसरे को आत्मसंतुष्टि देनी चाहिए। यदि पति पत्नी के मध्य ऐसा आचरण व व्यवहार नही रहता तो धर्म भी नही रहा। इस स्थिति में शुद्ध धर्म या कर्तव्य का एक मात्र उचित मार्ग यही है कि पति-पत्नी के जीवन में विच्छेदन हो और दोनों के धर्म का मार्ग पृथक् पृथक् हो सके।

धर्म या तलाक का निर्णय न्यायालय की सहायता लिये बिना समाज के प्रमुख व्यक्ति करते हैं। जब तक धर्म की क्रिया सम्पन्न नही हो जाती और पत्नी अपने पिता के घर में रहती है तब तक वह पूर्व पति की सम्पत्ति मानी जाती है। इस अवधि में ऐसी स्त्री जब किसी दूसरे व्यक्ति से पुनः विवाह कर लेती है तो उस स्त्री को 'बब्वै' (जूती) कहा जाता है। उस स्त्री व उससे उत्पन्न सन्तान को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। ऐसी स्थिति में दूसरा पति धर्म मांगेगा और पूर्व पति धर्म के बदले अपनी शादी का व्यय (कोल्ती) मांग सकता है। यदि उसने दूसरा विवाह नही किया और उसके माता पिता यह आवश्यक समझें कि धर्म सम्पन्न किये बिना उसके पुनः विवाह होने में व्यवधान उत्पन्न हो रहा है तो उसके माता-पिता धर्म हेतु आग्रह करेंगें। इस स्थिति में उनसे किसी प्रकार धन की आशा नही की जा सकती है। धर्म क्रिया के रीतिरिवाज में लड़की को एक सफेद वस्त्र दिया जाता है। एक हरी घास तथा एक सूखी घास का तिनका रखकर पति सम्बन्ध विच्छेद की घोषणा करता है। इस प्रकार दोनों का तलाक हो जाता है और वे दोनों स्वच्छन्द रुप से अपने इच्छित कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हो जाते हैं।

उत्तराधिकार सम्बन्धी परम्परागत सामाजिक नियम

डा० एस०एस० पांगती (1992, 94) के अनुसार जोहार में संयुक्त परिवार के विघटन के पश्चात् पैतृक अथवा सामूहिक रुप से अर्जित चल अथवा अचल सम्पत्ति का विभाजन समाज के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों की उपस्थित में होता है जो सर्वमान्य समझा जाता है। सम्पत्ति के इस विभाजन के समय निम्न तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक होता हैं।

ज्याठो-बान

संयुक्त परिवार की चल-अचल सम्पत्ति का एक पिता के पुत्रों में समान रूप से विभाजन हो जाने के पश्चात छोटे भाइयों की सहमति से सबसे बडे भाई को पृथक् रुप से कुछ सम्पत्ति दिया जाना 'ज्याठो-बान' कहलाता है। ज्याठो-बान में अचल अथवा चल सम्पत्ति या रुपया कुछ भी दिया जा सकता है। मकान के विभाजन में उत्तर दिशा या दाहिने भाग की ओर का कक्ष सबसे बडे भाई को दिया जाता है।

सौतिया बाँट

किसी पुरुष के एक से अधिक विवाह होने पर उसकी सम्पत्ति का विभाजन उन स्त्रियों से उत्पन्न सभी पुत्रों में समान रुप से न करके उनकी माताओं के आधार पर करना 'सौतिया बाँट' कहलाता है। किन्तु आजकल ऐसी स्थिति में सौतिया बाँट न करके पुत्रों में समान रूप से सम्पत्ति का विभाजन किया जाता है।

अविवाहित सदस्यों का हिस्सा

किसी संयुक्त परिवार में यदि बडे भाइयों का विवाह हो चुका हो तो परिवार के विघटन होने पर छोटे भाइयों अथवा बहिनों के विवाह के लिए कुछ धनराशि पृथक् रुप से निर्धारित की जाती है।

माता-पिता का हिस्सा :-

पैतृक या अर्जित सम्पत्ति का विभाजन करते समय माता-पिता के भरण पोषण हेतु कुछ धनराशि, खेत या पशु पृथक् कर दिये जाते हैं। जिसका उपभोग वृद्ध माता-पिता के भरण-पोषण करने वाला पुत्र करता है। यह उत्तरदायित्व प्रायः सबसे छोटे पुत्र का रहता है। माता पिता के निधन के पश्चात् उस सम्पत्ति का भी समान रुप से विभाजन कर लिया जाता है। यदि कोई महिला, पति की मृत्यु के बाद अपने पति गृह में न रहकर पिता के घर, भाई या भाई के पुत्रों के साथ या पृथक घर में रहती है तो उसके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व भी पति-गृह वालों पर होता है और उस महिला या उसके

पुत्रो का पति की सम्पत्ति पर भी पूर्ण अधिकार रहता है। उस महिला के निधन होने पर उसके सूतक की अशुद्धि भी पितृ-गृह वालों पर न होकर उसके पति-गृह वालों पर ही रहती है।

सम्पत्ति के विभाजन के समय पिता अथवा घर के मुखिया द्वारा किया गया लेन देन का विवरण भी प्रस्तुत किया जाता है। सम्पत्ति के विभाजन के समय भाइयों को इस देनदारी का भी वहन भी करना पडता है। किसी भाई द्वारा देनदारी वहन न करने पर उसे पैतृक या अर्जित दोनों प्रकार की सम्पत्ति से वंचित रहना पडता है। पन्नालाल (1942, 21) के अनुसार पिता के जीवित रहने तक उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके पुत्र पैतृक सम्पत्ति का न तो विभाजन कर सकते हैं और न ही उन्हें उसके विक्रय का अधि ाकार है। पति स्वेच्छा से अपनी सम्पत्ति किसी को भी प्रदान कर सकता है अथवा अपनी अर्जित सम्पत्ति किसी को प्रदान करने हेतु उत्तराधिकार पत्र लिख सकता है। किन्तु उत्तराधिकार में प्राप्त पूर्वजों की सम्पत्ति का हस्तान्तरण नही कर सकता है।

अन्य सामाजिक नियम

यदि परिवार का कोई सदस्य नौकरी पर हो तो सम्पत्ति के विभाजन के समय उसे अपनी संचित धनराशि (फण्ड) का विवरण भी प्रस्तुत करना पडता है, जिसका वितरण सभी सदस्यों में समान रुप से किया जाता है। शारीरिक रूप से अपंग व्यक्ति का भी पैतृक सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार होता है। विवाह के समय वधू को दहेज के रुप में प्राप्त चल अथवा अचल सम्पत्ति का विभाजन नही होता है। किसी गर्भवती स्त्री का अन्यत्र नये पति के घर चले जाने पर वह बालक पूर्व पति का ही माना जाता है। महिला के नये पति की सम्पत्ति का वह अधिकारी नही होता है।

गोद लेना

निःसन्तान व्यक्ति द्वारा अपने जीवनकाल में ही दूसरे व्यक्ति के पुत्र को गोद लेकर अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाने की प्रथा जोहार में भी प्रचलित है। इसके लिए पुतगर (गोद लेने वाले) के परिवार जनों को लिखित अनुबन्ध-पत्र देना पडता है इसमें यह शर्त रखी जाती है कि गोद लेने वाले व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसका दत्तक पुत्र ही होगा। इसके पश्चात दत्तक पुत्र का गोत्र व उपजाति भी बदल जाती है और वह अपने वास्तविक पिता की सम्पत्ति का अधिकारी भी नही माना जाता है।

दारमा ब्यांस व चौदांस के भोटियों के उत्तराधिकारी सम्बन्धी नियम

पन्नालाल (1942, 25-31) द्वारा संकलित एवं संयुक्त प्रान्त सरकार द्वारा प्रकाशित राजाज्ञा नं० 1490 7 24, दिनांक 16 नवम्बर 1920, संयुक्त प्रान्त गजट 19 नवम्बर 1921, पार्ट 8, पृष्ठ 979 की रिपोर्ट के आधार पर रतन सिंह रायपा (1974, 158 159) ने दारमा, ब्यांस व चौदांस के भोटियों के उत्तराधिकार सम्बन्धी विभिन्न सामाजिक निमयों का उल्लेख किया है उत्तराधिकार सम्बन्धी इन धाराओं का विवरण निम्नवत् है।

ए0-91 **चाचूमो** :- (दत्तक पुत्र को रखने की प्रथा है परन्तु जातीय प्रतिबन्ध के साथ ही सम्भव है........)

ए0-92 दत्तक रखे गये व्यक्ति को तीन घाटी (दारमा, चौदांस व ब्यांस का ही भोटिया होना चाहिए। बाहर का व्यक्ति नही हो सकता ....। दत्तक पुत्र रखा गया व्यक्ति हर दृष्टि से अपने पुत्र तुल्य हो जाता है।

बी0-93 **धरजवैं** :- एक व्यक्ति जिसका पुत्र न हो, कभी कभी अपने दामाद को अपने घर में अपने साथ रख लेता है। बाद में वह वह दामाद पुत्र तुल्य हो जाता है।

सी0-94 (2) **विधवा** :- चाहे विवाहित हो या (विना विवाह के रखा हो), कोल्ती हो, सम्पत्ति का पूर्ण हिस्सा पाती है। संयुक्त परिवार में भी वह अपने पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है।

सी0-94 (5) उत्तराधिकार में लडकी का स्थान अन्त में आता है। वह तभी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हो सकता है जबकि कोई पुरुष हिस्सेदार न हो। केवल अविवाहित लडकी को ही यह अधिकार मिल सकती है और वह तब तक इससे लाभ उठा सकती है जब तक कि उसका विवाह नही हो जाता है।

सी0-94 (6) सम्पत्ति के विभाजन में कभी-कभी जेष्ठ भाई अपने हिस्से से कुछ अधिक सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है। यह प्रथा आपसी समझौता या सहमति पर निर्भर है, जो विधि समक्ष मान्य नही है।

सी0-94 (7) यदि सम्पत्ति के कोई हिस्सेदार न हो तो उसके उत्तराधिकारी होने का अधिकार ग्राम समाज को मिलता है।

डी0-96 जब तक सम्पत्ति पिता के पास रहती है, पुत्रों का सम्पत्ति पर अधिकार नही हो सकता है..........। इस तरह के विभाजन में सम्पत्ति का कुछ भाग उसके पिता की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पृथक से रख दी जाती है।

आई0- 101 अंधे, वधिर, मूक, को ही और नपुंसक व्यक्ति उत्तराधिकारी होने से वंचित नही रखे जा सकते हैं।

आई0-102 अविवाहित लडकी, चाहे वैध हो या अवैध, तथा स्त्री जो पत्नी की तरह रहती हो, चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित, वह अपने भरण-पोषण हेतु तब तक अधिकार रखती है जब तक वह परिवार में रहती है या जब तक वह शुद्ध आचरण व चरित्र रखती है।

उपरोक्त सामाजिक निमयों का परिपालन आज भी शौका समाज द्वारा पूर्ववत् किया जा रहा है। तत्सम्बन्धित विवाद होने पर न्यायालय द्वारा भी उक्त निमयों को ध्यान में रखकर अपने निर्णय दिये जाते है। अतः वर्तमान समय में भी उक्त नियमों की प्रासंगिकता है।

संदर्भ

अटकिन्सन, इ०टी० (1981) : द हिमालयन गजेटियर, खण्ड तीन, भाग एक पृष्ठ 114

ऋगवेद (1995) : गीता प्रेस, गोरखपुर, 10 90 12

जोशी, अवनीन्द्र कुमार (1983) : भोटान्तिक जनजाति, पृष्ठ 35 36

डबराल, शिवप्रसाद (1966) : उत्तराखण्ड के भोटान्तिक, पृष्ठ 140

ढकरियाल, डूँगर सिंह (2004) : हिमालयी सौका सांस्कृतिक धरोहर, भाग एक, पृष्ठ 195 200

पाँगती, एस०एस० (1992) : मध्य हिमालय के भोटिया : जोहार के शौका, पृष्ठ 29 36

पाँगती, रामसिंह (1980) : जोहार का इतिहास व वंशावली, पृष्ठ 20

पन्त, एस०डी० (1935) : द सोसियो इकोनामी आफ द हिमालयन्स, पृष्ठ 187 192

पाण्डे, जनार्दन (1936 1961) : श्री नारायण आश्रम सिल्वर जुबली

पन्नालाल (1942) : हिन्दु कस्ट्मरी ला इन कुमाऊँ, पृष्ठ 25 31

मनुस्मृति (1993) : अनुवादक पं० रामेश्वर भट्ट, चौखम्भा, संस्कृति प्रतिष्ठान दिल्ली, 1 5 1

रायपा, रतन सिंह (1974) : शौका सीमावर्ती जनजाति , पृष्ठ 45 54

सांकृत्यायन, राहुल (1958) : कुमाऊँ, पृष्ठ 39-40

शेरिंग, सी०ए० (1906) : नोट्स आन द भोटियाज आफ अल्मोडा एण्ड ब्रिटिश गढ़वाल मेम्वायर्स आफ द एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, वाल्यूम-I संख्या-8, पृष्ठ-95

अध्याय षष्ठ

संस्कार, रीतिरिवाज, आस्थाएं एवं लोक विश्वास

प्रत्येक समाज में कुछ विशिष्ट संस्कार प्रचलित होते हैं जो उस समाज विशेष के सामाजिक गठन, जीवन दर्शन तथा उसके आध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। इन संस्कारों के साथ जहाँ एक ओर उस समाज विशेष की भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकतायें जुडी रहती हैं वहीं दूसरी ओर इनमें वे आस्थायें तथा लोक विश्वास भी प्रतिध्वनित होते हैं जो उस समाज को सांस्कृतिक एकरूपता के सूत्र में संजोए रखते हैं। आर्थिक एवं राजनैतिक घटनाक्रमों के परिणामतः विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क एवं समागम से उत्पन्न सांस्कृतिक प्रभावों तथा अतीत से प्राप्त मान्यताओं का समन्वय इन संस्कारों में दृष्टिगत होता है।

भोटिया समाज में प्रचलित संस्कारों, रीतिरिवाजों, आस्थाओं एवं लोक विश्वासों का सम्यक् वर्णन इस अध्याय में किया गया है। दोनों भोटिया सांस्कृतिक क्षेत्रों में इस संस्कारों, रीतिरिवाजों, आस्थाओं एवं लोक विश्वासों में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है अतः इनका दोनों क्षेत्रों के संदर्भ में पृथक्-पृथक् विवरण निम्नवत् है।

जोहार के भोटियों के जन्म सम्बन्धी संस्कार

जोहार के भोटिया समाज में जन्मोत्सव सम्बन्धी निम्नलिखित संस्कार प्रचलित हैं।

जन्मोत्सव तथा नामकरण संस्कार

इस समाज में किसी भी व्यक्ति की प्रथम सन्तान (पुत्र या पुत्री) के जन्म पर 'सिनी' (गुड, मिश्री तथा नारियल के गोले के टुकडे मिलाकर) या मिष्ठान का वितरण किया जाता है। शिशु के जन्म के पश्चात माँ व शिशु को अपवित्र मानकर घर से पृथक् किसी सुरक्षित कक्ष में रखा जाता है। पाँचवें दिन प्रसूता अपने वस्त्रों को स्वयं धोकर गोमय से आवास की लिपाई करती है। इसे 'पंचाला' कहते हैं। ग्यारहवें दिन कुल पुरोहित को बुलाकर बच्चे का नामकरण संस्कार सम्पन्न किया जाता है। जोहार में नामकरण संस्कार को 'मिसै' कहते हैं जिसका अर्थ मिलना या सम्मिलित होना है। शिशु के जन्म से ग्यारहवें दिन पश्चात पुरोहित या अविवाहित लड़की द्वारा केले के फलक या पद्म वृक्ष की टहनी पकडाकर बच्चे का शुद्धिकरण किया जाता है। इसे 'सुरुवा लगाना' कहते हैं। सुरुवा लगाने से पूर्व कुल पुरोहित गणेश पूजा एवं नवग्रहों की पूजा करता है। तत्पश्चात् सुरुवा लगाकर एक नवीन वस्त्र पर रोली चन्दन से ग्रह तथा राशि के अनुसार बच्चे का कान लिखा जाता है। इसके बाद पुरोहित उस वस्त्र को

बेलनाकार मोडकर शिशु के कान के पास उसके नाम का उच्चारण करता है जिसे 'कान फूंक डालना' कहते हैं। नामकरण के समय परिवार एवं गाँव के लोगों को भोजन कराकर पुरोहित को दक्षिणा दी जाती हैं।

चोलि-दयवे

नवजात शिशु को चोली अर्थात नवीन वस्त्र पहनाकर अन्न खिलाने की प्रथा चोलि दयवे या अन्नप्रासन संस्कार कहलाता है। यह संस्कार शिशु के दाँत निकलने से पूर्व पुत्र का पांचवें तथा पुत्री का छठवें माह में किया जाता है। इस अवसर पर पुत्र को सूती वस्त्र का चोला तथा पुत्री को झगुला पहनाया जाता है। इसके अतिरिक्त शिशु को चांदी का धागुला (कंगन) भी पहनाया जाता है। इसके पश्चात् पुरोहित के मन्त्रोच्चारण के साथ षटरस ब्यंजन चांदी की चम्मच या सिक्के से माता तथा परिवार के सभी सदस्य क्रमशः बच्चे को चखाते हैं। इस अवसर पर भी परिवार व गांव के लोगों को सहभोज कराया जाता है।

चूडाकर्म तथा व्रतबन्ध

जोहार के शौका समाज में चूडाकर्म संस्कार अनिवार्य नही है। जिन शिशुओं के केश पर पाँच वर्ष तक कैंची न चलाई गई हो उनके केश किसी भी शुभ लग्न या बसंत पंचमी के दिन नहला धुलाकर साफ कर दिये जाते है। इसके पश्चात केश कटवाने का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। बालक का व्रतबन्ध संस्कार नौ से पन्द्रह वर्ष की आयु तक किसी भी विषम वर्ष में सम्पन्न होना अनिवार्य होता है। यदि पन्द्रह वर्ष की आयु तक यह संस्कार सम्पन्न न हो सका तो फिर विवाह से पूर्व कभी भी ब्राह्मण के मन्त्रोच्चारण द्वारा संक्षिप्त रुप से यह सम्पन्न कर लिया जाता है। व्रतबन्ध संस्कार दो दिनों में सम्पन्न होता है। प्रथम दिन 'गरोजाग' या गृह जागरण होता है। इस दिन संस्कारी बालक को उपवास रखना पडता है। दूसरे दिन संस्कारी बालक का मुण्डन करके कर्णभेद संस्कार किया जाता है। कर्णभेद के पश्चात उपनयन धारण कराकर गायत्री मन्त्र पढाया जाता है। तीसरे या पाँचवें दिन पुनः सिर के केश साफ कराकर 'दुनखोर' किया जाता है। व्रतबन्ध या उपनयन संस्कार प्रायः चैत्र माह के शुक्ल पक्ष अथवा बसन्त पंचमी के शुभ अवसर में सम्पन्न किया जाता है।

दारमा के शौकाओं के जन्म सम्बन्धी संस्कार

रतन सिंह रायपा (1974, 92-96) के अनुसार दारमा के शौका समाज में निम्नलिखित जन्म सम्बन्धी संस्कार प्रचलित हैं।

जन्मोत्सव

इस समाज में शिशु के जन्म पर अक्षत, धलं (रन्तू केक) एवं मदिरा द्वारा देवी देवताओं एवं आत्माओं का पूजन कर शिशु के दीर्घायु एवं मंगलमय भविष्य की प्रार्थना की जाती है। माँ अपने बच्चे के साथ ग्यारह दिन तक मुख्य घर से पृथक् रहती है। उन दिनों को अपवित्र समझा जाता है। उनकी देखभाल में लगी महिला भी गोमूत्र से पवित्र होकर ही मुख्य घर में प्रवेश करती है।

नवान (छ्यूशिमो)

ग्यारहवें दिन प्रसूता स्नान करती है। माँ एवं शिशु इस दिन से मुख्य घर में प्रवेश कर सकते है किन्तु पाकशाला में प्रवेश वर्जित होता है। इस दिन जन्मोत्सव की तरह सभी इष्ट मित्रों को आमंत्रित किया जाता है। धलं व मदिरा द्वारा देवी देवताओं की पूजा करने के पश्चात बच्चे के नामकरण हेतु प्रस्ताव रखा जाता है। नामकरण भूमो संस्कार के अन्तर्गत सम्पन्न किया जाता है।

भूमो

यह संस्कार तीन माह के पश्चात सम्पन्न किया जाता है। इन दिन परिवार का जेष्ठ बालक या वृद्ध व्यक्ति जिस के छोटे भाई बहन जीवित हों शिशु को पीठ पर बैठाकर घर के मुख्य द्वार को नौ बार पार करता है। मुख्य द्वार को बार-बार पार करने का आशय यह है कि शिशु दीर्घायु रहे और उसका इस घर में आवागमन शाश्वत बना रहे। इसके पश्चात शिशु को नवीन वस्त्र पहनाये जाते है। इसी दिन नामकरण संस्कार भी सम्पन्न किया जाता है और ग्रामवासियों को धलं का वितरण एवं भोजन कराया जाता है।

कर्णभेद व अन्न प्राशन

यह उत्सव केवल परिवार तक ही सीमित होता है। इसके लिए कोई शुभ घडी या दिन निश्चित करके नवजात शिशु के दोनों कानों में सोने की मुन्दरी (लक्षब्) पहनाई जाती है। इस अवसर पर किसी विशेष उत्सव का आयोजन नहीं किया जाता है।

मुण्डन (पुस्यावोमो)

मुण्डन संस्कार प्रायः शिशु के तृतीय, पंचम् या सप्तम् वर्ष की आयु में सम्पन्न किया जाता है। यह संस्कार शुक्ल पक्ष की विषम तिथियों (7,9,11,13) में सम्पन्न होता है। किन्तु पूणमासी की तिथि वर्जित है। इस अवसर पर विषम संख्या (3,5,7,9) में व्यक्ति अपने हाथ में कैचियाँ लेकर शिशु के केश काटते हैं। इस शुभ अवसर पर धलं एवं मदिरा द्वारा देवी-देवताओं की पूजा की जाती है और

ग्रामवासियों व सम्बन्धियों को भोजन कराया जाता है।

बुढानी

यह संस्कार परिवार के जेष्ठ पुत्र के दीघायु हेतु मनाया जाता है। इसके लिए एक वर्ष से बीस वर्ष तक की आयु उपयुक्त मानी जाती है। ब्यांस में इस संस्कार को बुढानी (कीप कोर्मो), चौदांस में सभाकोर्मो तथा दारमा में धरान या बिन्दी कहा जाता है। बुढानी शब्द वरिष्ठ (प्रधान, वयस्क या वृद्ध) व्यक्ति का द्योतक है। इस अवसर पर समस्त ग्रामवासी एक बृहद बोयं (देव पताका) लेकर श्वेत व आकर्षक वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत होकर वाद्य यंत्रो का बजाते हुए बुढानी धलं (पूजा सामग्री) के साथ बच्चे को लेकर ग्राम के इष्ट देवता के मन्दिर (कीपं स्थल) जाते हैं और देव मन्दिर में ध्वजा चढाने के पश्चात खुशियां मनाते है। इसके पश्चात समस्त ग्रामवासियों व सम्बन्धियों को भोजन कराया जाता है।

विवाह संस्कार

हिन्दू धर्मशास्त्रों में संतानोत्पत्ति के द्वारा अपनी वंश परम्परा को सतत बनाये रखने हेतु विवाह संस्कार को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जोहार एवं दारमा के भोटिया लोगों के वैवाहिक निमयों में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है, जिसका विवरण अग्रलिखित है।

जोहार के भोटियों के विवाह संस्कार

जोहार के भोटिया समाज में हिन्दू धर्म के अनुसार वैदिक रीति से विवाह करने की प्रथा है। इनमें सगोत्र विवाह वर्जित है। किन्तु वर्तमान समय में सगोत्र विवाह में भी कोई धार्मिक प्रतिबन्ध नही है। यहाँ के भोटिया समाज की विवाह पद्धति निम्नवत् है।

कन्यादान एवं आँचल कर्म

जोहार में वैदिक निमयों के अनुसार ही विवाह की प्रथा है। बारात आने के बाद धूलिअर्घ्य कर्म द्वारा द्वारचार के पश्चात शुभ मुहूर्त में घर के गोठ में पाणिग्रहण संस्कार प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम वर और कन्या पक्ष के लोग कपड़े के अन्तर्पट के आमने सामने बैठकर परस्पर फल, मिष्ठान एवं पकवान का आदान प्रदान करते हैं और वर पक्ष की ओर से बधू को एक आभूषण प्रदान किया जाता है जिसे 'मछयोल' कहते हैं। इसके पश्चात अन्तर्पट हटाकर ब्राह्मण के मन्त्रोच्चारण के साथ कन्या का पिता अपना दाहिना हाथ कन्या के दाहिने हाथ पर रखता है और माँ उसमें पवित्र जल डालती है। वर भी वधू के दाहिने हाथ का अंगूठा पकड़कर उसे ग्रहण करता है। इस प्रकार कन्यादान की विधि सम्पन्न होती है।

पाणिग्रहण संस्कार के पश्चात घर के बाहर आंगन में केला, आम, पीपल की टहनी एवं गन्ने की पोरी गाड़कर प्रतिष्ठित अग्नि के चारों ओर व्यौली (कन्या) खील विखेरती हुई सात फेर लगाती है। कन्या के आंचल ग्रंथि से संलग्न वर भी उसके पीछे पीछे चलता है। कन्या प्रत्येक परिक्रमा में एक एक दीपक को बुझाती हुई अन्त में सातवें दीपक की पूजा करती है। तत्पश्चात् वर बधू को अपनी बाई तरफ बैठाकर उसकी मांग में सिन्दूर भरता है और वर-बधू एक दूसरे का जूंठा दही खाते हैं। इस प्रकार आंचल कर्म सम्पन्न हो जाता है।

जान चेचू

कन्या पक्ष के घर बारात पहुंचने के दूसरे दिन प्रातः या बारात लौटते समय मार्ग में वर पक्ष की विवाहित बेटियां अपने मैंति (मायके) वालों को शुभ शकुन के रुप में पकवान तथा अन्य सामान भेंट करती हैं जिसे जान चेचू कहते है। फांफर के गुंथे हुए आटे से निर्मित लगभग पांच से०मी० ऊंचा शंकु के आकार में बना हुआ नर और नारायण के प्रतीक दो चेचू वर एवं वधू के सामने रख दिये जाते हैं। इसके वाद उस पकवान को खाकर बारात के लोग जांण (मदिरा) पीते है और जान चेचू देने वाली लड़कियों को उपहार स्वरुप कुछ मुद्रा प्रदान करते हैं।

दुनगोन

दुनगोन (द्विरागमन) बारात घर वापस आने के दूसरे दिन होता है। दुनगोन में पहले यहाँ वधू ही अपने माँ के घर जाती थी किन्तु आजकल वधू के साथ वर भी जाता है। एस०एस०पांगती (1992,86) के अनुसार वधू का मैत (मायका) बहुत दूर होने पर पड़ोस में ही जाकर दुनगोन की प्रथा सम्पन्न की जाती है।

दारमा के भोटियों के विवाह संस्कार

दारमा के भोटिया समाज में विवाह संस्कार के लिए 'दामी' शब्द प्रयुक्त होता है। यहाँ विवाह सजातीय एवं दूसरे गोत्र में होता है। यहाँ के भोटिया अपनी जाति (रं) के अतिरिक्त विवाह नही कर सकते हैं। इनमें एक विवाह की प्रथा है। इनके विवाह संस्कार का विवरण निम्नवत् है।

चमै खर्मो

चमै का अर्थ लड़की और खर्मो का अर्थ ठगना, निचोडना या निकालना है। चमै खर्मो से तात्पर्य लडके द्वारा पसन्द की गई लडकी से विवाह हेतु स्वीकृति या अस्वीकृति की सम्भावनाओं का पता लगाना है। इस कार्य हेतु लडका एक तरम (महिला) को नियुक्त करता है। यह महिला लडकी की सहेली या

लडकी से अधिक घनिष्ठता रखने वाली महिला हो सकती है जो लडकी से उसकी इच्छाओं का निचोड निकालने में समर्थ हो। लडका तरम के माध्यम से लडकी के पास कुछ उपहार या धन भेजता है। लडकी की अस्वीकृति होने पर लक्छेप (उपहार या धन) वापस आ जाता है अन्यथा नही। लडकी की स्वीकृति मिलने पर लडका अपने परिवार के वरिष्ठ लोगों को लडकी के घर भेजता है और सगाई की रस्म प्रारम्भ होती है।

सगाई (थोमो)

इस कार्य के लिए सर्वप्रथम लडकी के गांव के समस्त वरिष्ठ लोगों को लडकी के घर में एकत्र किया जाता है। वर पक्ष की ओर से मदिरा से भरा एक पात्र, सफेद ध्वजा, वस्त्र एवं मिष्ठान (बिन्ती) लाकर कन्या पक्ष के समक्ष सगाई का प्रस्ताव रखा जाता है। यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो बिन्ती को देवी देवताओं तथा पूर्वजों की आत्माओं के नाम पर अर्पित करते हुए सभी लोगों में वितरित किया जाता है। प्रस्ताव की अस्वीकृति पर बिन्ती वर पक्ष को वापस कर दी जाती है।

विवाहोत्सव (ढामी स्यास्या)

दारमा के शौका समाज में विवाह की तिथि प्रायः कन्या पक्ष द्वारा निश्चित की जाती है। बारात में वर की बहिनें या फूफियां (टीस्या) भी साथ जाती हैं। सभी वैवाहिक कार्यक्रम एक या दो दिन में सम्पन्न किये जाते हैं। कन्या की विदाई के समय उसकी सहेलियाँ भी बधू के साथ ससुराल आती हैं। इन सहेलियों को 'स्यास्या' कहा जाता है। इन स्यास्याओं को मिलाकर ही विवाहोत्सव को 'ढामी स्यास्या' कहते है। आजकल स्यास्या आने की यह प्रथा पूर्णतः समाप्त हो चुकी है।

बारात वापस लौटने पर धलं (केक) पूजन किया जाता है। इस समय बधू के सिर में सफेद वस्त्र रखकर एक प्यालें में मदिरा तथा सिक्का (येर) डालकर धलं के एक टुकडे सहित उसे खाने को दिया जाता है। बधू मदिरा पीना स्वीकार करे या नहीं किन्तु धलं खाना अनिवार्य माना जाता है। यह कृत्य हिन्दू रीतिरिवाजों के सप्तपदी के समान माना जाता है। तीन या चार दिनों तक वर के घर में रात दिन नृत्य गान तथा मांस मदिरा के साथ खुशियाँ मनाई जाती है। चार या छः दिन के पश्चात शुभ दिन निश्चित करके 'पठाश्यिमो' कर्म पूर्ण किया जाता है। सम्बन्धियों, मित्रो एवं बधू के साथ आई स्यास्याओं आदि को विदा करना ही पठाश्यिमो कहलाता है।

नाँस्यी

शौका समाज में नाँस्यी का अर्थ बधू के मायके में वर के विश्राम करने से है। विवाह के कुछ

दिन बाद वर-बधू तथा उनके मित्र ससुराल जाते हैं। वहाँ माँस, मदिरा, धलं तथा मिष्ठान से देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। इस अवसर पर बधू के गाँव के व्यक्ति व उसके रिश्तेदार भी आते हैं और वर अपनी आर्थिक स्थिति या बधू पक्ष की परम्परा के अनुसार सभी को वस्त्र सहित कुछ धनराशि भेंट करता है। इस धनराशि को 'येर' तथा वस्त्र को 'फुर्को', कहा जाता है। वधू का पिता वर को पगडी पहनाकर सम्मानित करता है। वधू को उसके माता पिता एवं सम्बन्धी वस्त्र एवं धन उपहार स्वरूप भेंट करते हैं। वर द्वारा बधू की माँ को 'नू रुप्या' (दूध पिलाने का मूल्य) चुकाया जाता है। तत्पश्चात् वधू को आशीर्वाद देकर वर के साथ विदा कर दिया जाता है।

दहेज (दैजू)

इस समाज में दहेज देने की प्रथा नही है। कन्या की विदाई में वस्त्र, आभूषण, खाने पीने के बर्तन, बिस्तर, घास काटने के औजार, ऊन कताई के लिए तकली एवं ऊन रखने की टोकरी अनिवार्य्र रुप से दी जाती है। यहाँ के शौका समाज में माँ की सम्पत्ति पर केवल पुत्री का एवं पिता की सम्पत्ति पर केवल पुत्र का ही अधिकार होता है वधू का नही।

युवा मिलन गृह (रंबंच्यिम)

शौका समाज में 'रं' का अर्थ शौका जनजाति एवं 'बं' का अर्थ किसी स्थान विशेष से है। अतः 'रं बं' का अर्थ उस स्थान विशेष से है जहाँ मात्र शौका लोग ही आ जा सकते हैं। सगोत्र युवक युवतियाँ और गैर व्यक्ति इसमें भाग लेने हेतु अर्ह नही हैं।इस स्थान के लिए प्रत्येक गाँव में स्थाई सामूहिक मिलन केन्द्र बनाया है जिसे रंबंच्यिम (च्यिम का अर्थ घर) एवं 'रामो-बां' (सामुदायिक मिलन केन्द्र) भी कहा जाता है। दारमा के शौका जनजाति क्षेत्रों में सामुदायिक मिलन केन्द्रो का होना इस लिए आवश्यक होता था कि इस क्षेत्र के पुरुष-महिला, युवक-युवतियाँ प्रातःकाल से सायंकाल तक कठोर परिश्रम करने के बाद रात्रि में भोजनोपरान्त अपनी शारीरिक एवं मानसिक थकान दूर करने हेतु इस स्थान में आते थे और एक दूसरे के साथ नृत्यगान, देश विदेश व ज्ञान विज्ञान के वार्तालाप, सुख दुख तथा अपने मनोद्गारों को व्यक्त करते हुए मनोरंजन करते थे। भारतीय आदिवासियों में युवागृहों से तात्पर्य अविवाहित युवक-युवतियों के रात्रि में मिलने के स्थान से है। मुरिया लोगों का घोटिल, भुइयाँ लोगों का धंगरबस्सा, मुण्डा तथा हो लोगों का गीतिओरा, नागा लोगों का मोरंग, बिहार के उरावों का धुमकुरिया इत्यादि कुमार गृहों के प्रमुख उदाहरण हैं।

डूंगरसिंह ढकरियाल (2004, 187) ने इन कुमार गृहों को 'रामाचिम्' या 'सौ देवियों का घर'

के नाम से सम्बोधित किया है। उनका कथन है कि रामाचिम् ग्रामवासियों की सलाह के पश्चात बनाया गया युवक-युवतियों के मिलने का एक सामूहिक भवन होता है। इस सामूहिक भवन में शौका जनजाति के युवक-युवतियाँ जीवन में प्रवेश पाने हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। रामाचिम का उद्देश्य युवक-युवतियों को नृत्यगान, शौका संस्कृति की जानकारी एवं युवावस्था में प्रवेश करने की जानकारी से अवगत कराना है। रतन सिंह रायपा (1974,85) के अनुसार रंबंच्यिम् की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य युवक-युवतियों को उचित प्रशिक्षण देकर भावी जीवन हेतु कर्तव्य बोध कराना, उनमें सामुदायिक भावनाओं का विकास करना, एक दूसरे के गुण-दोषों से अवगत होना, ग्राम व समाज की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं का निराकरण करना और सामाजिक नियमों का निर्माण करना तथा नृत्यपान व सुरापान द्वारा मनोरंजन करना है। अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983, 46) के अनुसार इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक सम्पर्क एवं मनोविनोद के अतिरिक्त युवक-युवतियों के लिए अपने भावी जीवन साथी के चयन हेतु उपयुक्त अवसर देना है।

रं बं के स्वरूप में परिवर्तन

प्रारम्भ में शौका समाज में इस सामुदायिक संस्था की स्थापना ग्राम एवं समाज के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य से की गई थी किन्तु बाह्य सम्पर्क एवं बदलते परिवेश के साथ इसमें मनोरंजन एवं प्रेमालाप को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा। शनैः शनैः बुजुर्गो ने इसकी सदस्यता छोड दी और यहाँ अश्लील प्रेमाख्यान, नृत्यगान एवं सुरापान होने लगा। कालान्तर में यह संस्था अश्लीलता के चर्मोत्कर्ष पर पहुंच गई और रं बं के सदस्यों द्वारा यौन-सम्बन्धों को महत्व देते हुए सामाजिक निमयों व मान्यताओं का उल्लंघन होने लगा। फलस्वरूप कुछ अवैध सन्तानें भी उत्पन्न हुई। इन घटनाओं के क्रमशः बढने पर शौका लोगों ने अपने लडके-लडकियों पर इस संस्था में जाने हेतु कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये जिससे रं बं के सदस्यों की संख्या कम होने लगी और धीरे-धीरे ये संस्थायें स्वतः ही लुप्त हो गई।

रंबंच्यिम का मूल्यांकन

रं बं की प्रासंगिकता के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों में मतभेद हैं। आर०पी० श्रीवास्तव (1963,25) का कथन है कि रं बं में अविवाहित लडके व लडकियां किसी खेत या खाली मकान में एकत्र होते हैं और शराब पीते हैं तथा साथ-साथ नृत्यगान करते हैं।

एस०पी० डबराल (1966, 174) का मत है कि रं बं का उद्देश्य विवाहों का प्रबन्ध करना है। अतः इनमें वही युवक-युवतियाँ पहुँचते हैं जिनका आपस में विवाह हो सकता है। रं बं में युवक युवतियाँ

अपना जीवन साथी चुनते हैं और उनसे तालमेल बढाते हैं। ऐसा करने में वे प्रायः अपने माता-पिता से परामर्श करते हैं तथा विवाह द्वारा अपनी भावी उन्नति की सम्भावनाओं पर भी दृष्टि डालते हैं। वर्तमान समय में रं बं संस्था भोटांचल में पूर्णतः समाप्त हो गई है।

निर्वाण संस्कार

यह संस्कार मृतात्मा की शान्ति के लिए सम्पन्न किया जाता है। शौका समाज में इस संस्कार में सर्वाधिक प्रभाव भौगोलिक परिस्थितियों एवं वाह्य सम्पर्क का पाया जाता है। जोहार एवं दारमा के शौका लोगों के निर्वाण संस्कार में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है, जिसका दोनों क्षेत्रों के संदर्भ में विवरण निम्नवत् है।

जोहार के शौका लोगों के निर्वाण संस्कार

जोहार के शौका लोगों में मृतक संस्कार हिन्दू परम्परानुसार ही किया जाता है। मृतक के शरीर को नहला धुलाकर सफेद वस्त्र से लपेट दिया जाता है। यह वस्त्र 'कत्तौर' (कफन) कहलाता है। इसके बाद शव को एक डानी (लकडी) से बाँधकर पीतांबर से ढक दिया जाता है। मृतक के सिर को दक्षिण दिशा की ओर करके घर के लोग कन्धा देते हैं शव यात्रा में सम्मिलित होने वाले लोग 'कटेर' कहलाते है। शेरिंग (1906 , 99) के अध्ययन के अनुसार जोहार में शव यात्रा के आगे-आगे दो व्यक्ति लगभग एक मीटर लम्बाई का सफेद वस्त्र पकड़कर चलते हैं जिसे 'बाट' कहते हैं। उनके पीछे एक व्यक्ति भुना हुआ धान (खिला) फेंकता जाता है जिसे 'बुरक्यारी' कहते हैं। पत्नी की मृत्यु होने पर पति शव यात्रा में सम्मिलित नही हो सकता है और न वह तिलांजलि ही देता है। श्मशान घाट में चिता सजाकर मृतक के पुत्र, भाई ,पिता या अन्य पारिवारिक व्यक्ति द्वारा चिता में अग्नि दी जाती है। शव विसर्जन के बाद गति कर्म करने वाले व्यक्ति के दाढी मूंछ तथा सिर के केश साफ किये जाते हैं। क्रियाकर्म पर बैठने वाला व्यक्ति श्मशान घाट से ही केवल धोती पहनकर एवं चादर से सम्पूर्ण शरीर को ढककर नंगे पैर घर आता है।वह 'बाट' का कपटा एक दण्ड में बाँधकर हाथ में पकडे रहता है।

मृत्यु के दस दिन तक का समय सूतक कहलाता है ग्यारहवें-बारहवें दिन परिवार के सभी लोग स्नान करके ब्राह्मण के मन्त्रोच्चारण के साथ पीपल के वृक्ष की टहनी या पत्तियों को स्पर्शकर सूतक की अशुद्धि से शुद्ध हो जाते है सूतक की अशुद्धि से शुद्धिकरण करने के लिए बाइसवें दिन पुरोहित द्वारा शान्तिपाठ का भी आयोजन किया जाता है।

पितर घोलि

जोहार के शौका समाज में श्राद्ध पक्ष के अवसर पर श्राद्ध तर्पण द्वारा पितृ पूजा करने की प्रथा नही है। चूंकि पुरुष वर्ग को वर्ष के अधिकांश समय तक व्यापार तथा पशुचारा हेतु प्रवासी जीवन व्यतीत करना पडता था। अतः वह बारहवीं के दिन ही शूक्ष्म विधि अपनाकर श्राद्ध तर्पण के विधान से निवृत्त हो जाता है। एस0एस0 पांगती (1992, 92) के अनुसार अतीत में पन्द्रहवें दिन स्नानादि से निवृत्त हो नदी किनारे से एक छोटा सा पत्थर लाकर घर में 'पितर' की स्थापना की जाती थी। इसे पितर घोलि कहते थे। इस दिन एक बकरी काटकर कच्चे माँस का टुकडा चखा जाता था और समस्त दस दिनिया बिरादरों को माँस-भात खिलाया जाता था। जिसे 'मासु चखै' कहते थे।

दारमा के शौकाओं के निर्वाण संस्कार

मृतात्मा की शांति हेतु सम्पन्न किया जाने वाले निर्वाण संस्कार को दारमा के भोटिया 'ग्वन' एवं शेष शौका लोग 'ढुढिंग' कहते हैं। डूंगर सिंह ढकरियाल (2004, 11) के विवरण के अनुसार ग्वन का अर्थ गबन, छति, खर्च, खोना एवं मृत्यु आदि होता है। अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983, 47) के अनुसार ग्वन शब्द की उत्पत्ति 'ग्यू होनू' अर्थात 'शरीर में प्रकट होना' से हुई है। भोटिया समाज में यह विश्वास प्रचलित है कि शरीर से पृथक होने के बाद भी आत्मां तब तक भटकती रहती है, जब तक कि उसे पुनः आहूतकर मार्ग के लिए आवश्यक वस्तुएं पाथेय के रुप में देकर उसका पथ प्रदर्शन नही किया जाता।

ब्यांस और चौदांस में मृत व्यक्ति का दाह संस्कार तुरन्त कर दिया जाता है। सी0ए0 शेरिंग (1906, 126) के अनुसार दारमा में बीशवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मृतकों को भूमि में दफनाने और वर्ष में एक बार कार्तिक माह में उन्हें पुनः निकालकर दाह संस्कार करने की प्रथा प्रचलित थी जो तिब्बती परम्परा से प्रभावित थी। वर्तमान समय में यह प्रथा समाप्त हो गई है। मृत व्यक्ति को स्थान कराकर उसे सूती थैले में उलटे बंटे धागे से सिलकर अरथी (डाँढी) पर रखकर श्मसान (चेसा) ले जाया जाता है। शव के दाह संस्कार के बाद शव यात्रा में गये व्यक्ति मृतक के घर लौटकर आंगन में रखी धूप से अपना शुद्धिकरण करते हैं। दाह क्रिया के दूसरे दिन बाद मृतक की अस्थियाँ (च्यै) एकत्रकर उन्हें एक डिब्बे में रखकर गाँव के बाहर एक निश्चित स्थान पर एक गढ्ढा खोदकर उसमें रख दी जाती है।

ग्वन संस्कार

दाह संस्कार से लेकर मृतक संस्कार (ग्वन) के मध्य की अवधि अनिश्चित रहती है। प्रायः दाह क्रिया व ग्वन के मध्य की यह अवधि 11 दिन से 3 या 4 माह तक हो सकती है। दारमा क्षेत्र में ग्वन

संस्कार में अधिक व्यय एवं अधिक समय लगता है। ग्वन संस्कार में याक का प्रमुख स्थान होता है। इस में प्रयुक्त याक को 'या' कहा जाता है। या को मृतात्मा का प्रतिनिधि मानकर उसके खुर तथा सींग सोने से मढकर उसकी पीठ पर गेरुवा रंग द्वारा एक विशेष चिह्न बनाया जाता है। मृत व्यक्ति का चादर याक की पीठ पर रखकर उसके ऊपर मृत व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त सभी वस्तुएं तथा उसकी अस्थियां रखी जाती हैं। याक पर अक्षत फेंककर मृतात्मा से प्रार्थना की जाती है कि वह याक के शरीर में प्रवेश करे। अब याक 'या' में परिवर्तित हो जाता है। समस्त ग्रामवासी या को मृतात्मा का प्रतिनिधि समझकर उसे अपने अपने घरों के आंगन में आमंत्रित कर भोजन देते हैं। रात्रि में घर से बाहर आग के चारों ओर सभी स्त्री पुरुष गोलाकार पंक्तियों में वाद्य यंत्रों के ताल के साथ नृत्य करते हैं। यह ग्वन संस्कार दो से तीन दिनों तक चलता है।

झू हेबस्यिमों

मृत व्यक्ति के घर में बांस की तीन लकड़ियों से मृत व्यक्ति के वस्त्र व आभूषणों से एक मनुष्याकृति तैयार की जाती है। इस आकृति को 'झू' कहा जाता है। झू के सामने एक बडा दीपक जलाकर पके चावल के पिण्ड एक थाल में रखे जाते हैं जो मृत व्यक्ति के लिए पिण्डदान होते है। गाँव के अन्य परिवार के लोग भी अपनी अपनी मृतात्माओं को पिण्ड दान हेतु चावल के पिण्ड उसी थाल मे रखते जाते है। रतन सिंह रायपा (1974, 96-110) के विवरण के अनुसार 'अमरीचा' जो ग्वन संस्कार में मृत व्यक्ति की आत्मा का मार्गदर्शन करता है, वह अविरल लगभग चौबीस घण्टे तक मृतात्मा के प्रतिनिधि झू को उपदेश देता है। वह मृतात्मा को आत्मालोक तक पहुंचने का मार्ग भी बताता है और अन्त में मृतात्मा को विदा लेने का आदेश देता है। ये सभी आदेश, कथायें एवं उपदेश कई भागों में विभक्त हैं। इनका विस्तृत वर्णन डूंगरसिंह ढकरियाल (2004, 33 265) ने काकपुराण नामक पुस्तक में किया है। इसके पश्चात अमरीचा द्वारा झू को हटा दिया जाता है। तत्पश्चात मृत व्यक्ति के वस्त्रों एवं पिण्डो को एक निश्चित स्थान में फेंक दिया जाता है। और या को किसी विशेष स्थान पर ले जाकर स्वतन्त्र छोड दिया जाता है। अमरीचा द्वारा ग्वन संस्कार की समाप्ति के पश्चात इसमें भाग लेने वाले सभी व्यक्तियों का शुद्धिकरण किया जाता है। रतन सिंह रायपा (1974, 111) के अनुसार विधिविधान एवं उद्देश्य की दृष्टि से ग्वन पूर्णतः हिन्दू संस्कार है। इसमें तिब्बती प्रभाव बिल्कुल नही है। ग्वन और हिन्दुओं के श्राद्ध में कुछ भी अन्तर नही है।

ग्रीष्म एवं शीतकालीन स्थानान्तरण से सम्बन्धित रीतिरिवाज

अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983, 62) के अनुसार पशुचारक तथा व्यापारी प्रजाति होने के कारण भोटान्तिकों के लिए ऋतुचक्र के अनुसार निष्क्रमण आवश्यक है। पट्टी चौदांस, ब्यांस और दारमा के कुछ ग्रामों के निवासियों को जो स्थायी रुप से एक स्थान पर ही रहते हैं छोडकर शेष भोटिया अक्टूबर से अप्रैल माह तक 800 से 12000 फीट की ऊंचाई पर स्थित अपने स्थाई ग्रीष्मकालीन आवासों में रहते हैं तथा दिसम्बर से मार्च तक निम्न घाटियों में स्थित शीतकालीन आवासों से निवास करते है। भोटिया लोगों के ग्रीष्म एवं शीतकालीन निष्क्रमण से सम्बन्धित रीतिरिवाजों का विवरण निम्नवत् है।

कुन्चा (Migration- Process)

रतन सिंह रायपा (1974, 156-158) के अनुसार शौका परिवारों का ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन आवास स्थलों में अपने पशुओं एवं आवश्यक सामग्री सहित वर्ष में एक बार आवागमन 'कुन्चा' कहलाता है। इनके दोनों आवास स्थानों के मध्य की दूरी लगभग 60 से 80 कि0मी0 तक होती है। जिसे कुन्चा के माध्यम से मनोरंजन के साथ ये लोग लगभग 12 से 15 दिन में पूर्ण करते हैं। इसमें कई परिवारों के लोग समूह के रुप में साथ-साथ प्रस्थान करते हैं। ये अपने साथ आवश्यक बर्तन, भोजन सामग्री, वस्त्र, बिस्तर, मनोरंजन के साधन एवं वर्षा व धूप से बचने हेतु तंबू इत्यादि साथ लेकर चलते हैं।

प्रातः काल उठकर सम्पूर्ण सामान अपने पशुओं पर रख लिया जाता है। धीरे धीरे 5 से 7 कि0मी0 की यात्रा पूर्ण कर अगले स्थान (ढेरा या ढंसू) में शिविर (पडाव) स्थापित होता है। कुन्चा उठने से पूर्ण मदिरा पान एवं स्वल्पाहार किया जाता है। यह मदिरा पान 'कुन्चा च्याक्ती' एवं स्वल्पाहार 'कुन्चा रूहम' कहलाता है। मदिरा पान ठंड से बचने के लिए किया जाता है। अधिक उम्र के लोग घोडों पर सवारी करते है। शेष पैदल यात्रा करते हैं। मार्ग में एक व्यक्ति मदिरा का बर्तन लिए काफिला के आगे जाकर खड़ा हो जाता है और वह काफिला के प्रत्येक सदस्य को चांदी निर्मित छोटे से प्याले में मदिरा बाँटता जाता है। इसी प्रकार दूसरा परिवार अगले दिन मदिरा का वितरण करता है। पडाव में पहुंचते ही पशुओं की पीठ से सामान उतारा जाता है। जो परिवार पडाव में पहले पहुंचता हैं उसका एक सदस्य बाद में पहुंचने वाले परिवार के पशुओं से सामान उतारने में मदद करता है। इसके पश्चात प्रत्येक परिवार के लोग परस्पर स्वल्पाहार वितरित करते हैं। पुरुष वर्ग लकडी आदि का प्रबन्ध करते हैं, स्त्रियां भोजन तैयार करती हैं और लडके पशुओं को घास चराने हेतु ले जाते हैं। भोजनोपरान्त थोडा विश्राम करने के

पश्चात पुरुष वर्ग एक स्थान पर एकत्र होकर अपना मनोरंजन करते हैं। इसी प्रकार के क्रिया कलाप दूसरे दिन भी आयोजित होते हैं। कभी-कभी हिमपात एवं रास्ता खराब होने के कारण एक ही पडाव पर कई दिन तक ठहराव हो जाता है जिसे 'बैठा' कहते हैं। इस प्रकार वर्ष में दो बार कुन्चा के माध्यम से मनोरंजन हो जाता है।

व्यापार से सम्बन्धित रीतिरिवाज

चीन द्वारा तिब्बत पर आक्रमण से पूर्व तिब्बत से व्यापार करना शौकाओं के आर्थिक जीवन का एक प्रमुख आधार था। तिब्बत व्यापार पर इनका लगभग एकाधिकार था। गिरिद्वारों से संलग्न ऊपरी अधिवासों में निवास करने वाली शौका जनजाति विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कृषि को कभी भी आजीविका का प्रमुख आधार नही बना सकी। अतः इन्होने पशुपालन के बाद व्यापार को अपने प्रमुख व्यवसाय के रूप में चयनित किया। प्रत्येक शौका व्यापारी का तिब्बत में एक मध्यस्थ तिब्बती व्यापारी होता है जिसे 'हुणिया मितुर' कहा जाता है। एस०एस० पांगती (1992,50-53) के अनुसार शौका एवं तिब्बती व्यापारियों के मध्य व्यापार से सम्बन्धित अनेक रीतिरिवाज प्रचलित थे, जिनका विवरण निग्नवत् है।

शैर् द्यू-ङुल द्यू

शौका एवं तिब्बती व्यापारियों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने का एक विशिष्टि नियम था जिसे 'शैर् द्यू-ङुब्ल द्यू' कहते थे। तिब्बती भाषा के अनुसार 'शैर्' का अर्थ सोना, 'ङुल' का अर्थ चांदी और 'द्यू' का अर्थ पानी होता है। एक चांदी की प्याली में पानी का प्रतिरुप पेय पदार्थ मदिरा डालकर घी, सत्तू, ऊन तथा स्वर्ण को स्पर्श करके दोनों पक्ष मदिरा पीते है और परस्पर बहुमूल्य वस्तुओं का उपहार स्वरुप आदान प्रदान करते हैं। एस०डी०पन्त (1933, 218) एवं राहुल सांकृत्यायन (1958, 143) ने इस प्रथा को अपभ्रंश रुप में सुलजी मुलजी के नाम से उल्लिखित किया है। इन्द्र सिंह रावत (1973, 3) के अनुसार यदि भोटिया मित्र मदिरा पान करने वाले न हो तो ज्या (नमकीन चाय) पीकर भी उक्त परम्परा का निर्वाह किया जाता है। मित्रता को स्थायी रुप देने के लिए प्रमाण के रुप में एक पत्थर के दो टुकडे करके दोनो मित्र एक-एक टुकडा अपने पास सुरक्षित रख लेते हैं। मित्रता के सम्बन्ध में विवाद होने पर इन टुकड़ो को प्रमाण स्वरूप जोड़ा जाता है। पत्थर के टुकडों द्वारा प्रमाणित मित्रता के नियम को लिखित रुप देना अथवा व्यापार से सम्बन्धित लिखित अनुबन्ध ही 'गमगिया'

कहलाता है। गमगिया का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति छास्यों (परगना अधिकारी के समकक्ष) द्वारा दण्डित भी किया जाता है। उक्त परम्परागत निमयों का निर्वाह दोनों व्यापारी मित्र वर्ष 1962 तक करते रहे।

सोग ला सोग

तिब्बती व्यापारियों से भोटिया लोग वस्तु विनिमय एवं नकद मूल्य देकर व्यापार करते थे। नकद मूल्य देने पर वस्तुओं का मूल्य बाजार भाव अथवा लागत मूल्य पर निर्धारित होता था किन्तु वस्तुओं के रूप में व्यापार होने पर प्रत्येक पक्ष का व्यापारी अपनी वस्तु का मूल्य कई गुना अधिक निर्धारित करता था। इस प्रकार का व्यापार 'सोग ला सोग' (वस्तु विनिमय) कहलाता था।

दे मुसे

यदि एक भारतीय भोटिया व्यापारी पश्चिमी तिब्बत के किसी ग्राम प्रधान या मुखिया से मित्रता स्थापित कर लेता था तो उस मुखिया के अधिकार से उस ग्राम में निवास करने वाले सभी तिब्बती परिवार सामूहिक रुप से उस भोटिया व्यापारी के मित्र बन जाते थे। ऐसे मित्र 'दे मुसे' कहलाते थे।

क्येमे-सिमे

एस०एस० पांगती (1985, 32) के विवरण के अनुसार शौका और तिब्बती मित्र, मित्रता के सम्बन्ध को प्रगाढ बनाये रखने के लिए प्रतिवर्ष उपहार स्वरुप भारतीय वस्तु गुड, मिश्री, सत्तू, खाजा तथा तिब्बती वस्तु घी एवं छिरपी (मक्खन निकालने के पश्चात पनीर पकाने से ठोस रुप में प्राप्त पदार्थ) का परस्पर आदान-प्रदान करते थे। शौका लोगों को तिब्बती भेंड तथा चंवर गाय (याक) का घी बहुत पसन्द था जिसे प्राप्त करने हेतु वे अपने तिब्बती मित्र को चंवर गाय खरीदकर पालने हेतु उसका निश्चित मूल्य दस रुपया देते थे। तिब्बती मित्र उस गाय से प्राप्त घी और छिरपी की एक निश्चित मात्रा प्रतिवर्ष शौका मित्र को देता था। यह व्यवस्था तब तक बनी रहती थी जब तक कि हुनिया मित्र विवश होकर उस गाय का निश्चित मूल्य अथवा गाय ही वापस न लौटा दे। इस प्रथा को क्येमे-सिमे कहते थे।

धार्मिक कृत्य

भोटिया समाज के सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाकलाप हिन्दू धर्मशास्त्रों में वर्णित विधि विधानों के अनुसार ही सम्पादित किये जाते हैं। तिब्बत के साथ दीर्घ कालीन व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण उनके धार्मिक कृत्यों में बौद्धधर्म का कुछ प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। इनके धार्मिक संस्कारों को सम्पन्न करने की विधियों में यहाँ की जलवायु, भौगोलिक परिस्थितियों तथा उपयोग सामग्री के आधार पर कुछ परिवर्तन अवश्य आ गये है किन्तु इनके सम्पूर्ण धार्मिक कृत्य हिन्दू परम्परा से ही प्रभावित है। भोटिया

लोगों के धार्मिक कृत्यों का विवरण निम्नवत् है।

स्थानीय देवी-देवताओं सम्बन्धी विश्वास

अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983, 67) के मतानुसार भोटियों की आस्थाओं, उपासना विधियों एवं विश्वासों पर तीन प्रमुख तत्वों का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

1. भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित प्रकृति पूजा और प्रकृति की उपासना।
2. हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की उपासना तथा हिन्दू संस्कृति के अनुरुप बहुदेववाद का प्रचलन।
3. तिब्बत से धनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्धों के परिणाम स्वरुप सांस्कृतिक प्रभाव के रुप में तिब्बती मूल के देवी देवताओं की उपासना।

प्रकृति की उपासना

भारत वर्ष के अन्य आदिवासियों के समान जोहार एवं दारमा के भोटिया भी प्रकृति उपासक हैं। यहाँ प्रकृति के प्रतीक अनेक देवी-देवताओं की पूजा होती हैं। जोहार में अतिवृष्टि और बर्फ से रक्षा करने हेतु 'धूरमा' पशुओं की सुरक्षा हेतु 'हरद्योल', कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु 'थत्याल', गाँव के निवासियों के रोग मुक्ति हेतु 'ल्हमसेल' तथा विजय प्राप्ति के लिए 'ल्वारद्यो' आदि देवताओं को प्राकृतिक शक्ति का प्रतीक मानकर उनकी पूजा की जाती है। यहाँ अशुभ ग्रहों के निवारणार्थ तथा भूत प्रेतों को प्रसन्न करने हेतु पशुबलि भी दी जाती है। दारमा, ब्यांस तथा चौदांस क्षेत्रों में भी प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक अनेक देवी-देवाताओं की पूजा की जाती है। खेतों में हल चलाने से पूर्व यिप्से, बीज से अंकुर फूटते समय बूसै, फसल तैयार होते समय मूसै, प्यासै, फसल काटने के बाद सू-रिंगदिंग की पूजा की जाती है। इसके अतिरिक्त धन का रक्षक और व्यापार की वृद्धि में सहायक घबला देव की पूजा की जाती है। प्रकृति न केवल मनुष्य के जीवन को ही प्रभावित करती है बल्कि उसकी भावनाओं, वैचारिक शक्ति एवं अज्ञात रहस्यमयी दैवी शक्तियों के प्रति उसकी आस्थाओं पर भी प्रभाव डालती है। शेरिंग, सी०ए० (1906, 102 03) के अनुसार प्रकृति के विभिन्न रूपों से प्रभावित होकर इस क्षेत्र के भोटिया समाज में प्रकृति पूजा और प्रकृति की रहस्मयी शक्तियों के प्रतिरुप देवी-देवताओं की उपासना सम्बन्धी विश्वास उत्पन्न हुआ है।

हिन्दू देवी देवताओं की उपासना

एस०एस० पांगती (1992, 96-101) के अनुसार इस क्षेत्र में ब्राह्मण धर्म के प्रभाव के पश्चात एकादशी, पूर्णिमा तथा अष्टमी आदि पर्वो पर उपवास रखने और दुर्गा, नन्दा आदि शक्तियों की उपासना

हेतु त्यौहार मनाने की प्रथा आरम्भ हुई। प्राचीन एवं नवीन संस्कृतियों के समन्वीकरण के फलस्वरुप जोहार के विभिन्न ग्रामों में विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। दारमा, ब्यांस तथा चौदांस के प्रत्येक ग्राम की दक्षिणी सीमा पर एक देवी, मन्दिर होता है। हिन्दु धारणा के अनुसार देवी संक्रामक बीमारियों को जो दक्षिण दिशा से प्रवेश करती हैं रोकने में समर्थ होती है।

तिब्बती देवी-देवताओं की उपासना

जोहार एवं दारमा के भोटिया हिन्दू धर्म के कुछ देवी-देवाताओं की उपासना के साथ ही तिब्बती मूल के देवताओं की भी उपासना करते हैं। जोहार के निखुर्पा लोग 'धूरमा', बुरफू के निवासी ल्हमसाल, जेठौरा भोटिया बालीचन एवं रुनिया तथा मिलम्वाल भोटिया 'माई' की पूजा करते हैं। पशुओं के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए जोहार और दारमा के भोटियों द्वारा 'सिदुवा-बिदुवा' बन्धुओं की आराधना की जाती है। एस०डी० पन्त (1935, 226) के अनुसार पथिक जन पर्वतीय भोगों की कठिन चढाई पार करने के उपरान्त पर्वत-शिखरों के बीच खुले स्थल पर 'कठबुडिया' देवी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हेतु उनके पूजा स्थल पर एक छोटा सा पत्थर या देवदार वृक्ष की टूयूँती अर्पित करते हैं।

देवपूजन विधि

जोहार एवं दारमा के शौका समाज में अनेक परम्परागत, हिन्दु धर्म से सम्बन्धित एवं तिब्बती धर्म से सम्बन्धित देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। इनका वर्णन एवं पूजन विधियाँ निम्नवत् है।

जोहार के देवी-देवता एवं उनकी पूजन विधि

जोहार के भोटिया विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इनके प्रमुख देवी-देवता एवं उनकी पूजन विधियाँ इस प्रकार है।

थत्याल-भुम्याल

'थात' अर्थात भूमि देवता 'थल्याल' या 'भुग्याल' कहलाता है। इसे भूमिया या क्षेत्रपाल भी कहते हैं। इसे उस गाँव या क्षेत्र की रक्षा करने वाला देवता माना जाता है। जून माह में मल्ला जोहार पहुंचने पर मिलम गाँव के सयाना और पांगती लोग सामूहिक रुप से थत्याल देवता की पूजा करते हैं। इस पूजा में बकरी की बलि भी दी जाती है। अनावृष्टि होने पर थत्याल की पूजा करना आवश्यक समझा जाता है। नव प्रसूता गाय का बाइसवें दिन तक दूध तथा घी से बना हुआ पकवान और फसल पकने पर अनाज भी सर्वप्रथम भूमिया देवता को अर्पित किया जाता है।

हरद्योल

मिलम ग्लेशियर के पश्चिम में हिमालय की एक चोटी हरदेवल है। इस चोटी पर निवास करने वाला देवता हरदेवल या हरदयोल कहलाता है। जोहार घाटी में मिलम गाँव के निखुर्पा लोगों ने गाँव के पश्चिम दिशा की ओर हरदेवल की स्थापना की है। वे लोग प्रति तीसरे या पांचवे वर्ष बकरे की बलि देकर सामूहिक रूप से हरद्योल की पूजा करते हैं।

धुरमा

प्राचीन काल में इस क्षेत्र में धरमू और राजू नाम के दो भाई बहुत पराक्रमी तथा तन्त्रमंत्र के ज्ञाता थे। यहाँ प्रायः अतिवृष्टि या असमय बर्फ गिरने पर वर्षा रोकने के लिए धुरमा देवता का आवाहन किया जाता है। मिलम गॉव के लोग नन्दाष्टमी के पश्चात प्रति तीसरे वर्ष इन दोनों भाइयों की अवतारी पुरुष के रूप में आराधना करते हैं।

सांई देवता

इस देवता को गाँव का रक्षक देवता माना जाता है। सांई देवता की पूजा मिलम और पांछू गाँव वाले करते हैं। इस देवता की पूजा में बकरे का पेट चीरकर उसका हृदय और फाँफर के आटे का बना हुआ सिल्दू चढाया जाता है। पूजा स्थल को कपडे की रंगबिरंगी झण्डियों तथा बन्दनवार से सजाया जाता है। इस अवसर पर लोग घर में हलुवा-पूडी तथा मांस भात खाते हैं।

नन्दा देवी

शान्ति स्वरुपा दुर्गा के नौ रुपों में एक रुप शैल पुत्री नन्दा भी मानी जाती है। नन्दा देवी का निवास स्थान हिमालय में होने के कारण हिमालय की एक चोटी का नाम नन्दादेवी है। नन्दादेवी का पर्व भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को मनाया जाता है। नन्दाष्टमी के तीन चार दिन पूर्व से ही रात्रि के समय मन्दिर या गाँव के किसी निश्चित स्थान पर वाद्य यंत्र बजाकर नन्दादेवी का आह्वान किया जाता है। पूजा के एक दिन पूर्व कुछ लोगों को पाँच हजार मीटर से भी अधिक ऊँचाई पर खिलने वाले 'कौंल-कफू' (ब्रह्मकमल) लाने को भेजा जाता है। पूजा के दिन प्रातः फूल लाने वालों के पहुंच जाने के बाद सभी ग्रामवासी वाद्य यंत्रो के साथ मन्दिर जाते है। मन्दिर में भैंसे तथा बकरी की बलि दी जाती है।

ल्वार-द्यो

जोहार में क्षत्रियों द्वारा आयुध पूजा के समान ही 'ल्वारद्यो' अर्थात 'लौह देवता' की पूजा की
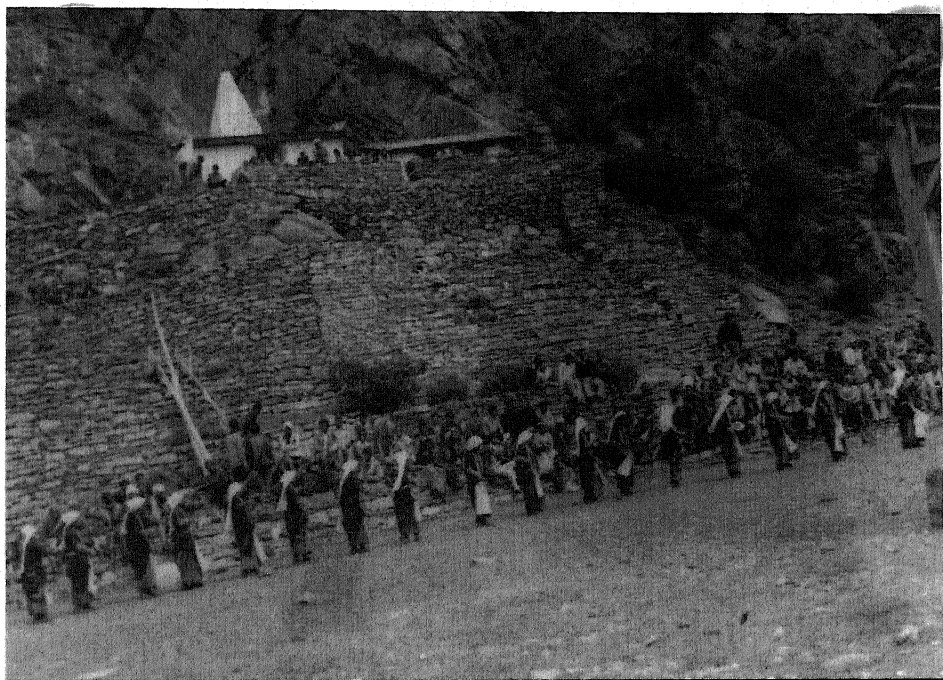
बसन्त पंचमी के दिन 'घबला देव' पूजन के लिए नृत्य सहित
प्रस्थान करते हुए 'नावी' ग्रामवासी

जाती है। इस देवता के थान (पूजा स्थल) में केवल लोहे के ही हथियार लाये जाते हैं अन्य धातु के नहीं। बलि दी जाने वाली बकरी केगले में भी लोहे की घण्टी बांधी जाती है। मिलम में इस देवता को पांगती लोग एवं पांद्दू में नित्वाल लोग पूजते हैं।

साद्यो तथा ल्हमसेल

नन्दाष्टमी से तीन दिन पूर्व नागपंचमी के दिन मरतोली गांव के लोग सत्तू का गोला चढाकर 'साद्यो देवता' की पूजा करते हैं। बुर्फू और टोला गाँव वाले भाद्रपद माह के शुक्ल पक्ष में 'ल्हमसेल' की पूजा करते हैं। ल्हमसेल तथा साद्यो दोनों हुनिया (तिब्बती) देवता माने जाते हैं। तिब्बत में सत्तू की धूप करने तथा ल्होसर मेला (नववर्ष का उत्सव) के अवसर पर नया ध्वज खड़ा करने की विधि के ही अनुरुप यह पूजा उत्सव जोहार में भी मनाया जाता है।

रागा

टोला और बुर्फू गाँव में नुकीली पत्ती वाले रागा (फर) के पेड़ों के मध्य रागा का मन्दिर है। भाद्रपद माह के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को रागा की पूजा होती है। आज कल रागा देवता को 'रघुनाथ देवता' भी कहा जाता है। पूजा के दिन गाँव से एक हजार मीटर की ऊँचाई पर नन्दा देवता के थान में भोग लगाने के पश्चात रागा देवता की पूजा होती है।

दारमा के देवी-देवता एवं उनकी पूजन विधि

दारमा, ब्यांस एवं चौदांस के प्रमुख देवी देवता एवं उनकी पूजन विधि निम्नवत् है।

घबला देव

घवला देवता धन का रक्षक और व्यापार की वृद्धि में सहायक माना जाता है। प्रत्येक गाँव में घबला देव का पूजा स्थल या मन्दिर होता है जिसमें प्रतिवर्ष बसन्त पंचमी के दिन सामूहिक पूजा की जाती है। इन दिन प्रत्येक परिवार का एक पुरुष सदस्य नवीन वस्त्राभूषण धारण कर सूर्योदय से पूर्व ही ताँबे का पात्र, अक्षत एवं ध्वजा लेकर घबला देव के मन्दिर पहुंचता है। सभी लोगों के एकत्र होने पर ताँबे के बरतनों को बजाते हुए अक्षत उछालकर घबला देवता से प्रार्थना की जाती है कि वह उनके धन और व्यापार की वृद्धि में सहायक हो। पूजा के बाद घरों को लौटते समय प्रत्येक पुरुष सदस्य एक-एक हरी टहनी तोडकर लातें हैं जिसमें ध्वजा बाँधकर उसे अपनी छत पर चढ़ाकर 'कयेर घबला' का पूजन करते हैं। शाम को पुरुष, महिलायें और बच्चे पृथक-पृथक समूह में गाँव के प्रत्येक घर में जाते है और घबला देवता की स्तुतियां गाते हुए उसकी कृपा हेतु प्रार्थना करते हैं। दूसरे दिन ग्राम वासियों

इष्टदेव पूजन के लिए धलं (प्रसाद) तैयार करती हुई शौका नारियाँ

द्वारा घबला के मन्दिर में बकरे की बलि देकर सामूहिक पूजा की जाती है। तीसरे दिन घबला के मन्दिर में बोयं (पताका) फहराने के उपरान्त समारोह का समापन हो जाता है। डुंगर सिंह ढकरियाल (2004, 212) घबला देव को भगवान शंकर के प्रमुख गण वीरभद्र का प्रतीक मानते हैं।

स्यां-सै

स्यां-सै देवता महादेव शंकर का साक्षात प्रतीक देवता माना जाता है। इनकी पूजा चौदांस क्षेत्र में शिवरात्रि के दिन की जाती है। स्यां-सै की पूजा सिरसिंग की धूप हरी पत्तियाँ तथा भोज पत्र की पत्तियाँ चढाकर की जाती है।

मू-सै

दारमा के शौका अपने कुल देवता 'मू-सै' की पूजा करते हैं। कुल देवता की पूजा करते समय घर के सभी सदस्य एक दिन पूर्व से ही उपवास रखते हैं। दूसरे दिन प्रातः स्नानोपरान्त नौ जलस्रोतों से जल लाकर न्युंडांग देवी और कुल देवता के मन्दिर को पवित्र किया जाता है। देवी की पूजा महिलाओं द्वारा सम्पन्न की जाती है। इसके बाद रात्रि में कुल देवता की पूजा बकरी की बलि देकर की जाती है और प्रातः काल होते ही छत के ऊपर 'हया रांचिम' देव की पूजा भी बकरे की बलि देकर का जाती है। न्युंडांग व मू-सै का प्रसाद परिवार के अतिरिक्त अन्य लोगों को देना वर्जित है।

वैगर-सै

दारमा घाटी के गो गाँव और सीमान्त ग्राम सीपू में वैगर देवता (पर्वत पर मार्ग रोकने वाला देवता) की पूजा माघ के माह में की जाती है। इस समय दारमा में पलती, फांफर, आलू एवं मूली आदि की फसल तैयार होने लगती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाह्य आक्रमणकारियों के हमले द्वारा फसल लूटने की सम्भावना से सुरक्षा की दृष्टि से इस देवता की प्रतिष्ठा की गई होगी।

इष्ट देवताओं का पूजन

प्रत्येक गाँव या राठ (गोत्र) का अपना इष्ट देवता होता है। इन इष्ट देवी देवताओं की वर्ष में एक या अधिक बार व्यक्तिगत या सामूहिक रुप से बकरी, धलं, मदिरा तथा ध्वजा चढाकर पूजा की जाती है। यहाँ विवाहित लडकी या दामाद को एक बार मातृपक्ष के इष्ट देवताओं की पूजा हेतु आने की प्रथा है। पट्टी ब्यांस में ब्यांस मुनि की पूजा होती है।

भूत प्रेत पूजन

इस समाज में भूत प्रेत पूजन की प्रथा प्रचलित है। जोहार के शौका लोगों में यह मान्यता है कि मनुष्य के निधन के पश्चात उसकी आत्मा नवजीवन धारण करने से पूर्व कुछ समय तक भूत प्रेत योनि में भटकती रहती है। इसके अतिरिक्त एक अन्य धारणा यह भी है कि किसी दुर्घटना में असामयिक मृत्यु हो जाने पर उसकी आत्मा को प्रेत योनि में भटकना पडता है। इस समाज में दिवंगत व्यक्ति को भूत-प्रेत योनि से मुक्ति दिलाने हेतु बाईस रात्रियों का 'जागर पूजन' आयोजित किया जाता है। जोहार में त्योहारों एवं अन्य शुभ अवसरों पर अपने पितृगणों को जांण (मदिरा) तथा पकवान अर्पित करने की प्रथा है।

रात्रि के समय नदी नाले, श्मसान घाट या निर्जन बस्ती से गुजरते समय यदि कोई व्यक्ति भूत-प्रेत की आशंका से अस्वस्थ्य हो जाता है तो उस स्थान विशेष में निवास करने वाले भूत को खिचडी एवं बकरी की बलि देने की प्रथा प्रचलित है। हिम शिखिरों पर विचरण करने वाले यक्ष, गन्धर्व, किन्नर तथा परियों द्वारा बच्चों के अपहरण की विगत घटनाओं से अपहृत व्यक्तियों की आत्मा का भी पूजन किया जाता है। उत्क्रमण काल में नदी नाले एवं पहाड की चढाई पार करते समय भूत प्रेतों तथा एडी-आंचरियों (परियों) के प्रकोप से बचने हेतु माताऐं अपने शिशुओं के सिर पर माँस ज्यूनाल (उडद-चावल मिश्रित खिचड़ी) घुमाकर फेंक देती है। एम०एस० रन्धावा (1970, 145) के अनुसार जोहार में गोरी नदी पर रोटी चढाने की प्रथा है। एस०एस० पांगती (1992, 102-103) के अनुसार किसी व्यक्ति को जठिया बांण (भूत) का प्रकोप होने पर उसे खिचडी भात के साथ एक लाठी एवं बांसुरी चढाई जाती है। परियों का प्रकोप होने पर बिन्दी कंघी एवं चूडी इत्यादि श्रंगारिक वस्तुएं चढाई जाती हैं।

दारमा क्षेत्र में भूत-प्रेत को पूजने की विधि को बलि फेंकना या 'चंच्यिमों' (चंमो) कहतें है। इस प्रकार की पूजा में बकरी या मुर्गे की बलि दी जाती है। चंमों पूजा सम्पूर्ण ग्रामवासियों की सामूहिक या व्यक्तिगत रुप से होती है। चंमों पूजा के समय परिवार के सभी सदस्य रात्रि के प्रारम्भ में विभिन्न प्रकार की कंटीली झाडियों की टहिनियों को झाडूनुमा बाँधकर उसमें रंग बिरंगे वस्त्रों के टुकडे, अनाज के दाने, सत्तू निर्मित पदार्थ (च्रपा), नमक व मिर्च बाँधकर अपने हाथों में तलवार, कुल्हाडी, बन्यास और अंसिया लेकर दक्षिण दिशा की ओर मुंह करके बैठ जाते है। लडकियाँ इस झाडू को लेकर सभी सदस्यों के चारों ओर एक तीन पांच सात या नौ बार चक्कर लगाती है। इसके पश्चात बकरी की बलि देकर उसका मांस खाया जाता है। किन्तु मुर्गे की बलि देने के पश्चात उसका सेवन नही करते हैं। चंमो में मंत्रों के उच्चारण के साथ भूत-प्रेत को वहाँ से दूर जाने का आदेश दिया जाता है। यहाँ भूत-प्रेतो का कोई मन्दिर नही

होता है। दुर्गम मार्गों, पुलों चौराहों या निर्जन स्थानों में इनकी पूजा हेतु रंगीन वस्त्रों के टुकडे, नमक मिर्च व खिचडी रखी जाती है।

पूवजों का पूजन (स्यिमी ठुमो)

भोटिया समाज में पूवजों की आत्माओं की संतुष्टि हेतु विभिन्न अवसरों पर उनकी पूजा की जाती है। ग्राम का प्रत्येक परिवार अपने ग्रीष्म व शीतकालीन आवासों में स्यिमी पूजा सम्पन्न करता है। प्रत्येक परिवार में मकान के अन्दर ही सैथन (पूजा स्थल) होता है जिसमें वर्ष में एक या दो बार बकरी की बलि देकर एवं कई बार धलं, ध्वजा व अक्षत से पूजा की जाती है। किसी व्यक्ति के विदेश प्रवास के समय भी पूर्वजों की पूजा अन्य देवी-देवताओं की पूजा से पूर्व ध्वज व अक्षत से की जाती है। वर्ष में एक बार बकरी की बलि देकर पूजा वार्षिक श्राद्ध एवं बार-बार पूजन मासिक तथा पाक्षिक श्राद्ध कहलाता है। पूर्वजों की पूजा के आयोजन में अपने परिवार के समस्त सदस्यों को आमंत्रित कर धलं एवं मदिरा आदि का वितरण किया जाता है। वर्ष में एक बार विवाहित लडकियां भी अपने मैत (मायके) आकर पिता के घर की मृतात्माओं का धलं, मदिरा व अक्षत से पूजन करती हैं।

उत्सव

भोटिया समाज में समय-समय पर अनेक उत्सवों का आयोजन किया जाता है। इनमें से कुछ उत्सव विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों के निष्पादन के समय आयोजित किये जाते हैं जबकि कुछ कृषि सम्बन्धी क्रियाकलापों हेतु सम्पादित किये जाते है। इस समाज के प्रमुख उत्सव निम्नलिखित हैं।

माटी पूजा

प्रत्येक ग्राम में पृथ्वी के अधिष्ठाता देवता 'माटी देव' का देवस्थान होता है। भोटिया लोग नवीन भूमि का कृषि या अन्य उद्देश्य से उपयोग करते समय सर्वप्रथम भूमि या माटी देव की पूजा करते हैं। ये लोग जब शीतकालीन आवासों से ग्रीष्मकालीन आवासों को जाते हैं तो सामूहिक रुप से माटी देवता की पूजा करके ही मिट्टी का उपयोग करते हैं।

नबू सामो

यह कृषि से सम्बन्धित एक प्रमुख उत्सव है। 'नबू' का अर्थ कीडा और 'सामों' का अर्थ नष्ट करना या मिट्टी में मिलाना होता है। इस प्रकार नबू सामों का अर्थ फसलों की क्षति पहुंचाने वाले कीडों को नष्ट करना है। यह उत्सव प्रतिवर्ष आयोजित होता है। प्रत्येक परिवार के लोग अपने अपने खेतों से कीडे मकोडे पकडकर उन्हे भोजपत्र या कपडे में लपेटकर एक बकरी की सींगों में बाधते हैं। उस बकरी

को एक व्यक्ति सम्पूर्ण खेतों की परिक्रमा लगवाकर दक्षिण दिशा में एक निश्चित चौराहे पर ले जाता है जहाँ पर उसकी बलि दी जाती है। बकरी का सिर चौराहे पर ही छोड दिया जाता है और उसका ध ड देव मन्दिर में लाकर देव पूजन के बाद खाया जाता है।

मिल्वू फेंकना

मिल्वू (छिपकलीनुमा आकृति का कीडा) फसल, सम्पत्ति व प्रतिष्ठा पर कुदृष्टि रखने वाला दैत्यात्मा का प्रतीक माना जाता है। विभिन्न प्रकार की फसलों के पौधे पूजा स्थल या किसी सामूहिक स्थल पर लाकर उनसे मिल्बू का निर्माण किया जाता है। पुरुष वर्ग चाकू, खुकरी एवं तलवार आदि हथियार लेकर मिल्वू को डराने व काटने का अभिनय करते हुए भयानक आवाज में गाते हैं। सर्वप्रथम गॉव से एकत्रित मदिरा सत्तू और फांफर का आटा उस छिपकलीनुमा आकृति के ऊपर फेंका जाता है। इसके पश्चात वीर रस के गीत गाते हुए उस पर हथियार चलाये जाते है और अन्त में उसे उठाकर दक्षिण दिशा में फेंक दिया जाता है। इस प्रतीकात्मक विजय के उपलक्ष्य में खुशियां मनाई जाती हैं।

नू धलं

नई फसल से प्राप्त अनाज का प्रथम बार भक्षण करना नू धलं उत्सव कहलाता है। सर्वप्रथम नये अनाज से धलं बनया जाता है और धलं से अन्न दवता, माटी देवता तथा आत्माओं का पूजन करते उस धलं एवं अन्न से बने पकवान को सामूहिक रुप से खाया जाता है।

किर्जी या कंडाली महोत्सव

कण्डाली, किरज्यी या फकला नामक पौधा दारमा ब्यांस व चौदास के 1800 से 2600 मीटर ऊँचाई वाले पर्वतीय ढालों में बारह वर्ष के अन्तराल के बाद जब पल्लवित एवं पुष्पित होता है, तो लोक मान्यताओं के अनुसार चौदांस के शौका लोग इसके विषैले फूलों को नष्ट करने हेतु ग्राम स्तर पर पूजा का आयोजन करते हैं। प्रत्येक बारहवें वर्ष वर्षा ऋतु के अन्त में चौदांस के ग्रामों में इस पूजा के आयोजन को 'कण्डाली महोत्सव' कहा जाता है। ललित पन्त (2000, 110 112) के अनुसार चौदांस के अतिरिक्त एक मात्र ब्यांसी ग्राम बूंदी में यह आयोजन 'किरज्यी भामो' या 'किरज्यी विजयोत्सव के नाम से जाना जाता है।

कण्डाली उत्सव मनाये जाने के सम्बन्ध में चौदांस में दो किंवदन्तियाँ प्रचलित है। प्रथम किंवदन्ती के अनुसार किसी समय चौदांस में लद्दाखी राजा ने आक्रमण किया। उसके सैनिक कण्डाली पौधे की घनी झाडियों के पीछे छिपकर गॉव के लोगों पर प्रहार कर रहे थे। उस समय यहाँ के पुरुष व्यापार हेतु

तिब्बत गये हुए थे और गाँव की सुरक्षा का दायित्व महिलाओं पर था। चौदांस की वीरांगनाओं ने अपने तीक्ष्ण रिलों (ऊन की बुनाई कां धारंद्वार हथियार) से कण्डाली की झाडियों को नष्टकर उसमें छिपे आततायी सैनिकों का समूल विनाश कर दिया। दूसरी किंवदन्ती के अनुसार चौदांस में किसी विधवा माँ का एक मात्र पुत्र किसी असाध्य रोग से पीडित था। उसके उपचार हेतु कण्डाली के पौधे की औषधि बनाकर उसे सेवन कराई गई जिससे उसकी मृत्यु हो गई। अशोक पाण्डे (2000, 103 109) के अनुसार इस किंवदन्ती के साथ एक अन्य कथानक भी जोडा गया है। उसके अनुसार उस बालक के असाध्य रोग की एक मात्र औषधि कण्डाली के पुष्पों से ही निर्मित की जा सकती थी, किन्तु वह वर्ष कण्डाली के पुष्पित होने का नही था अतः औषधि के अभाव में विधवा माँ के पुत्र की असामयिक मृत्यु हो गई। इसी लिए दुर्भाग्य, अन्याय एवं मृत्यु का पर्याय बने इस कण्डाली के पौधे को प्रत्येक बारहवें वर्ष में समूल नष्ट करने का संकल्प किया गया।

कण्डाली महोत्सव का आयोजन

यह उत्सव बारह वर्षो के पश्चात पट्टी चौदांस एवं बूंदी ग्राम में मनाया जाता है। वस्तुतः यहाँ की महिलाओं का प्रमुख त्यौहार है, पुरुष वर्ग इसमें मात्र दर्शक होते हैं। इस उत्सव के समय महिलायें पारम्परिक परिधानों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर अपने हाथ में रिल लेकर आगे आगे चलती हैं। उनके पीछे पुरुष वर्ग पारम्परिक परिधानों से सुसज्जित, हाथ में ढाल एवं तलवार लिए हुए वाद्ययंत्रों की धुन के साथ पंक्तिवद्ध युद्ध की भाव भंगिमाओं वाले नृत्य करते हुए ग्राम से कुछ दूर स्थित बुग्यालों की ओर प्रस्थान करते हैं। बुग्यालों में पहुँचकर महिलायें नृत्य करते हुए अपनी रिलों से कण्डाली के पौधो को नष्ट करती हैं और इस पौधों पर विजय प्राप्ति के पश्चात हृदय में उल्लास व उमंग लिए नृत्य करती हुई घरों को वापस आती हैं। घर पहुंचने पर समस्त ग्रामवासी एक दूसरे को भोजन हेतु आमंत्रित करते हैं।

मेले

शौका क्षेत्र के प्रमुख मेले निम्नवत हैं।

ब्यांस मेला

ब्यांस पट्टी के गुंजी ग्राम के निकट मनेला के मैदान में प्रतिवर्ष भाद्रपद की पूर्णिमा के अवसर पर विशाल मेला लगता है। यह मैदान काली एवं कुटी नदियों के संगम पर स्थित ब्यास मुनि की तपाभूमि है। ग्लेशियर निर्मित यह मैदान आकर्षक एवं मनोहारी है। मैदान के किनारे पर्व श्रेणी के नीचे ब्यास मुनि

का मन्दिर और उसके ऊपर महादेव का मन्दिर है। यहाँ प्रतिवर्ष समस्त ब्यांस पट्टी का जन समुदाय ब्यास मुनि की पूजा करने आता है। यह मेला दो दिन तक चलता है जिसे ब्यांश्रृखी मेला कहा जाता है। इस मेले की यह विशेषता है कि ब्यास पूजा के दिनों माँस मदिरा का सेवन वर्जित है।

जौलजीवी मेला

जौलजीवी ग्राम काली एवं गोरी नदियों के संगम पर स्थित शौकाओं के शीत कालीन आवास क्षेत्र की दक्षिणी सीमा पर स्थित है। इस स्थान पर कुमाऊँ का सबसे बडा व्यापारिक मेला लगता है। इसके निकट दूधी नामक गाँव स्थित है अतः यह मेला 'दूधी मेला' भी कहलाता है। यह मेला प्रतिवर्ष 14 नवम्बर से प्रारम्भ होकर लगभग 15 दिन तक चलता है। यहाँ पर दारमा, ज़ोहार, अस्कोट एवं नेपाल से जाने वाले मार्ग मिलते हैं। यहाँ शौका, नैपाली, कुमांऊनी व मैदानों से अनेकों व्यापारी आते है। तिब्बत व्यापार सन्धि के समाप्त होने से पूर्व यह मेला शौका व्यापारियों द्वारा आयातित ऊन व ऊनी वस्त्रें के लिए प्रसिद्ध था। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मेला है। नैपाल से यहाँ घी, शहद एवं घोडे लाये जाते हैं।

थल मेला

रामगंगा नदी के किनारे स्थित थल नामक स्थान पर मध्य अप्रैल में मेला लगता है। यह मेला एक सप्ताह तक चलता है। थल जोहार क्षेत्र के शौका लोगों का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ ऊन से बनी वस्तुओं थुलमा, चुटका, पंखी, पट्टू तथा दन (गलीचा) आदि का भारी मात्रा में क्रय विक्रय होता है।

बागेश्वर मेला

बागेश्वर, सरयू तथा ग़ोमती नदियों के संगम पर स्थित है। यहाँ शिवजी का प्राचीन मन्दिर है। यहाँ उत्तरायणी (मकर संक्रान्ति) के एक दिन पूर्व से पाँच दिन तक मेला चलता है। इस मेले में ऊनी वस्त्रों की भी भारी मात्रा में बिक्री होती है।

इन मेलों में भोटिया व्यापारी तिब्बती ऊन और थोडे, नैपाल एवं जुमला क्षेत्र का ऊन, नेपाली घी, अनाज आदि वस्तुएं विक्रय के लिए लाते हैं। इसके अतिरिक्त तिब्बती भेड बकरियाँ, सुहागा, चमर, कस्तूरी, जडी-बूटियों, चमडे के थैले आदि वस्तुओं का विक्रय भी होता है। तिब्बत के साथ व्यापार बन्द हो जाने के बाद इन मेलों में तिब्बत से आयातित वस्तुओं का अभाव रहता है फिर भी ये मेले व्यापारिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए हैं।

प्रमुख त्यौहार

भोटिया समाज में देवी-देवताओं की उपासना स्थानीय परम्पराओं के अनुसार की जाती है जिसमें तिब्बत नेपाल कुमाऊँ तथा गढवाल की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का सम्मिलित प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, किन्तु यहाँ के त्यौहार पूर्णतः वैदिक धर्म में अनुसार मनाये जाते हैं। इन दोनों क्षेत्रों के प्रमुख त्योहार निम्नवत् है।

विषत्यार

जोहार क्षेत्र में बैशाख संक्रान्ति के दिन विषत्यार लोहे की गरम सलाखों से बच्चों की नाभि पर छूकर मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से विस (विष) हरण होकर बच्चों को पेट दर्द की बीमारी नही होती इस दिन देवर-भाभी भी एक दूसरे को गरम सलाख से छूकर मनोरंजन करते हैं।

घ्यूत्यार

भाद्र पद मास की संक्रान्ति का दिन घ्यूत्यार या घी का त्यौहार कहलाता है। विवाहित लड़कियों को इस त्यौहार के अवसर पर भोजन के साथ घी खिलाने हेतु मैत (माँ के घर) बुलाया जाता है। यह त्यौहार जोहार क्षेत्र में मनाया जाता है।

घुघुति त्यार

यहाँ श्रावण माह को कालो मास (काला या अशुद्ध माह) तथा मांघ के महीने को धरम मास (धर्म का महीना) माना जाता है। माघ संक्रांति के पूर्व त्रिदिवसीय व्रत से आरम्भ होता है। महिलायें प्रथम तीन दिन तक नित्य उपवास रखती है। संक्रांति का दिन घुघुति त्यार के रुप में मनाते हैं। इस दिन कौवे को भोजन का ग्रास दिया जाता है तथा कुल पुरोहित को 'माघ की खिचडी' खिलाई जाती है।

सौं बलि

श्रावण माह के अन्तिम दिन जोहार के प्रत्येक गाँव में सौबलि (सावन माह की बलि) त्यौहार मनाया जाता है। इस महीने को अशुद्ध माह मानकर गॉव का लोहार गॉव की सीमा के चारों ओर एक बकरी घुमाकर चौराहें पर बाँध देता है। यह सों बलि की बकरी कहलाती है। सभी ग्रामवासी अपने अशुभ ग्रहों के निवारण हेतु भांग घास, नमक, मिर्च, उडद की दाल तथा राख एक कपडे के टुकडे में बाँधकर परिवार के प्रत्येक सदस्य के सिर पर घुमाकर सौंबलि की बकरी के ऊपर फेंक देते हैं। अन्त में बकरी को बन्धनमुक्त कर दिया जाता है, जब वह भागने लगती है तो उसके ऊपर पत्थरों की वर्षा करके उसे मार दिया जाता है। सौंबलि की बकरी परिवार के लोग नही खाते है। सौंबलि त्यौहार के दिन दाहिनी

'स्यंठं पूजन' के अवसर पर परम्परागत सामूहिक छोलिया
नृत्य करते हुए चौदांस पट्टी के ग्रामवासी

दिशा से बायीं दिशा की ओर गॉव की परिक्रमा करने की प्रथा सम्भवतः तिब्बती प्रभाव के कारण है।

फुलत्यार

चैत संक्रान्ति का दिन जोहार में फुलत्यार के रुप में मनाया जाता है। बच्चे घर घर जाकर द्वार पर फूल डालते हैं और उन्हें गुड, चावल तथा मिठाई दी जाती है। यह बच्चों का त्यौहार माना जाता है। इस दिन मिरासी (परम्परागत गीत गायक) घर घर जाकर ऋतु गीत सुनाते हैं। इस दिन से विवाहित लडकियों को दिया जाने वाला उपहार 'चैत की भेटोली' का भी आदान प्रदान प्रारम्भ हो जाता है।

जन्यो-पुन्यो

बैशाखी, श्रावणी कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा के दिन तीर्थ स्थान जाकर गंगा स्नान का यहाँ बहुत माहात्य है। श्रावणी पूर्णिमा के दिन कुल पुरोहित अपने यजमानों की कलाइयों पर रक्षा सूत्र बाध तें है। इस त्यौहार को जोहार की स्थानीय बोली में जन्यो पुन्यों कहते हैं।

अष्टमी का पर्व

चैत शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को जोहार में दुर्गाष्टमी के रुप में मनाया जाता है। ब्राह्मण द्वारा दुर्गा सप्त सती का पाठ कराकर रात्रि के समय बकरी की बलि दी जाती है। इस अवसर पर परिवार के सभी लोग सामूहिक रुप से पूजा में सम्मिलित होकर सहभोज करते है। भादों कृष्ण पक्ष की अष्टमी को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी मनाई जाती हैं। इस अवसर पर उपवास रखकर रात्रि भर भजन कीर्तन का आयोजन होता है। भादों माह में शुक्ल पक्ष की अष्टमी को जोहार के कई गाँवों में नन्दाष्टमी का मेला भी लगता है।

स्यंठं त्यौहार

यह पट्टी चौदांस का प्रमुख त्यौहार है। यह अक्टूबर-नवम्बर माह में मनाया जाता है। दो से तीन दिन तक मनाये जाने वाले त्यौहार से सम्पूर्ण चौदांस क्षेत्र आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। स्यंठं के दिन ही परिवार के ज्येष्ठ पुत्र को सर्व प्रथम गाँव की सभा में प्रवेश कराते हैं। सभी ग्रामवासी, सम्बन्धी, गाजे बाजे के साथ नृत्य करते हुए देव स्थल पहुंचते हैं और धलं से पूजा करते हैं। प्रत्येक परिवार दूसरे परिवार को तथा एक गांव वाले दूसरे गांव वालों को आमंत्रित करते हैं। धलं, पकवान मदिरा लेकर नृत्य-गान के साथ सम्पूर्ण समाज खुशी से झूमने लगता है। कुछ दिनों के लिए समस्त घरेलू कार्य बन्द कर दिये जाते हैं। गाँव का कोई सदस्य इन दिनों बाहर नहीं जा सकता। इन दिनों यदि बाहर का कोई

व्यक्ति चौदांस आता है तो यहां की सामाजिक मान्यताओं के अनुसार वह स्यंठं समाप्त होने के पूर्व वापस नहीं लौट पाता है।

उक्त प्रमुख त्यौहारों के अतिरिक्त जोहार में सम्वत्सर प्रतिपदा, पंचमी, एकादशी तथा अन्य हिन्दू धर्म से सम्बन्धित त्यौहार भी मनाये जाते हैं। आजकल यहां होली, विजयादशमी, दीपावली, रक्षाबन्धन एवं जन्माष्टमी इत्यादि सभी त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं।

संदर्भ

जोशी, अवनीन्द्र कुमार (1983)	:	भोटान्तिक जनजाति, पृष्ठ 46
ढकरियाल, डूंगर सिंह (2004 अ)	:	हिमालयी सौका सांस्कृतिक धरोहर, भाग एक, पृष्ठ 187
डबराल, शिवप्रसाद, (1966)	:	उत्तराखंड के भोटान्तिक, पृष्ठ 174
ढकरियाल, डूंगरासिंह (2004स)	:	हिमालयी सौका सांस्कृतिक धरोहर, भाग तीन, पृष्ठ 33 265
पांगती, शेरसिंह (1962)	:	मध्य हिमालय के भोटिया : जोहार के शौका, पृष्ठ 83 85.
पंत, एस०डी० (1935)	:	द सोसियो इकोनामी आफ द हिमालयन्स, पृष्ठ 218.
पन्त, ललित (2000)	:	'किरज्यी भामो, कण्डाली का एक और रूप', पहाड़ 11, पृष्ठ 110 112.
पाण्डे, अशोक (2000)	:	'कण्डाली उत्सव, बारहवें साल फिर', पहाड 11 पृष्ठ 103 109.
रायपा, रतन सिंह, (1974)	:	शौका सीमावर्ती जनजाति, पृष्ठ 92 96.
रावत, इन्द्र सिंह (1973)	:	इण्डियन एक्सप्लोरर्स ऑफ नाइन्टीन्थ सेन्चुअरी, पृष्ठ 3
रन्धावा, एम०एस० (1970)	:	द कुमाऊँ हिमालय, पृष्ठ 145,
श्रीवास्तव, आर०पी० (1963)	:	कुमाऊँ के सीमान्तवासी भोटिया, सरहदी पृष्ठ 25.
सांकृत्यायन, राहुल (1958)	:	कुमाऊँ, पृष्ठ 143.
शेरिंग, सी०ए० (1906)	:	नोट्स आन द भोटियाज ऑफ अल्मोड़ा खण्ड ब्रिटिश गढ़वाल, खण्ड एक भाग आठ, पृष्ठ 99
शेरिंग, सी०ए० (1906)	:	बेस्टर्न तिब्बत एण्ड द ब्रिटिश बार्डर लैण्ड पृष्ठ 126.

अध्याय सप्तम्

विकास कार्यक्रम एवं सामाजिक परिवर्तन

किसी समाज की अविरल गति से प्रवाहित जीवन धारा किस प्रकार राजनीतिक उथल पुथल के कारण अकस्मात एक नवीन एवं अपरिचित मार्ग की खोज हेतु विवश हो जाती है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण तिब्बत पर चीनी आक्रमण एवं उसके अधिग्रहण के फलस्वरूप भोटिया जनजाति की अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक परिवर्तन पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण के कारण शताब्दियों से प्रचलित तिब्बत के साथ भोटियों के परम्परागत व्यापार की सम्पूर्ण व्यवस्था निष्क्रिय हो गई। यह भोटिया लोगों के आर्थिक क्रियाकलापों पर एक प्रत्यक्ष आघात था। इसका एक अन्य परोक्ष प्रभाव यह हुआ कि तिब्बत व्यापार बन्द होने के पश्चात तिब्बती ऊन की आपूर्ति अचानक रूक जाने के कारण इनके प्रमुख कुटीर उद्योग ऊन उद्योग के लिए एक महान संकट उत्पन्न हो गया।

इस राजनीतिक घटनाक्रम ने न केवल इनके आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित किया बल्कि इनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर भी अपना प्रभाव डाला। 1962 के पश्चात भोटिया समाज को जिन आर्थिक कठिनाइयों एवं सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन के मध्य संघर्ष की स्थिति व मनोवैज्ञानिक दबाव से होकर गुजरना पडा उसका अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

चीनी आक्रमण से उत्पन्न स्थिति के कारण भोटियों के व्यापारिक क्रिया कलापों में ह्रास

30 सितम्बर 1950 ई० को चीनी प्रधानमन्त्री चाऊइन लाई ने यह घोषणा की कि तिब्बत चीन का ही एक अभिन्न भाग है और 7 अक्टूबर को चीनी सेनायें तिब्बत की सीमा के अन्दर प्रविष्ट हो गई। 23 मई 1951 की सन्धि के अनुसार चीन ने तिब्बत को अपने राष्ट्र में मिला लिया। 29 अप्रैल 1954 में भारत एवं चीन के मध्य एक समझौता हुआ। इस द्विपक्षीय समझौते के अनुसार चीनी लोक गणराज्य एवं भारत सरकार के मध्य चीन द्वारा अधिगृहीत तिब्बत क्षेत्र एवं भारत में व्यापार तथा सांस्कृतिक समागम को विकसित करने हेतु अनेक शर्ते एवं प्रावधान रखे गये। इस समझौते के पश्चात भोटियों का तिब्बत के साथ परम्परागत व्यापार कुछ निश्चित प्रतिबन्धों के अन्तर्गत पूर्ववत चलता रहा।

भोटियों के व्यापारिक इतिहास में सबसे आकस्मिक तथा दूरगामी प्रभाव डालने वाला परिवर्तन 20 अक्टूबर 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण के पश्चात उत्पन्न हुआ। रमेश चन्द्र तिवारी (1977, 269) के अनुसार यद्यपि इससे पूर्व चीन द्वारा तिब्बत पर अधिकार करने के बाद से ही भोटियों को तिब्बत से व्यापार में अनेक कठिनाइयों का अनुभव होने लगा था किन्तु भारत पर चीनी आक्रमण के

बाद उनका व्यापार एक ही झटके में समाप्त हो गया। व्यापार ही भोटियों का प्रधान व्यवसाय था। अपनी व्यापार कुशलता तथा परिश्रमशीलता के कारण भोटिया लोग उत्तरांचल के अन्य लोगों से अधिक समृद्ध थे। सदियों से चलने वाले व्यापार की समाप्ति के साथ उनकी आजीविका का प्रधान स्रोत सूख गया। व्यापार से जुडी उनकी सम्पूर्ण जीवनचर्या निष्प्राण हो गई। चीनी आक्रमण से न केवल भोटियों के आर्थिक जीवन पर संघातिक प्रहार हुआ बल्कि तिब्बत के लोगों के साथ संलग्न उनकी सदियों पुरानी सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों की जीवन्त कडियाँ भी छिन्न-भिन्न हो गई।

विश्वम्भर सहाय प्रेमी (1977, 223) के अनुसार तिब्बत के साथ इनका जब से सम्बन्ध टूटा है तब से ये लोग आर्थिक संकट में है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इन्होनें व्यापार के अतिरिक्त कृषि को कभी नही अपनाया। परन्तु अब ये नई परिस्थितियों के अनुसार अन्य कार्यो को भी अपना रहे हैं। अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983, 86) के मतानुसार तिब्बत से व्यापार की समाप्ति ने भोटान्तिक अर्थव्यवस्था को एक अन्य प्रकार से भी आघात पहुंचाया है। तिब्बत से आयातित अच्छी श्रेणी का ऊन जो भोटान्तिकों द्वारा अपने ऊन उद्योग में कच्चे माल के रुप में प्रयुक्त किया जाता है उसकी आपूर्ति समाप्त हो जाने के कारण भोटान्तिक ऊन उद्योग संकट में पड गया है। क्योंकि स्वयं भोटान्तिकों की भारवाही भेडों से अच्छे किस्म का ऊन प्राप्त नही हो सकता है और नेपाल से प्राप्त किया जाने वाला ऊन अत्यधिक मंहगा होता है। इस प्रकार तिब्बत पर चीन के आक्रमण ने भोटान्तिक अर्थव्यवस्था को दोहरे रुप से आहत किया है।

उत्तराखण्ड एक सर्वेक्षण (1968, 10) पत्रिका में प्रकाशित विवरण में चीन द्वारा तिब्बत के अधिग्रहण के पश्चात भोटिया जनजाति की दयनीय आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का वर्णन किया गया है। इस विवरण के अनुसार ''सीमान्त भोटिया वर्ग राजनीतिक परिवर्तन के कारण आज विकास के साधनों के बिना बिना गम्भीर स्थिति पर पहुंच गया है। .... अब सम्पूर्ण भोटिया वर्ग की दशा अत्यन्त दयनीय और शोचनीय हो गयी है। इस ओर यदि सरकार का ध्यान शीघ्र न गया तो भोटिया लोग विवश होकर बिखर और लुप्त हो जायेगें। सीमान्त का यह क्षेत्र जो तिब्बत और नेपाल की सीमा से मिला हुआ है एमदम खाली हो जायेगा जो देश की सुरक्षा के लिए उचित नही है।

शासन द्वारा शिक्षा, समाज कल्याण, कृषि सुधार एवं कुटीर उद्योग सम्बन्धी योजनाओं से सामाजिक परिवर्तन

2 जून 1962 को भारत-तिब्बत व्यापार सन्धि समाप्त हुई। इसके पश्चात 20 अक्टूबर 1962 में भारत पर चीनं के अप्रत्याशित आक्रमण के बाद भारत तिब्बत व्यापार सन्धि पूर्णतः समाप्त हो गई। इस परम्परागत व्यापार की समाप्ति के बाद भोटिया जनजाति के समक्ष अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। 24 जून 1967 में भारत सरकार ने भोटिया जनजाति को अनुसूचित जनजाति के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है। प्रान्तीय सरकार ने भी इन्हे अनुसूचित जनजाति में सम्मिलित कर विशेष सुविधायें प्रदान करने हेतु सराहनीय प्रयत्न किये है। समाज कल्याण विभाग उत्तरांचल शासन द्वारा इस जनजाति के कल्याण हेतु अनेक योजनाएं संचालित की जा रही हैं जिनमें शिक्षा, समाज कल्याण, कृषि सुधार एवं कुटीर उद्योग सम्बन्धी योजनाएं प्रमुख हैं। जिला समाज कल्याण अधिकारी पिथौरागढ़ (2005, 3) द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार इन योजनाओं का विवरण निम्नांकित है।

1. शिक्षा एवं समाज कल्याण सम्बन्धी योजनाऐं

शासन द्वारा इस जनजाति के लिए निम्नलिखित योजनाऐं संचालित की जा रही है।

(क) छात्रवृत्ति

1. कक्षा 1 से 5 तक अध्ययनरत छात्र/छात्राओं को 25 रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति व कक्षा 6 से 8 तक 80 रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति। आय सीमा का कोई प्रतिबन्ध नही है।
2. कक्षा 9 व 10 के विद्यार्थियों को 60 रुपयें प्रतिमाह छात्रवृत्ति एवं पूर्ण शुल्क मुक्ति, आय सीमा 2500 रुपये प्रतिमाह।
3. दशमोत्तर कक्षाओं में वार्षिक आय 38, 220 रुपये तक पूर्ण छात्रवृत्ति एवं पूर्ण शुल्क मुक्ति, 38220 रुपये से अधिक किन्तु 50920 रुपये वार्षिक आय सीमा तक अर्द्ध छात्रवृत्ति एवं पूर्ण शुल्क मुक्ति, मेडिकल एवं इंजीनियरिंग के डिग्री स्तर तक 50920 रुपये आय तक पूर्ण छात्रवृत्ति, पूर्ण शुल्क मुक्ति एवं छात्रावास में रहने वालें छात्रों को सामान्य छात्रवृत्ति के साथ छात्रावास की अतिरिक्त छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है।

(ख) राजकीय आश्रम पद्धति विद्यालयों का संचालन

भोटिया जनजाति के निर्धन परिवारों के छात्र/छात्राओं के अध्ययन हेतु वर्तमान समय में जनपद में कुल तीन बालक/बालिका आश्रम पद्धति विद्यालयों का संचालन किया जा रहा है। जिसमें छात्र/छात्राओं

को निःशुल्क भोजन, पुस्तकीय सहायता, आवासीय सुविधा एवं वस्त्र आदि उपलब्ध कराये जाते हैं। इन आश्रम पद्धति विद्यालयों का विवरण निम्नलिखित है।

1. राजकीय आश्रम पद्धति विद्यालय (बालक), बलुवाकोट (धारचूला)

   कक्षा 1 से 10 तक, छात्र संख्या 235

2. राजकीय आश्रम पद्धति विद्यालय (बालिका), बलुवाकोट (धारचूला)

   कक्षा 1 से 10 तक, छात्राओं की संख्य 310

3. राजकीय आश्रम पद्धति विद्यालय (बालक), मुनस्यारी

   कक्षा 6 से 10 तक, छात्र संख्या 175

(ग) राजकीय जनजाति छात्रावास

भोटिया जनजाति के निर्धन छात्रों के अध्ययन हेतु धारचूला में राजकीय जनजाति छात्रावास की स्थापना की गयी है। इस छात्रावास में कुल छात्र संख्या 60 है। यहाँ छात्रों को निःशुल्क भोजन, पुस्तकीय सहायता एवं आवासीय सुविधा उपलब्ध है।

(घ) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं का संचालन

भोटिया जनजाति के नवयुवक जो शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं, को तकनीकी एवं रोजगार परक प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों का संचालन किया जा रहा है। वर्तमान समय में मुनस्यारी एवं धारचूला विकास खण्ड क्षेत्रों में एक, एक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान संचालित हैं। इनमें से वर्ष 2000-01 में मुनस्यारी प्रशिक्षण संस्थान में कुल छात्र संख्या 16 एवं धारचूला में 80 थी।

2. कृषि सुधार सम्बन्धी योजनाऐं

भोटिया जनजाति क्षेत्र में कृषि सुधार हेतु अनेक सुविधायें संचालित की गई है। वर्ष 2000-01 में मुनस्यारी विकास खण्ड क्षेत्र में बीज गोदाम/उर्वरक डिपो 9, ग्रामीण गोदाम 13, कीटनाशक डिपो 01 एवं बायो गैस संयन्त्र 21 संचालित थे। इसी प्रकार धारचूला विकास खण्ड क्षेत्र में संचालित बीज गोदाम/उर्वरक डिपो की संख्या 9, ग्रामीण गोदाम 10, कीटनाशक डिपो 01 एवं वायो गैस संयन्त्रो की संख्या 50 थी। शासन द्वारा संचालित कृषि सुधार सम्बन्धी विभिन्न योजनाओं से इस जनजाति के लोग लाभान्वित हो रहे हैं तथा कृषि उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है।

3. कुटीर उद्योग सम्बन्धी योजनाऐं

ऊन उद्योग भोटिया जनजाति का प्रमुख पैतृक कुटीर उद्योग है। तिब्बत से व्यापार अवरुद्ध हो जाने का प्रत्यक्ष प्रभाव भोटिया लोगों के ऊन उद्योग में कच्चे माल के रुप में तिब्बती ऊन की आपूर्ति रुक जाने से पडा है। तिब्बती भेडों से प्राप्त ऊन बहुत अच्छी किस्म का होता है। जिससे उत्कृष्ट श्रेणी के ऊनी वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। भोटिया व्यापारियों को यह ऊन अपेक्षाकृत सस्ती दरों पर भी उपलब्ध हो जाता है। 1962 के पश्चात ऊन उद्योग के समक्ष अनेक जटिल समस्यायें उत्पन्न हो गई है। इन समस्याओं में कच्चे माल की आपूर्ति की कमी तथा अच्छी नस्ल की भेडों का अभाव तो था ही, इसके अतिरिक्त सरकार एवं ग्राम पंचयतों द्वारा चारागाहों पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाने के कारण भोटान्तिकों के समक्ष अपने पशुओं के लिए चारा जुटाने की समस्या भी उत्पन्न हो गई है। भोटिया ऊन उद्योग में चूंकि परम्परागत प्राचीन तरीकों द्वारा ऊनी वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। जिससे मशीनों द्वारा निर्मित वस्तुओं की तुलना में मूल्य अधिक रहता है अतएव खुले बाजार की प्रतियोगिता में भोटियों द्वारा निर्मित वस्तुएं उच्च श्रेणी की होते हुए भी मशीन निर्मित वस्तुओं की तुला में मंहगी पड़ती है। अतः उनकी मांग कम होने लगी है।

इन समस्त कठिनाइयों के बावजूद आज भी भोटिया लोगों ने अपने ऊन उद्योग का अस्तित्व येन/केन प्रकारेण जीवन्त बनाये रखा है। शासन द्वारा इनके प्रमुख कुटीर उद्योग ऊन उद्योग के विकास के लिए अनेक योजनाएं संचालित की जा रही हैं। वर्ष 2000 01 में मुनस्यारी विकास खण्ड क्षेत्र में पंजीकृत लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या 61 थी जिसमें 122 व्यक्ति कार्यरत थे। खादी ग्रामोद्योग इकाइयों की संख्या 194 थी जिसमें 209 व्यक्ति कार्यरत थे। इसी प्रकार धारचूला विकास खण्ड क्षेत्र में पंजीकृत लघु इकाईयाँ 84 एवं उनमें कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 150 थी जबकि खादी ग्रामोद्योग इकाइयों की कुल संख्या 45 थी और इनमें कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 135 थी।

शासन द्वारा शिक्षा, समाज कल्याण, कृषि सुधार एवं कुटीर उद्योग सम्बन्धी विकास की योजनाओं के संचालन से इस क्षेत्र में शिक्षा का प्रचार प्रसार भी बढने लगा है। सुदूर क्षेत्रों में माध्यमिक विद्यालयों एवं उच्च शिक्षण संस्थाऐं खुलने के कारण भोटिया लोगों में शिक्षा के प्रति विशेष रुचि उत्पन्न हुई है। सरकार द्वारा भोटिया जनजाति को अनुसूचित जनजाति घोषित किये जाने के पश्चात इन्हें निःशुल्क शिक्षा छात्रवृत्ति, छात्रावासों की सुविधा, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी की सुविधा तथा प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं में आरक्षण प्रदान किये जाने से इस जनजाति में पर्याप्त सामाजिक परिवर्तन हुआ है। वर्तमान

समय में उत्तरांचल प्रदेश में इस जनजाति के लोग बैंक, इंजीनियरिंग, चिकित्सा सेवाओं, प्रान्तीय सिविल सेवाओं एवं भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के महत्वपूर्ण उच्च पदों में कार्यरत हैं।

राजनैतिक चेतना से भोटिया संस्कृति के भविष्य का अध्ययन

शिक्षा के प्रसार एवं आरक्षण की सुविधा से भोटिया जनजाति के युवक एवं युवतियां सरकारी सेवाओं में आसानी से प्रविष्ट हो रहे हैं। सरकारी सेवाओं में आने के साथ साथ भोटिया समाज की नई पीढी में सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न लक्षण परिलक्षित होने लगे हैं। अपनी प्राचीन परम्पराओं एवं व्यवसाय के प्रति उदासीनता, आधुनिक परिवेश एवं शहरी सभ्यता के प्रति आकर्षण तथा अन्य सामाजिक वर्गो के सम्पर्क में आने से इस समाज में विसंस्कृतिकरण की प्रक्रिया स्पष्ट रुप से दृष्टिगत होती है। पुष्पेश पन्त (1979) के अनुसार प्रगति के साथ मुकाबला करने और आधुनिकता की दौड ने इनकी परम्परागत जीवन शैली को बुरी तरह झकझोरा है।

अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983, 98) के अनुसार आधुनिक शिक्षा प्राप्त नई पीढी यद्यपि अभी अपने रीतिरिवाजों व परम्परागत जीवन शैली से पूरी तरह सम्बन्ध विच्छेद नही कर पाई है। किन्तु आधुनिकता के सम्पर्क में आने से अपने विशिष्ट रीतिरिवाजों के प्रति उदासीन अवश्य दृष्टिगोचर होती है। भोटान्तिक समाज में प्रचलित कुछ विशिष्ट रीतिरिवाजों यथा रंग बंग के प्रति शिक्षित पीढी द्वारा झिझक एवं उदासीनता प्रकट किये जाने, परम्परागत भोटान्तिक वेशभूषा के स्थान पर आधुनिकता की ओर अग्रसर होने तथा पशुपालन और ऊन उद्योग को आजीविका का साधन बनाने के प्रति हिचक नई पीढी की विशिष्टतायें है। रोजगार उन्मुख होने के कारण अपनी धरती से कट जाने और नगरीय सभ्यता के बीच प्रवासी जीवन बिताने का क्रमिक प्रभाव भोटान्तिक संस्कृति पर पडना स्वाभविक है। आधुनिकीकरण तथा औद्योगिक नगरों की ओर सीमान्तवासियों के पलायन का एक दूरगामी प्रभाव उनकी सांस्कृतिक विरासत का क्रमशः लुप्त होना भी हो सकता है।

विश्वम्भर सहाय प्रेमी (1977, 223) का कथन है कि यह जाति अब तक केवल हिमालय के शिखरों और घाटियों तक ही सीमित रही परन्तु अब इनमें काफी परिवर्तन आने लगा है और ये लोग शिक्षा की ओर भी अग्रसर होने लगे हैं। इनके अन्धविश्वासों में भी अब कुछ अन्तर पडने लगा है। इसका प्रमाण यह है कि जहाँ ये पहले रुग्वावस्था में डाक्टर के पास जाना बुरा समझते थे और झाड़फूंक तथा तन्त्र-मन्त्र का सहारा लेते थे वहाँ अब ये डाक्टरों और वैद्यों की दवाइयों का लाभ उठाने लगे हैं।

रमेश चन्द्र तिवारी (1977, 270) के अनुसार आज का भोटांचल परिवर्तन के एक बहुत बडे दौर से गुजर रहा है। आर्थिक ढाँचे को नए सिरे से पुनर्गठित करने की अनिवार्यता परिवर्तन के इस दौर की सबसे बडी आवश्यकता है। आर्थिक ढाँचे के पुनगर्ठन के साथ भोटियों के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन में भी गम्भीर बदलाव हो रहे हैं। उत्तरांचल के अन्य क्षेत्रों के लोगों से उनके सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क व्यापक होते जा रहे हैं। लेकिन इन तमाम परिवर्तनों के बावजूद भोटांचल की अपनी विशिष्टता समाप्त नही हो सकती। भोटियों की सांस्कृति विरासत इतनी समृद्ध तथा परिपुष्ट है कि उत्तरांचल के एक सांस्कृतिक समूह के रुप में उनका वैशिष्ट्य हमेशा कायम रहेगा।

सांस्कृतिक प्रदेश

भारत का सांस्कृतिक प्रदेशों के आधार पर विभाजन सर्वप्रथम जी०ए० ग्रियर्सन (1929, 22) द्वारा किया गया इस सर्वेक्षण में उन्होंने प्रमुख भाषाओं एवं बोलियों के आधार पर स्थानिक वितरण प्रस्तुत किया। एफ०जे० रिचर्ड्स (1929, 20) ने ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत भाषायी विवरण तथा जे०एन०एल० बेकेट (1928, 447-455) द्वारा प्रस्तुत भारत के प्राकृतिक प्रदेशों को संयुक्त रुप से आधार मानकर भारत को अनेक सांस्कृतिक क्षेत्रों में सीमांकित किया। एच०एच० रिजले (1915) ने सर्वप्रथम भारत के मानचित्र में जातीय वितरण प्रस्तुत किया। इस वर्गीकरण को 1931 की जनगणना के पश्चात 1935 में बी०एस० गुहा द्वारा संसोधित किया गया। इसके पश्चात एन०के० बोस (1956, 15-39), आबिद हुसैन (1961, 55) एवं एस० मुकर्जी (1968, 143-147) इत्यादि विद्वानों ने भारत के सांस्कृतिक प्रदेशों का विवरण प्रस्तुत किया। 1961 में नृविज्ञान सर्वेक्षण विभाग ने ने सर्वप्रथम सांस्कृतिक तत्वों के आधार पर मानचित्र प्रकाशित किया। इसमें निम्न तत्वों का संकलन किया गया।

1. गांवो का स्वरुप
2. झोपडियों (गृह) के प्रकार (प्रयुक्त सामग्री, रचना के आधार पर)
3. खाद्य आहार
4. तेल निकालने की विधियाँ
5. हल
6. भूसा या छिलका निकालने वाले उपकरण
7. पुरुष वेशभूषा या प्रसाधन
8. महिला वेशभूषा

9. जूता-मोजा

10. बैलगाड़ी

पिथौरागढ़ जनपद के भोटिया जनजाति क्षेत्र को सामान्यतः जोहार एवं दारमा दो प्रमुख सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। इन दोनों सांस्कृतिक क्षेत्रों के भोटियों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों में पर्याप्त भिन्नता है। बोलियों के आधार पर दारमा क्षेत्र में ही अत्याधिक अन्तर दृष्टिगत होता है। राहुल सांकृत्यायन (1958, 138) ने भोटांचल की बोलियों को तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार से सम्बन्धित माना है। रमेश चन्द तिवारी (1977, 267) के अनुसार भोटांचल में पांच प्रमुख बोलियां बोली जाती हैं।

1. रंका या शंकिया खुन-यह जोहार, गोरीफाट के भोटियों की बोली है।
2. ब्यांसी-ब्यांस पट्टी के भोटिया की बोली है।
3. चौदांसी- यह चौदांस पट्टी के भोटियों की बोली है।
4. दरमिया- यह दारमा पट्टी के भोटियों की बोली है।
5. हुणिया या भोटी- इस बोली का प्रयोग तिब्बत से अति घनिष्ठ रुप से सम्बन्धित भोटांचल के खम्पा, हुणिये आदि करते हैं।

उक्त विवरण के आधार पर पिथौरागढ़ के भोटिया क्षेत्र को निम्नलिखित दो प्रमुख सांस्कृतिक प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है। इस विभाजन में बोली के अतिरिक्त कृषि कार्य की विधियाँ, अधिवासों की स्थिति एवं संरचना, मकानों के प्रकार, पुरुष एवं महिला परिधान एवं कृषि उपजों के विवरण को भी सम्मिलित किया गया है।

1. जोहार सांस्कृतिक प्रदेश।
2. दारमा सांस्कृतिक प्रदेश।

1. जोहार सांस्कृतिक प्रदेश

वर्तमान मुनस्यारी तहसील का पौराणिक नाम जीवार है। गोरी नदी के दायें पार्श्व में स्थित हिमाच्छादित विस्तृत पर्वतीय श्रेणियाँ जीवार कहलाती हैं। इसी से इस परगने का नाम जोहार पडा। ब्रिटिशकालीन बन्दोबस्त के आधार पर इस परगने को तीन पट्टियों में विभक्त किया गया - मल्ला जोहार, गोरीफाट एवं तल्ला जोहार। लास्पा से लेकर उत्तरी सीमान्त क्षेत्र में स्थित लपथल ग्राम तक का क्षेत्र मल्ला जोहार कहलाता है। इस भाग में भोटियों के मूल चौदह गांव- लास्पा, रालम, टोला, मरतोली,

बुरफू, बिल्जू, गनधर, पांछू, मापा, रिलकोट, खेलांच, पोटिंग, सुमदू एवं मिलम स्थित हैं। इन ग्रामों की ऊँचाई दस हजार फीट से भी अधिक है।

गोरीफाट पट्टी पंचाचूली चोटी के पश्चिमी भाग से लेकर अस्कोट एवं डीडीहाट पट्टी के ऊपरी भाग तक विस्तृत है। इस भाग में स्थित हिमनदों से रालम, मदकानी, पैनागाड़ एवं जिम्बा गाड़ नदियां निकलकर गोरी नदी में मिलती है। इन नदियों के मध्य के क्षेत्र को गोरीफाट पट्टी के नाम से विहित किया जाता है। लास्पा ग्राम के दक्षिण पश्चिम में स्थित नन्दाकोट पर्वत चोटी से लेकर दक्षिण में नाचनी तक गोरी नदी का पश्चिमी भाग तल्ला देश कहलाता है। बद्रीदत्त पाण्डेय (1990, 67) के अनुसार इन विभिन्न पट्टियों के निवासी स्वयं को अलग-अलग बंशज के मानते हैं।

सी०ए० शेरिंग (1906, 63) के अनुसार ऊंटाधुरा गिरिद्वार के समीपस्थ के भोटिया शौका (रावत) कहलाते हैं। ये स्वयं को अन्य भोटियों से श्रेष्ठ मानते हैं तथा अन्य भोटियों के साथ खान पान एवं वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रखते हैं। इनकी भाषा बहुत क्लिष्ट है। इस गिरिद्वार के दक्षिणी भाग के भोटिया जेठौरा भोटिया कहलाते हैं। ये तिब्बत के साथ व्यापार नही करते बल्कि कृषि कार्य करते हैं। ये तिब्बती-बर्मी प्रजाति की रंका या शोकिया खुन बोली बोलते हैं। मल्ला जोहार के भोटियों का मुख्य व्यवसाय तिब्बत के साथ व्यापार है जबकि गोरीफाट एवं तल्ला जोहार के भोटियों का प्रधान व्यवसाय कृषि है। इस क्षेत्र के कुछ भोटिया तिब्बत के साथ व्यापार भी करते हैं। मल्ला जोहार के भोटियों में मौसमी स्थानान्तरण की परम्परागत प्रथा पूर्ववत प्रचलित है।

मल्ला जोहार एवं तल्ला जोहार के भोटियों के सांस्कृतिक क्रियाकलापों में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। मल्ला जोहार के भोटियों के खान-पान, वेशभूषा, बोली एवं रीतिरिवाजों में तिब्बती प्रभाव दिखाई देता है। यद्यपि इनके सांस्कृतिक क्रियाकलाप हिन्दू धर्म के अनुसार ही सम्पादित होते हैं तथापि दीर्घकालीन तिब्बत के साथ परम्परागत व्यापार के कारण इनके सांस्कृतिक क्रियाकलापों में तिब्बती प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। तल्ला जोहार के भोटियों के सांस्कृतिक क्रियाकलापों में कुमाऊँनी प्रभाव दिखाई देता है। इसी प्रकार उक्त दोनों भोटिया क्षेत्रों के अधिवासों, कृषि कार्यो तथा अन्य क्रियाकलापों में भी पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है।

दारमा सांस्कृतिक प्रदेश

धारचूला तहसील का प्राचीन नाम दारमा परगना है। यह दारमा, ब्यांस और चौदांस नामक तीन पट्टियों में विभाजित है। दारमा पट्टी मल्ला एवं तल्ला दारमा उपपट्टियों में विभक्त है। दारमा पट्टी

CULTURAL REGIONS
N
45′
30′
15′
30°
45′
30′
29°15′ N
80° E
15′
30′
45′
81°E
CHAMOLI
TIBET (CHINA)
BAGESHWAR
NEPAL
DIDIHAT TAHSIL
1
2
I
II
III
IV
INDEX
1 JOHAR CULTURAL REGION
I MALLA JOHAR
II GORIPHAT
III TALLA JOHAR
2 DARMA CULTURAL REGION
I MALLA DARMA
II TALLA DARMA
III BYANS
IV CHAUDANS
KM 5 0 5 10 KM
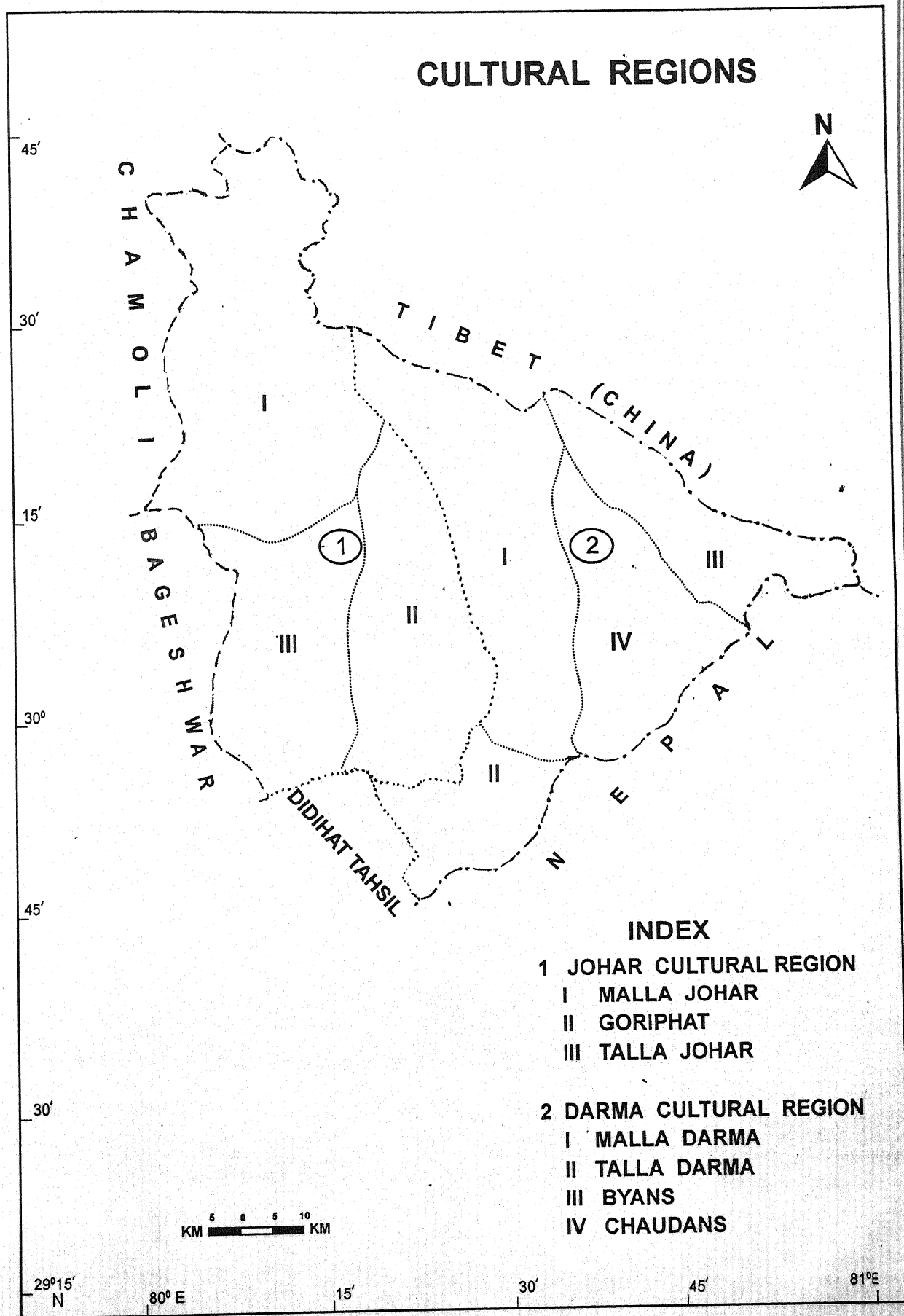
Fig. 25

का सीमांकन दारमा गंगा, लिसर एवं धौली गंगा नदियां करती है। उत्तर में तिब्बत से लेकर दक्षिण में तवाघाट तक का क्षेत्र मल्ला दारमा एवं तवाघाट से अस्कोट एवं जौलजीवी तक का क्षेत्र तल्ला दारमा कहलाता है। कुटीयाँगती नदी से उत्तर पूर्व का तिब्बत एवं नेपाल से संलग्न भाग पट्टी ब्यांस एवं धौली नदी का पूर्वी एवं कुटीयाँगती नदी का पश्चिमी अर्थात दोनों नदियों के मध्य का भाग चौदांस कहलाता है।

पट्टी ब्यांस एवं मल्ला दारमा के भोटियों का प्रधान व्यवसाय तिब्बत के साथ व्यापार है जबकि तल्ला दारमा एवं चौदांस के भोटियों का मुख्य व्यवसाय कृषि कार्य है। इन तीनों क्षेत्रों के भोटियों के सांस्कृतिक क्रियाकलापों में पर्याप्त अन्तर है। मल्ला दारमा एवं ब्यांस क्षेत्र के भोटियों के सांस्कृतिक क्रियाकलापों में तिब्बती प्रभाव दिखाई देता है। दारमा क्षेत्र के भोटिया भी अपने को शौका शब्द से सम्बोधित करते हैं। पट्टी ब्यांस एवं मल्ला एवं तल्ला दारमा पट्टियों के भोटियों में मौसमी स्थानान्तरण होता है जबकि पट्टी चौदांस के भोटियों के आवास स्थाई हैं। दारमा सांस्कृतिक प्रदेश की तीनों पट्टियों के भोटियों के अधिवासों, कृषि कार्यो एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों में पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है (चित्र-25)।

संदर्भ

एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया (1961): पिजेन्ट लाइफ इन इण्डिया, ए स्टडी इन इण्डियन यूनिटी एण्ड डाइवरसिटी, मेम्वायर, सं0 8, कलकत्ता

उत्तराखण्ड एक सर्वेक्षण (1968) : सम्पादक उत्तराखण्ड समाज, नई दिल्ली

ग्रियर्सन, जी0ए0 (1904) : लिंग्वीस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, पृष्ठ 22

गुहा, बी0एस0 (1935) : सेन्सस आफ इण्डिया, 1931, खण्ड एक, भाग तीन

जोशी, अवनीन्द्र कुमार (1983) : भोटान्तिक जनजाति, पृष्ठ 86

तिवारी, रमेश चन्द्र (1977) : हिमानी सीमान्त के प्रकृति पुत्र, कुमाऊँनी संस्कृति, पृष्ठ 269

प्रेमी, विश्वम्भर सहाय (1977) : हिमालय में भारतीय संस्कृति, पृष्ठ 223

पन्त पुष्पेश (1979) : भोटिया नए आयाम की तलाश, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृष्ठ 27

पिथौरागढ़ विकास की ओर (2005) : समाज कल्याण विभाग, देहरादून, उत्तरांचल

बेकेट, जे0एन0एल0 (1928) : नोट्स आन द नेचुरल रीजन्स आफ इण्डिया ज्योग्राफी, खण्ड-14 संख्या-8 पृष्ठ 447 455

बो, एन0के0 (1956) : कल्चरल जोन्स आफ इण्डिया जियोग्राफिकल आफ रिव्यू आफ इण्डिया भाग-16, क्रमांक 3-4, पृष्ठ 15 39

रिचर्डस, एफ0जे0 (1929) : कल्चरल रीजन्स आफ इण्डिया ज्योग्राफी, पृष्ठ 20 29

रिजले, एच0एच0 (1915) : द पीपुल आफ इण्डिया

मुखर्जी, एम0 (1968) : डिलीनियेशन ऑफ कल्चरल जोन्स इन इण्डिया, 21वां इन्टरनेशनल जियोग्राफिकल कांग्रेस सलेक्टेड पेपर, वाल्यूम 14 रीजनल जियोग्राफी एवं कार्टोग्राफी, कलकत्ता

शेरिंग, सी0ए0 (1906) : वेस्टर्न तिब्बत एण्ड द ब्रिट्रिश बार्डर लैण्ड, पृष्ठ 63

सांकृत्यायन, राहुल (1958) : कुमाऊँ, पृष्ठ 138

सांख्यकीय पत्रिका (2001) : कार्यालय अर्थ एवं संख्याधिकारी,जनपद पिथौरागढ,

पिथौरागढ विकास की ओर (2005) : समाज कल्याण विभाग उत्तरांचल, पृष्ठ 3

हुसैन, आबिद (1961) : द नेशनल कल्चर आफ इण्डिया पृष्ठ-55एशीया पब्लिशींग हाउस बाम्बे

अध्याय अष्टम्

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पूर्व सात अध्यायों में पिथौरागढ़ जनपद की भोटिया जनजाति के विविध सांस्कृतिक पक्षों का सम्यक् विवेचन किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में इस जनजाति के सांस्कृतिक अस्तित्व के भविष्य का विवेचन एवं भारतीय संस्कृति में इसके सांस्कृतिक मूल्यों की अभिन्नता का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

भोटिया जनजाति प्रधानतः एक पशुपालक एवं व्यापारिक प्रजाति है। इस क्षेत्र की विशिष्ट भौगोलिक विशेषताओं ने इनके आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कृषि योग्य भूमि का अभाव तथा ऊँचे पर्वतीय भागों में शीताधिक्य के कारण कृषि इनके आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार कभी नही बन सकी। जलवायु की विशिष्टता ने इनके जीवन में ग्रीष्मकालीन तथा शीतकालीन निष्क्रमण की परम्परा स्थापित की। हिमाच्छादित क्षेत्रों के समीप स्थित बुग्याल चारागाहों ने इनको भेड़ पालन में सहायता प्रदान की। उत्तरी सीमान्त पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य स्थित अनेक गिरिद्वारों ने इनको तिब्बत के साथ व्यापार हेतु सहायता प्रदान की। इस प्रकार इस क्षेत्र की विशिष्ट भौगोलिक दशाओं की इनके विभिन्न क्रियाकलापों को निर्धारित करने में विशिष्ट भूमिका रही है।

भोटिया जनजाति का विशिष्ट सांस्कृतिक जीवन जो विगत चालीस वर्षो की राजनीतिक उथल पुथल के उपरान्त तीव्र गति से परिवर्तन की ओर अग्रसर होता जा रहा है, स्वयं में एक गहन चिंतन का विषय है। तिब्बत के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध में आबद्ध इस पशुचारक जनजाति के आर्थिक जीवन का आधार पशुपालन व्यापार तथा ऊन उद्योग रहा है, जिसमें अपनी कर्मठता व्यापार चातुर्य एवं दक्षता के बल पर इन्होनें अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। 1962 में चीन द्वारा तिब्बत का अधिग्रहण एवं भारत पर आक्रमण के कारण शताब्दियों से प्रचलित तिब्बत के साथ भोटियों के व्यापार की सम्पूर्ण व्यवस्था निष्क्रिय हो गई है। इस राजनीतिक घटना चक्र ने न केवल इनके आर्थिक क्षेत्र पर बुरा प्रभाव छोड़ा है बल्कि इनके सामाजिक जीवन, मान्यताओं एवं सांस्कृतिक परिवेश को भी प्रभावित किया है।

चीनी आक्रमण के पश्चात् इस क्षेत्र की भौगोलिक महत्ता एवं देश की सुरक्षा के संदर्भ में इस क्षेत्र के सम्यक् विकास की ओर राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों का ध्यान अवश्य आकृष्ट हुआ है।

पिथौरागढ़ को सीमान्त जनपद बनाया जाना इस दिशा में प्रथम कदम था। अभी तक अपने विशिष्ट भौगोलिक अंचल की सीमाओं से आबद्ध, बाहय समाज के सम्पर्क से रहित तथा अपनी व्यापारिक एवं पशुचारक परम्पराओं से सन्तुष्ट भोटिया समाज के समक्ष अब तक एक ही विकल्प था, पर्वतीय अंचलों में आरम्भ किये गये विकास कार्यक्रमों के अनुरुप स्वयं को तैयार करना। चूंकि यह परिवर्तन अनापेक्षित एवं आकस्मिक था अतः इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव स्वाभविक ही था। मौसमी प्रवास तथा व्यापार जो भोटिया लोगों के जीवन चक्र का अभिन्न अंग बन गया था, तिब्बत के साथ व्यापार की समाप्ति पर उसके साथ संलग्न अनेक परम्पराये अतीत की वस्तुएं बन गई। प्राचीन परम्पराओं से बिलगाव एवं नवीन परम्पराओं के विकसित होने के कारण ये अनिश्चितता की स्थिति में आ गये। इस अन्तर्द्वन्द्व में मनोवैज्ञानिक दबाव से उत्पन्न इनके समक्ष भटकाव की स्थिति उत्पन्न होना स्भाभाविक ही थी।

भारत सरकार एवं प्रान्तीय सरकार के विकास कार्यक्रमों के प्रारम्भ होने के साथ साथ इस क्षेत्र में शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी बढ़ा है। आरक्षण की सुविधाओं का लाभ उठाते हुए विभिन्न राजकीय सेवाओं में इनकी प्रविष्टि निर्वाध रुप से हो रही है। वर्तमान समय में भोटियों की नयी पीढी के नवयुवकों में विशेषतः राजकीय सेवाओं में प्रवेश करने की पृवत्ति निरन्तर बढती जा रही है। वर्तमान समय में भोटिया लोगों का प्रमुख आर्थिक व्यवसाय व्यापार के स्थान पर कृषि एवं बागावानी होता जा उपयोग किया जा रहा है तथा निम्न घाटियों में वैज्ञानिक विधियों से कृषि का प्रचलन भी बढ रहा है।

भोटियों लोगों का परम्परागत कुटीर उद्योग ऊन उद्योग है किन्तु इस उद्योग के विकास और प्रोत्साहन के लिए इस क्षेत्र में अभी तक उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न नही हो सकी हैं अतः यह परमावश्यक है कि इनके लुप्तप्राय परम्परागत ऊन उद्योग को समुचित रुप से विकसित किया जाय। इस कार्य हेतु मात्र कुछ नगण्य ऊनी उत्पादक केन्द्रों को आर्थिक अनुदान एवं वित्तीय सहायता देने मात्र से ही इस समस्या का निराकरण होना सम्भव नही है बल्कि प्रशासन द्वारा भोटिया लोगों को कच्चा माल अर्थात ऊन उपलब्ध कराया जाय, भेडपालन को वैज्ञानिक ढंग से विकसित किया जाय तथा ऊनी वस्तुओं के उत्पादन हेतु आधुनिक संयन्त्रों, नवीनतम् रंगों तथा डिजाइनों के प्रयोग हेतु समुचित प्रशिक्षण दिया जाना भी आवश्यक है। इसी प्रकार भोटियों के जडी-बूटी संग्रह उद्योग को विकसित करने हेतु ही वर्तमान पद्धति में कुछ परिवर्तन आवश्यक है। इस कार्य हेतु वनौषधि क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर वैज्ञानिक विधियों द्वारा उनका संदोहन करके उनके लुप्त प्राय होने से बचाये जाने की आवश्यकता है।

प्रशासन द्वारा इस क्षेत्र के विकास की दिशा को इस प्रकार निर्धारित किये जाने की आवश्यकता

है कि वह इस क्षेत्र के परम्परागत उद्योगों को बढावा देकर इस समाज के लोगों को अपने क्षेत्रों से जोड़े रखने में समर्थ हो सके। केवल सरकारी सेवाओं की सुविधायें प्रदान करने से इस समाज की युवा पीढी की अपने क्षेत्र से पलायनवादी करने की प्रवृत्ति निरंन्तर ही बढती जायेगी। संवेदनशील अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं से संलग्न इस क्षेत्र की सुरक्षा की दृष्टि से यह स्थिति कदापि वांछनीय है। इस पलायनवादी प्रवृत्ति का दुष्परिणाम भोटिया लोगों की सांस्कृतिक विरासत का क्रमशः लुप्त हो जाना भी हो सकता है। चिरकाल से इस क्षेत्र की भौगोलिक विशिष्टताओं से सुपरिचित भोटिया लोग इस अंचल के सजग प्रहरी के रुप में सुसंगठित किये जा सकते हैं अतएव यहाँ के क्षेत्रीय विकास को इस प्रकार व्यवस्थित किया जा यकि उसमें इस समाज के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित हो सके तभी उनका अपने क्षेत्र से लगाव बना रहना सम्भव होगा।

आधुनिक भोटिया समाज में पिछले कुछ दशकों से सामाजिक परिवर्तन के कतिपय चिन्ह स्पष्ट रुप से दृष्टिगत होने लगे हैं। शिक्षित एवं राजकीय सेवारत भोटिया युवा पीढ़ी में आधुनिक वेशभूषा के प्रति आकर्षण एवं अपनी परम्परागत वेशभूषा से मोहभंग होता जा रहा है। यही नही अपनी कुछ परम्परागत रुढियों से वह स्वयं को मुक्त भी कर चुके हैं। उत्तरांचल के शेष पर्वतीय समाज के सम्पर्क में आने से उनके सामाजिक रीतिरिवाजों, परम्पराओं में भी काफी परिवर्तन आने लगे हैं। किन्तु सामाजिक परिवर्तन के तत्वों ने इस समाज को पूर्णतः परिवर्तित नही किया है और आज भी वे नगरीय संस्कृति के बीच में बेझिझक घुलमिल नही सकते हैं। इस प्रकार यद्यपि सामाजिक परिवर्तनों ने भोटिया समाज के भविष्य की दिशा काफी हद तक निर्धारित कर दी है किन्तु अतीत के प्रतिमोह ने इन्हे अपनी परम्परागत मान्यताओं से आज भी सम्बद्ध कर रखा है। इस अन्तर्द्वन्द की स्थिति में भविष्य में इस समाज का सांस्कृतिक अस्तित्व क्या होगा, इस सदंर्भ में कोई निश्चत मत व्यक्त करना असम्भव है। अवनीन्द्र कुमार जोशी (1983, 101) के मतानुसार सम्भवतः बहुरंगी भारतीय संस्कृति में अपने विशिष्ट सांस्कृतिक मूल्यों को संजोकर, भोटिया समाज बृहद् भारतीय समाज के एक अभिन्न अंग के रुप में अपना अस्तित्व बनाये रखेगा। अतीत में किन्नर, किरात नामक भारतीय मूल जनजातियों से सम्बद्ध यह प्राचीन प्रजाति अनेक ऐतिहासिक उतार-चढाव के पश्चात् पुनः भारतीय समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में विद्यमान रहेगी और वर्तमान एवं भविष्य में बहुरंगी भारतीय संस्कृति के एक उज्जवल रंग के रुप में विविधता में एकता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

ग्रन्थ

अटकिन्सन, ई0टी0 (1981) : द हिमालयन गजेटियर, खण्ड 2, भाग एक, कास्मो पब्लिकेसन्स, नई दिल्ली

अटकिन्सन, ई0टी0 (1981) : द हिमालयन गजेटियर, खण्ड तीन भाग एक, कास्मो पब्लिकेसन्स, नई दिल्ली।

अधिकारी, मनोज सिंह (2002) : युग प्रवर्तित कैलाश-मानसरोवर की सार्थकता एवं सम्बद्ध पक्ष : एक ऐतिहासिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

उत्तरी पिथौरागढ़ वन प्रभाग (2000) की प्रबन्ध योजना : उत्तरी कुमाऊँ वृत्त की प्रबन्ध योजना खण्ड एक, नैनीताल, उत्तरांचल

ऋग्वेद (सं0 1958) : वैदिक यन्त्रालय अजमेर

क्लार्क, जे0आई0 (1966) : पापुलेशन ज्योग्राफी, परगेमन प्रेस, आक्सफोर्ड, लन्दन

कौशिक, एस0डी0 (1976) : मानव भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ

खर्कवाल, एस0सी0 एवं नित्यानन्द (1971) : यू0पी0 हिमालय, इण्डिया ए रीजनल ज्योग्राफी, एन0जी0एस0आई0, वाराणसी, सम्पादक आर0एल0 सिंह

खनका, एस0एस0 (1990) : एक्सटेण्ट एण्ड पासीबिलिटीज ऑफ मैनपावर यूटीलाइजेशन इन एग्रीकल्चर इन कुमाऊँ हिमालय, हिमालय : इनवायरोनमेण्ट रिसोर्सेस एण्ड डेवेलपमेन्ट, सम्पादक एन0के शाह, एस0डी0 भट्ट एवं आर0के0 पाण्डेय, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो।

गडकोटी, जे0सी0 (1988) : रिसोर्स अप्रेसल एण्ड एरिया डेवेलपमेण्ट इन पिथौरागढ़ डिस्टिक्ट, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्री नगर, गढ़वाल

गैन्सीर, ए0 (1964) : जियोलाजी ऑफ द हिमालय, इण्टर साइन्स पब्लिसर्स, लन्दन

गुप्ता, आर०डी० (1971) : वर्किंग प्लान फार द पिथौरागढ़ फारेस्ट डिवीजन, नैनीताल

गुहा, बी०एस० (1935) : सेन्सस ऑफ इण्डिया 1931, खण्ड एक, भाग तीन, नई दिल्ली

ग्रियर्सन, जी०ए० (1904) : लिंग्वीस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली

घिल्डियाल, बी०पी० (1990) : स्वायल्स ऑफ हिमालय, हिमालय : इनवायरोनमेन्ट, रिसोर्सेस एण्ड डेवेलपमेण्ट, सम्पादक एन०के० शाह, एस०डी० भट्ट एवं आर०के० पाण्डेय, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो।

चन्द, एम० (1980) : वाटर रिसोर्सेस इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

चन्द, रघुवीर (1981) : रुरल सेटिलमेण्ट इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ वि०वि० नैनीताल

चांदना, आर०सी० एवं सिधू, एम०एस० (1980) : इन्ट्रोडक्सन टू पापुलेशन ज्योग्राफी, कल्याण पब्लिकेशन्स, न्यू देलही।

चौहान, डी०एस० (1966) : स्टडीज इन यूटीलाईजेशन ऑफ एग्रीकल्चरल लैण्ड, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा

जलाल, डी०एस० (1976) : लैण्ड यूटीलाइजेशन इन पिथौरागढ़, प्रकाशित शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ वि०वि० नैनीताल, चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद

जार्डन, टी०जी० एण्ड लेस्टर, राउण्ट्री (1938) : द ह्यूमन मोसाइक, कॉनफील्ड प्रेस सेनफ्रांसिस्को

जिम्मरमैन, इ०डब्लू० (1951) : वर्ल्ड रिसोर्सेस एण्ड इण्डस्ट्रीज, हारपर रो, न्यूयार्क

जैन, जे०के० एवं बोहरा दनमाल (1983) : विश्व का सांस्कृतिक भूगोल, एकेडमिक पब्लिशर्स, जयपुर

जोशी, अवनीन्द्र कुमार (1983) : भोटान्तिक जनजाति : ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

जोशी, एस०सी०, जोशी, डी०आर०, एण्ड दानी, डी०डी० (1983) : कुमाऊँ हिमालय, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल

जोशी, लक्ष्मीदत्त (1962) : द खस फेमिली ला, इलाहाबाद

जोशी, शरदचन्द्र (1977) : कुमाऊँ : मानव भूगोल के महत्वपूर्ण पक्ष, कुमाऊँनी संस्कृति, सम्पादक बटरोही, उपयोगी प्रकाशन, रुद्रपुर

टेलर, जी० (1960) : ज्योग्राफी इन द ट्वेन्टीथ सेन्चुरी, तृतीय संस्करण, लन्दन

ट्रेल, जार्ज बिलियम (1928) : स्टेटेस्टिकल रिपोर्ट आन द भोटिया महाल्स ऑफ कुमाऊँ, खण्ड-17, एसियाटिक रिसोर्सेस, कास्मो पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित 1980

डबराल, शिवप्रसाद (1966) : उत्तराखण्ड के भोटान्तिक, वीरगाथा प्रकाशन दोगड्डा, गढ़वाल

ढकरियाल, डूंगर सिंह (2004) : हिमालयी सौका सांस्कृतिक धरोहर, भाग एक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

ढकरियाल, डूँगर सिंह (2004) : हिमालयी सौका सांस्कृतिक धरोहर, भाग-तीन, काक पुराण, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

तिवारी, रमेशचन्द्र (1977) : हिमानी सीमान्त के प्रकृति पुत्र, कुमाऊँनी संस्कृति, सम्पादक बटरोही, उपयोगी प्रकाशन रुद्रपुर

त्रिपाठी, किरन (1997) : अपने मुलुक का भूगोल, पहाड़, परिक्रमा तल्ला डांडा, नैनीताल

धीर, के०सी० (1992) : कुमाऊँ भोटिया पीपुल्स फेडरेशन द्वारा संविधान सभा परामशदात्री समिति की अल्पसंख्यक उपसमिति को प्रस्तुत की गई एक रिपोर्ट, 17 अप्रैल 1947 का हिन्दी अनुवाद, इरा, लोहाघाट (चम्पावत) उत्तरांचल

पन्त, एस०डी० (1935) : द सोसियो इकोनामी ऑफ द हिमालयन्स, एलेन एण्ड एनविन, लन्दन।

पन्त, चारूचन्द्र (1998) : मिनरल वेल्थ ऑफ कुमाऊँ : प्रोसपेक्ट्स एण्ड प्रोबलम्स, कुमाऊँ लैण्ड एण्ड पीपुल, सम्पादक के०एस० वल्दिया, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल

पन्त, चारू चन्द्र (1981) : स्ट्रक्चरल एण्ड सेडीमेन्टो लाजिकल स्ट्डीज ऑफ द बेरी नाग-गंगोली हाट एरिया, डिस्ट्रिक्ट पिथौरागढ़, कुमाऊँ लेसर हिमालय विथ स्पेशल रेफरेन्स टू द लोकलाईजेशन ऑफ मिनरल डिपाजिट्स, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ वि०वि० नैनीताल

पन्नालाल (1942) : हिन्दू कस्ट्मरी ला इन कुमाऊँ, इलाहाबाद

पांगती, शेर सिंह (1992) : मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति : जोहार के शौका, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

पांगती, राम सिंह (1980) : जोहार का इतिहास व वंशावली, प्रकाशक- सीमान्त सांस्कृतिक संगठन, नई दिल्ली।

पाण्डेय, बद्रीदत्त (1990) : कुमाऊँ का इतिहास, श्याम प्रकाशन अल्मोड़ा

प्रणवानन्द, स्वामी (1949) : कैलाश मानसरोवर, सूर्या प्रिन्टिंग प्रेस, नई दिल्ली

प्रसाद, ईश्वरी एवं शर्मा, शैलेन्द्र (1980) : प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन, मीनू पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद

प्रेमी, विश्वम्भर सहाय (1977) : हिमालय में भारतीय संस्कृति, चैतन्य प्रकाशन, कानपुर

पुरी, जी०सी० (1960) : इण्डियन फारेस्ट इकोलाजी, वाल्यूम प्रथम, न्यू देहली

फारेस्ट वर्किंग प्लान (1980) : स्कीम फार लैण्डयूज एण्ड लैण्ड कैपेबिलिटी, सर्वे ऑफ यू०पी० हिमालय, नैनीताल

बारलो, आर (1963) : लैण्ड रिसोर्स इकोनामिक्स, प्रेन्टिस हाल, इगलवुड क्लिफ्स, लन्दन

बेसिक शिक्षा सांख्यिकी पुस्तिका(2005) सर्व शिक्षा अभियान, देहरादून, उत्तरांचल

बोस, एस०सी० (1972) : ज्योग्राफी ऑफ द हिमालय, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, न्यू देलही।

बैकेट, जे०ओ०बी० (1874) : रिपोर्ट ऑन द रिवीजन ऑफ सेटिलमेण्ट ऑफ कुमाऊँ डिस्टिक्ट, भाग-दो

ब्रून्श, जे० (1920)	:	ह्यूमन ज्योग्राफी, शिकागो
भट्टाचार्य, ए०आर० (1982)	:	द लेसर हिमालयन सेडीमेन्ट्स : प्रिकैम्ब्रियन स्पान, जियोलाजी आफ विन्ध्याचल, सम्पादक के०एस० वल्दिया, एस०डी० भाटिया एवं वी०के० गौड़, हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली।
महाभारत (सं० 2051)	:	गीता प्रेस, गोरखपुर, अनुवादक पं० रामनारायण दत्त शास्त्री, प्रथम खण्ड
मजूमदार, डी०एन० (1961)	:	रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
मजूमदार एवं पुशालकर (1952)	:	द वैदिक एज, एलेन एण्ड अनविन, लन्दन
मनुस्मृति (सं० 1993)	:	चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, अनुवादक पं० रामेश्वर भट्ट,
मिश्र, कैलाशपति (1982)	:	सांस्कृतिक भूगोल, किताब घर, कानपुर
रामअवध (1980)	:	अवध प्रदेश का सांस्कृतिक भूगोल, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, गोरखपुर विश्वविद्यालय, उ०प्र०
राम राहुल (1969)	:	द हिमालय बार्डर लैण्ड, विकास पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
रन्धावा, एम०एस० (1970)	:	द कुमाऊँ हिमालय, आक्सफोर्ड, बी०एच० पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
रायपा, रतन सिंह (1974)	:	शौका सीमावर्ती जनजाति, आनन्द प्रेस, बरेली
रावत, इन्द्रसिंह (1973)	:	इण्डियन एक्सप्लोरर्स ऑफ नाइन्टीन्थ सेन्चुरी, पब्लिकेशन डिवीजन, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया
रावत, नैन सिंह की हस्तलिखित डायरी (1968)	:	डा० राम सिंह, पिथौरागढ़ के पुस्तकालय के सौजन्य से
रिचर्डस, एफ०जे० (1929)	:	कल्चरल रीजन्स ऑफ इण्डिया
रिजले, एच०एच० (1915)	:	द पीपुल ऑफ इण्डिया, ठक्कर स्पिंक एण्ड कम्पनी, कलकत्ता
वाडिया, डी०एन० (1963)	:	जियोलॉजी ऑफ इण्डिया, मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, छात्र संस्करण

वल्दिया, के0एस0 (1973) : लिथोलाजिकल सब डिवीजन एण्ड टेक्टोनिक्स ऑफ द सेन्ट्रल क्रिस्टलाइन जोन ऑफ कुमाऊँ हिमालय, एन0जी0आर0आई0 हैदराबाद।

वल्दिया, के0एस0 (1980) : जियोलाजी ऑफ द कुमाऊँ लेसर हिमालय, वाडिया इन्स्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलाजी, देहरादून

वेगनर, पी0एल0 एवं मिक्सेल, एम0डब्लू0 (1962) : रीडिंग्स इन कल्चरल ज्योग्राफी, यूनीवर्सिटी प्रेस, सिकागो

स्टाम्प, डी0एल0 (1961) : एप्लाइड ज्योग्राफी, पेन्गुइन बुक्स लिमिटेड, इंगलैण्ड

स्पेन्सर, जे0ई0 एण्ड जूनियर, डब्लू0एल0 थामस (1969) : कल्चरल जियोग्राफी, जॉन विली एण्ड सन्स, न्यूयार्क, लन्दन

स्मिथ, टी0एल0 (1948) : पापुलेशन एनलसिस, मैक्ग्राहिल बुक कम्पनी, नई दिल्ली।

स्टीवर्ड, जे0एच0 (1955) : द कन्सेप्ट एण्ड मेथड ऑफ कल्चरल इकोलाजी इन द थ्योरी ऑफ कल्चरल चेन्ज, अर्बाना

सक्सेना, पी0सी0 (1979) : उ0प्र0 डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, पिथौरागढ़, गवर्नमेण्ट प्रेस, इलाहाबाद, यू0पी0

सांकृत्यायन, राहुल (1958) : कुमाऊँ, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी

सांख्यकीय पत्रिका (2001,2002) : जनपद पिथौरागढ़, कार्यालय अर्थ एवं संख्याधिकारी, पिथौरागढ़

सिंह, ए0पी0 (1989) : हिमालयन इनवायरोनमेण्ट एण्ड टूरिज्म, चुघ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद

सौर, कार्ल 'ओ' (1927) : रिसेन्ट डेवेलपमेन्ट्स इन कल्चरल ज्योग्राफी, चार्ल्स एल्वुड, फिलाडेलिफिया

सेन्सस ऑफ इण्डिया (1971, 1981, 1991, 2001) : जिला पिथौरागढ़, राजकीय मुद्रणालय, इलाहाबाद।

शेरिंग, सी0ए0 (1906) : बेस्टर्न तिब्वत एण्ड द ब्रिटिश बार्डरलैण्ड, लन्दन

हसन, अमीर (1971) : ए बंच ऑफ वाइल्ड फ्लावर्स, एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चरल सोसायटी (उ0प्र0)

हट्टन, जे0एच0 (1961) : कास्ट इन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस

हीम, ए0 एण्ड गैनसीर, ए0 (1939) : सेन्ट्रल हिमालय : जियोलाजिकल आब्जर्वेशन्स ऑफ द स्विस एक्सपेडीसन, हिन्दुस्तान पब्लिसिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली।

हुसैन, आविद (1961) : द नेशनल कल्चर आफ इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

पत्र-पत्रिकाएं

अमर उजाला, समाचार पत्र, 11 अप्रैल 2002, 6 अक्टूबर, 2004, 11 दिसम्बर 2004, 24 दिसम्बर 2004, 8 अगस्त 2005, 13 अगस्त 2005, नैनीताल संस्करण

आडेन, जे०बी० (1934) : द जियोलाजी ऑफ द क्रोल बेल्ट, जियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 67

एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया (1961) : पिजेण्ट लाइफ इन इण्डिया, ए स्टड़ी इन इण्डियन यूनिटी एण्ड डाइवरसिटी, मेम्बायर, क्रमांक-8, कलकत्ता

उत्तराखण्ड एक सर्वेक्षण (1968) : सम्पादक उत्तराखण्ड समाज, नई दिल्ली

कुमार, जी० सफाया, एच०एल० एण्ड प्रकाश जी० (1976) : जियोलॉजी आफ द बेरीनाग मुनस्यारी एरिया, पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, कुमाऊँ हिमालय, यू०पी०, हिमालयन जियोलाजी, 6

कुमार, जी० एण्ड दयाल बी० (1970) ए नोट आन द सीमेन्ट ग्रेड लाइमस्टोन बैण्ड इन द काल्क जोन आफ तेजम, पिथौरागढ़ डिस्टिक्ट, यू०पी०, इण्डियन मिनरल्स, 24 (2)

कौशिक, एस०डी० (1959) : टाइप्स आफ ह्यूमन सेटिलमेण्ट इन जौनसार हिमालय, ज्योग्राफिकल रिव्यू आफ इण्डिया, वाल्यूम-21, क्रमांक 2

चन्द, रघुवीर एवं भट्टाचार्य, जी० (1984) : एन एप्रोच टू डेटरमाइन टाइपोलॉजी आफ रूरल सेटिलमेण्ट इन द हिमालय : ए केस स्टड़ी ऑफ डिस्ट्रिक्ट पिथौरागढ़, ट्रान्ससेक्सन्स, आई०आई०जी०, खण्ड 6 क्रमांक 1

चन्द, रघुवीर, जोशी, शरदचन्द्र एवं मनराल जयपाल सिंह (1986) : कुमाऊँ हिमालय में आवासीय दशायें एवं ग्रामीण मकानों के प्रकार : एक प्रतीकात्मक अध्ययन, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, खण्ड-22, क्रमांक-1

ट्रिवार्था, जी०टी० (1973) : ए केस आफ पापुलेशन ज्योग्राफी, एनाल्स आफ द एसोसियेशन आफ अमेरिकन ज्योग्राफर्स, वाल्यूम XLIII क्रमांक-दो

तिवारी, आर०सी० एवं त्रिपाठी : सांस्कृतिक भूगोल : परिभाषा, विषय क्षेत्र तथा अध्ययन तत्व,

शंकेश्वर (1988) भू-विज्ञान, एन0जी0एस0आई0, वाराणसी, खण्ड तीन, भाग-एक

त्रिपाठी, आर0एस0 (1989) : हाउसिंग प्रोबलम् आफ द कोल्स इन मानिकपुर ब्लाक, उ0प्र0 ज्योग्राफिकल रिव्यू आफ इण्डिया, वाल्यूम-51, क्रमांक 1

दैनिक जागरण, समाचार पत्र नैनीताल संस्करण : 27 अक्टूबर 2004, 3 नवम्बर 2005

नीफिन, एफ0 (1965) : फोक हाउसिंग : की टू डिस्ट्रीव्यूसन, एनाल्स एसोसियेशन आफ अमेरिकन ज्योग्राफर्स, वाल्यूम, 55-4

पन्त, ललित (2000) : किरज्यी भामो, कण्डाली का एक और रूप, पहाड़, अंक 11 परिक्रमा तल्ला डांडा, नैनीताल।

पन्त, ललित (1989) : सिमटती हुई समृद्धि, पहाड़, अंक 3-4, परिक्रमा तल्ला डांडा, नैनीताल

पन्त, ललित (1995) : लीपूलेख से सीमा व्यापार, पहाड़, अंक-8, परिक्रमा तल्ला डांडा, नैनीताल

पन्त, पुष्पेश (1979) : भोटिया नये आयाम की तलाश, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, मई अंक

पन्त, पी0सी0 एवं अन्य (1972) : स्वायल्स कन्डीसन्स आफ पिथौरागढ़, प्रोग्रेसिव हार्टीकल्चर, नैनीताल, भाग-चार

पाण्डेय, अशोक (2000) : कण्डाली उत्सव, बारहवें साल फिर, पहाड़, अंक 11 परिक्रमा तल्ला डांडा, नैनीताल

पाण्डेय, जर्नादन श्री नारायण आश्रम सिल्वर जुबली (1936-1961), धारचूला, पिथौरागढ़

पिथौरागढ़ विकास की ओर (2005) : स्मारिका : समाज कल्याण विभाग, देहरादून, उत्तरांचल

बेकेट, जे0एन0एल0 (1928) : नोट्स आन द नेचुरल रीजन्स आफ इण्डिया जियोग्राफी, वाल्यूम 14 संख्या-8 लन्दन।

बहुगुणा, सुन्दरलाल (1988) : 'अस्तित्व के लिए मरते हुए वनों को बचाइये' हिमालय निवासी और निसर्ग, सम्पादक कृष्णामूर्ति गुप्त, हिमालय सेवा संघ राजघाट, नई दिल्ली वर्ष–11, अंक–11

बोस, एन०के० (1956) : कल्चरल जोन्स आफ इण्डिया, ज्योग्राफिकल रिव्यू आफ इण्डिया वाल्यूम–16, क्रमांक–3–4

बोस, एस०सी० (1960) : नोमोडिज्म इन माउण्टेन वैलीज आफ उत्तराखण्ड एण्ड कुमाऊँ, जियोग्राफिकल रिव्यू आफ इण्डिया, वाल्यूम 22, क्रमांक 3

मुकर्जी, एस० (1968) : डिलीनियेशन आफ कल्चरल जोन्स इन इण्डिया, 21वां इण्टरनेशनल जियोग्राफिकल कांग्रेस, सलेक्टेड पेपर्स, वाल्यूम 14, रीजनल जियोग्राफी एण्ड कार्टोग्राफी, कलकत्ता

रावत, जी०एस० एवं अन्य (1982) : ए नोट आन द बुग्याल आफ कुमाऊँ, हिमालयन रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वाल्यूम–एक, नई दिल्ली।

वल्दिया, के०एस० (1962ए) : एन आउटलाइन आफ द स्ट्रेटीग्राफी एण्ड स्ट्रक्चर आफ द सर्दन पार्ट आफ द पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट, यू०पी०, जरनल, जियोलाजिकल सोसायटी आफ इण्डिया–3

वल्दिया, के०एस० (1979) : एन आउट लाइन आफ द स्ट्रक्चरल सेटअप आफ द कुमाऊँ हिमालय, जरनल, जियोलाजिकल, सोसाइटी आफ इण्डिया 20

वल्दिया, के०एस० (1976) : 'कुमाऊँ की खनिज सम्पदा', उत्तराखण्ड भारती, कुमाऊ विश्वविद्यालय नैनीताल, 1 (2)

वल्दिया, के०एस० (1972) : ओरीजिन आफ फास्फोराइट आफ द प्रिकैम्ब्रियन गंगोलीहाट डोलोमाइट आफ पिथौरागढ़, कुमाऊँ लेसर हिमालय सेडीमेण्टोलाजी, 19

वल्दिया, के०एस० (1987) : ट्रान्स हिमाद्रि थ्रस्ट एण्ड डोमल अपवर्प्स इमीडिएटली साउथ आफ कोलीसियन जोन एण्ड टेक्टानिक इम्प्लीकेशन्स, करेन्ट साइंस–56

वार्षिक प्रतिवेदन (2003) : भारतीय रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला, पिथौरागढ़, उत्तरांचल

वार्षिक स्मारिका (1974) : हरिजन तथा समाज कल्याण विभाग उ0प्र0, लखनऊ

श्रीवास्तव, आर0पी0 (1963) : कुमाऊँ के सीमान्तवासी भोटिया, सरहदी, जुलाई अंक

सिंह, प्रताप (1970) : प्रोबलम्स आफ प्रिमिटिव पीपुल्स आफ यू0पी0, ए पायनियर फीचर, 2 फरवरी

सिंह, चुन्ना एवं शुक्ल, आर0के0 (1995) : अनुसूचित जातियों की आवास समस्यायें : प्रतीकात्मक अध्ययन, महाराष्ट्र भूगोलशास्त्र संशोधन पत्रिका, खण्ड 9, अंक-2

सिंह, ए0के0, तिवारी, एम0एम0 एवं विष्ट, एच0एस0 (1984) : 'एनोटोमी एण्ड फंक्सनल आरगेनाईजेशन आफ रूरल ड्वेलिंग्स इन कुमाऊँ हिमालय : एन इकोलॉजिकल परसेप्सन, द दकन जियोग्राफर, वाल्यूम-22, क्रमांक 1-2

शेरिंग, सी0ए0 (1906) : नोट्स आन द भोटियाज आफ अल्मोड़ा एण्ड ब्रिटिश गढ़वाल, मेम्वायर्स आफ द एसियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, वाल्यूम एक क्रमांक-8

शाह, एस0के0 एण्ड सिन्हा, ए0के0 (1974) : स्ट्रेटीग्राफी एण्ड टेक्टानिक्स आफ द टीथियन जोन इन ए पार्ट आफ वेस्टर्न कुमाऊँ हिमालय, हिमालयन जियोलाजी, 4

शाह, उमेशचन्द्र (1988) : उत्तराखण्ड की प्रचलित वनौषधियां, सम्पादक उत्तराखण्ड भारती, नई दिल्ली।

परिशिष्ट
प्रश्नावली

सर्वेक्षण तिथि ....

1. ग्राम का नाम...................... न्याय पंचायत...................... तहसील......................

2. पारिवारिक विवरण –

	नाम	लिंग	आयु	शिक्षा	व्यवसाय	जाति	वार्षिक आय
1.							
2.							
3.							
4.							
5.							
6.							
7.							
8.							
9.							
10.							

आवासन दशायें

(3) गृह प्रकार – कच्चा पक्का मिश्रित झोपड़ी लकड़ी निर्मित

3 (अ) भवन एक मंजिल/दो मंजिल/तीन मंजिल

(4) आवासीय भवन का क्षेत्रफल (वर्ग मीटर/फीट में)

(5) कक्षों (कमरों) की संख्या –

		आकार	क्षेत्रफल
(अ)	बैठक		
(ब)	शयन कक्ष (कक्षों)		
(स)	भण्डार कक्ष		
(द)	रसोई गृह		
(य)	बरामदा		
(र)	शौचालय, स्नानगृह (यदि हो)		

5(अ) क्या भवन में एक ही शयन कक्ष है ? क्या भवन स्थित शयन कक्ष में परिवार के सभी सदस्य एक साथ शयन करते हैं ?

(ब) यदि पृथक् रसोई गृह नहीं है तो किस कक्ष में भोजन बनता है ?

(स) आंगन यदि है तो उसका आकार

6. भवन में गवाक्ष (खिड़की) एवं रोशनदान की व्यवस्था (प्रकाश हेतु) है या नहीं।

7. दरवाजे मानक के अनुरूप है या नहीं (6.5' x 3.5')।

8. सामाजिक उत्सवों/वैवाहिक/धार्मिक कार्यो हेतु आवास के किस स्थल का सर्वाधिक प्रयोग होता है।

9. भवन की ऊँचाई

10. क्या भवन वर्षा, आँधी/तूफान की दृष्टि से सुरक्षित है ?

11. क्या भवन प्रदूषण मुक्त है ? अर्थात् दैनिक उपभोग वाले गंदे जल के निकासी की क्या व्यवस्था है ?

12. क्या आवास में एकान्तता है ?

13. पशुपाला पृथक् है या नहीं। यदि है तो उसका विवरण।

14. क्या भवन निर्माण हतु शासन से कोई अनुदान/सहायता मिली है या नहीं। यदि हाँ तो कितनी राशि मिली है तथा उससे वांछित मानकानुसार आवास बना है या नहीं।

15. प्रदूषण युक्त आवास से किन-किन व्याधियों से पीड़ित रहते हैं ?

16. आवास विन्यास व्यवस्थित है या अव्यवस्थित।

17. आवास के अनुरक्षण (रख-रखाव) हेतु पंजी है या ऋण प्राप्त करते हैं।

18. आवास विद्युतीकृत है या नहीं।

19. स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति - हैण्डपम्प, कूप, टेप (Tape water), नदी, झील।

20. ग्राम स्थित रास्ते/गलियाँ संकरी या चौड़ी हैं।

21. आवास हेतु भूमि की उपलब्धता है या नहीं (ग्राम समाज में)

22. क्या ग्राम समाज में भोटिया जनजाति हेतु पृथक् से आवास हेतु भूमि आरक्षित है।

आपूर्तिकर्ता के हस्ताक्षर

दिनांक -